

हिन्दी साहित्य शोध और समीक्षा

हिन्दी साहित्य : शोध और समीक्षा

लेखक

डॉ० कृष्ण दिवाकर

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

पू०॥ विश्वविद्यालय, पूना ७

दिल्ली पुस्तक सदन

दिल्ली-७

हिन्दी साहित्य : शोध और समीक्षा

लेखक

डॉ० कृष्ण दिवाकर

एम० ए०, पी एच० डी०

प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
पू० ११ विश्वविद्यालय, पूना ७

दिल्ली पुस्तक सदन

दिल्ली-७

हिन्दी साहित्य : शोध और समीक्षा

लेखक

डॉ० कृष्ण दियाकर

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
पू०॥ विश्वविद्यालय, पूना ७

दिल्ली पुस्तक सदन

दिल्ली-७

प्रकाशक '

दिल्ली पुस्तक सदन,
१६ यू० बी० बगलौरोड
दिल्ली ७

© सर्वाधिकार—डॉ० कृष्ण दिवाकर

प्रथम संस्करण अप्रैल, १९६८

मूल्य १० ००

मुद्रक
इण्डिया प्रिंटर्स,
एसप्लेनेड रोड
दिल्ली ६

स्वर्गीय पिता पूज्य आबासाहब
तथा
स्नेहमयी माता श्रीमती उमादेवी
को
सादर समर्पित

भूमिका

“हिंदी साहित्य शोध और समीक्षा” नामक प्रस्तुत ग्रंथ डा० वृष्ण दिवाकर के मनन और अनुशीलन का एक सुंदर परिणाम है। इस ग्रंथ में लेखक ने प्रथम बारह निबंधों में शोध के तथ्यानुसंधान का संतुलित चिंतन प्रस्तुत किया है। शेष निबंध समीक्षारमक हैं। इन समीक्षात्मक निबंधों में जो वैविध्य है, वह लेखक के अध्ययन की विभिन्न दिशाओं का संकेत करता है।

कुछ लोगों का इधर ऐसा विचार है कि शोध और समीक्षा का कोई महत्वपूर्ण सगठन नहीं है बल्कि दोनों अध्ययन के अलग-अलग रूप हैं। यह विचार इसलिए विशेष रूप से हमारे सामने आया है क्योंकि शोध निबंधों और शोध प्रबंधों के नाम पर हमें जो बहुत कुछ प्राप्त होता है, उसमें शोध की अपेक्षा समीक्षा अधिक है। शोध के क्षेत्र के अंतर्गत समीक्षा एक साधन और सहायक उपकरण के रूप में आ सकती है और आवश्यक भी है परन्तु जहाँ शोध का कोई निश्चित परिणाम न हो वहाँ समीक्षा शोध की सहायक नहीं बन पाती और शोध का स्वरूप भी बिगड़ जाता है। वास्तव में ये दोनों ही काय अयो-याश्रित हैं। शोध के द्वारा समीक्षा को नये तथ्य प्राप्त होते हैं और नयी दृष्टि भी मिलती है। साथ ही साथ समीक्षा के द्वारा शोध अधिक ठोस आधारभूमि प्राप्त करता है और उसके परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं। अतः शोध और समीक्षा परस्पर विरोधी नहीं बरन एक दूसरे की पूरक हैं। इस दृष्टिकोण को अपनाते पर शोध में किसी निश्चित परिणाम सबधी सफलता का होना भी आवश्यक जान पड़ता है। शोध की उच्च भूमियाँ जो तार्किक निष्कर्षों के रूप में उपलब्ध होती हैं, उनके लिए पहले सम्यक और परिपूर्ण तथ्यानुसंधान अपेक्षित होता है। यह तथ्यानुसंधान विश्वसनीय भूमिका तभी बना सकता है जब कि प्रौढ़ समीक्षण दृष्टि के साथ उसके परिणामों को प्रस्थापित किया गया हो।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत जहाँ कई क्षेत्रों में तार्किक अनुसंधान की उच्च भूमियाँ बन चुकी हैं वहीं अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें तथ्यानुसंधान भी अभी पूरा नहीं हुआ है। उसका कारण यही है कि हिंदी साहित्य रचना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा है और विभिन्न भाषा भाषियों के द्वारा भी रचा जाकर विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध होता है। साथ ही देवनागरी के अतिरिक्त अन्य लिपियों में भी मिलता है। अतः इन सभी बातों का ध्यान रख कर हिंदी तथ्यानुसंधान को परिपूर्ण करना आवश्यक है।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक ने अपने अनुसंधान को विशेष रूप में रीतियुग के अंतर्गत परिसीमित किया है और इस युग के साहित्य से संबंधित अनेक नये तथ्य उसने प्रकट

किये हैं। चितामणि के दो नये ग्रन्थ—“रसविलास” और “श्रीकृष्ण चरित्र” को प्रकाश में लाने का काय अभिनवनीय है। भूपण के नाम और मुरलीधर कविभूपण के साथ महाकवि भूपण के नाम की भ्राति का निराकरण भी उसने त्वसगत और तथ्य पर आधारित प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुए किया है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती और कवीन्द्र परमानन्द को कुछ लोग एक ही व्यक्ति मानते हैं। इस सम्बन्ध में भी लेखक ने अपने सुस्पष्ट तर्क और प्रमाण उपस्थित कर अपने निश्चित मत को यथित किया है। इसी प्रकार नृपशम्भु या सभाजी को अभी तक हिन्दी साहित्य एक श्रृंगारी कवि के रूप में ही जानता रहा। इस ग्रन्थ में लेखक ने उनकी एक अज्ञात रचना “सप्तसतक” को खोज करके—नृपशम्भु का एक दूसरा ही पक्ष प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नृपशम्भु के काव्यगुरु कविकलश सबधी उनके कवित्व का विवेचन हिन्दी साहित्य के लिए नयी मूचना है। “मराठी लोक-कवियों की हिन्दी रचनाएँ” हिन्दी और अहिन्दी दोनों ही क्षेत्रों में अपना विशिष्ट महत्त्व निर्धारित करती हैं। डॉ० त्रिवाकर ने उन्हे प्रथम बार प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हिन्दी के स्वतः प्रचार और प्रसार सबधी महत्त्वपूर्ण दिशा को स्पष्ट करके हिन्दी के राष्ट्रभाषा स्वरूप के लिए एक सुदृढ आधार खोज निकाला है।

जहाँ तक शेष समीक्षात्मक निबन्धों का प्रश्न है, वे विभिन्न विषयों पर लेखक के अध्ययन और विचारों का सकलन प्रस्तुत करते हैं। ये कुछ नमूने के निबन्ध हैं और हमें आशा है कि और अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों से सर्वधिन निबन्ध भी प्रकाश में आयेंगे। इस संग्रह के प्रथम बारह निबन्ध तो निश्चय ही बड़े महत्त्व के हैं, जिनके अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के अज्ञात तथ्यों की खोज और अस्पष्ट भूमियाँ का उद्घाटन किया गया है। लेखक का यह प्रयत्न सराहनाय है और मुझे विश्वास है कि उसके इस प्रकार के प्रयास चलते रहेंगे और ऐसे निबन्धों से हिन्दी साहित्य का अध्ययन बराबर सामाजित होता रहेगा। लेखक के इन सब प्रयासों के लिये मेरी शुभ-कामनाएँ हैं।

१७, फरवरी १९६५
सागर विश्वविद्यालय,
सागर (मध्यप्रदेश)

—मगीरय मिश्र

प्राक्कथन

स्वाधीनता के पश्चात् हिंदी साहित्य के विकास को एक नयी दिशा प्राप्त हुई। इस काल में साहित्य की विभिन्न दिशाओं में युग की माँग तथा आवश्यकता को लक्ष्य कर अनेक रचनाओं का प्रणयन हुआ है, हो रहा है। उपन्यास, कहानी, नाटक काव्य, ललित निबन्ध आदि के अतिरिक्त शोधात्मक एवं समीक्षात्मक साहित्य भी विपुलता से प्रवाहित हुआ है। हिंदी साहित्य को गतिविधि देने में पत्र-पत्रिकाओं का भी अत्यंत महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

समय-समय पर प्रकाशित इन पत्रिकाओं में शोध तथा समीक्षा विषयक कई महत्वपूर्ण लेख मिलते हैं जिनमें नये तथ्य, दृष्टिकोण तथा नयी सूचनाएँ होती हैं। ऐसे महत्वपूर्ण लेखों को संगृहीत कर उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करना आवश्यक होता है वरन् उनसे बिलख जाने अथवा खो जाने का भय सदैव रहता है। संभवतः इसी कारण से हिंदी साहित्य के अद्यावधि इतिहासों तथा ग्रंथों में विषय से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य एवं सूचनाओं का समावेश नहीं हो पाता। हिंदी में प्रकाशित समस्त पत्रिकाओं को एक साथ प्राप्त करना भी एक व्यावहारिक कठिनाई है। अतः इसी दृष्टि को सामने रखकर तथा कुछ हितैषी मित्रों के आग्रह पर 'हिंदी साहित्य शोध और समीक्षा' प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस पुस्तक के निबन्ध प्रमुखतः शोधात्मक एवं समीक्षात्मक हैं। इनमें से अधिकांश निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं और कुछ निबन्ध नये लिखे गये हैं। अतः इनमें किसी प्रकार के सूत्र अथवा क्रम का न मिलना स्वाभाविक ही है। विषय सूची से स्पष्ट होगा कि निबन्धों के अधिकांश विषय मुख्यतः रीतिकाल तथा आधुनिक युग से संबंधित हैं। इन निबन्धों के संबंध में मैं कुछ कहना नहीं चाहता परंतु प्रामाणिक सामग्री के आधार पर उपलब्ध तथ्य को सत्य रूप में प्रस्तुत करते समय एकाग्र स्थल पर गुरुजन सदश हिंदी के माय विद्वानों के मतों का खंडन भी करना पड़ा है। उन विद्वानों के प्रति मुझे पूर्ण आदर है और विश्वास है कि वे मेरी स्पष्टीकृत को अयथा न मानेंगे। आशा है कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक, अपने नये-नये संस्करणों में इन निबन्धों की नयी सूचनाओं का उपयोग करेंगे।

राष्ट्रवाणी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सम्मेलन पत्रिका, हिंदुस्तानी एन्सेडमी, विश्वज्योति, सप्तसिंधु, रसवती, पुणे विद्यापीठ पत्रिका आदि पत्रिकाओं तथा महादेवी अभिनदन ग्रंथ एवं राष्ट्रभाषा विचार संग्रह ग्रंथों का साभार उल्लेख करना आवश्यक है, जिनमें प्रस्तुत पुस्तक के कतिपय लेख प्रथम बार प्रकाशित हुए

धे । सागर विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष गुरुदय डा० भगीरथ मिश्रजी के प्रति किन्तु गम्भीर म वृत्तना व्यक्त करें, जिन्होंने अपने कमठ व्यक्तित्व से न केवल मुझे प्रभावित ही किया अपितु अविरत लेखन की सजीवनी प्रदान कर मुझे क्रियाशील बनाया । इसके अतिरिक्त आदरणीय आचार्य नन्टुलार वाजपयी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ० विनय मोहन शर्मा डा० नगेंद्र डा० रामनिरजन पांडेय, श्री, गा० प० नने आदि गुरुजना की समय समय पर विचार विमर्श द्वारा जो सहायता तथा प्रेरणा मुझे मिलती रही उनके लिए मैं इन सभी का हृदय से अत्यंत आभारी हूँ । दिल्ली पुस्तक सदन के सचालक भाई वज्र भूषण नागर तथा वज्रमोहन को मैं विनोद धर्मवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे इन विखर हुए निबंधों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कर विद्वानों के सम्मुख रखने का सुअवसर द दिया । पूना में रहकर पुस्तक का प्रूफ देखना मेरे लिए संभव न था अतः भाई हरिकृष्ण शास्त्री ने अत्यंत सावधानी से प्रूफ देखकर अपने उत्तरदायित्व को पूरा किया, इसलिए उन्हें धर्मवाद देना आवश्यक है । इतनी सावधानी बरतने पर भी यत्रालय द्वारा कुछ त्रुटियाँ रह ही गयी हैं, जिसके लिये मैं पाठकों का क्षमाप्रार्थी हूँ ।

आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य के अध्येताओं, प्राध्यापकों तथा विश्वविद्यालय छात्रों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी ।

हिन्दी विभाग,
पूना विश्वविद्यालय, पूना ७

—कृष्ण विवाकर

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
१ चिनामणिद्वय भाषापिण्ड का रचनाकार	१
२ चिनामणि त्रिपाठी के दो अनात ग्रन्थ 'रसविलास और 'श्रीकृष्ण चरित'	८
३ महाकवि भूपग और मुरलीधर कवि भूषण—भिन व्यक्ति	१७
४ महाकवि भूषण के वास्तविक नाम की खोज	२४
५ नीलकण्ठ उपनाम जटाशंकर के शब्दा म	२६
६ रीतिकाल के अज्ञात कवि 'सीताराम	३२
७ मराठा शासक नृपशंभु का हिंदी काव्य	३८
८ रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मुल्यांकन	४४
९ कवि कलशकृत 'चंद्रकवर की बात'	५०
१० कवींद्र सरस्वती और कवींद्र परमानंद	५५
११ हिंदी साहित्य का प्रथम अभिनंदन ग्रन्थ—'कवींद्र चंद्रिका'	६१
१२ मराठी लोक कवियों की हिंदी रचनाएँ	६८
१३ महाराष्ट्र के प्रमुख घम-संप्रदाय	७७
१४ रीतिकालीन मराठी साहित्य	८६
१५ मराठी साहित्य की प्रमुख कवयित्रियाँ	९६
१६ भक्तिकालीन हिंदी काव्य में भावनात्मक एक्य	१०६
१७ हिंदी साहित्य में उपासक-काव्य	१०८
१८ काव्य की आत्मा भारती विचार प्रवाह	११६
१९ 'द्वार' का सामाजिक प्रबोधन	१२७
२० हिंदी नाट्य-साहित्य और उसका भविष्य	१३५
२१ छायावाद और स्वच्छंदतावाद	१४७
२२ ठेलेपर हिमालय और घमवीर 'भारती'	१५४
२३ मोड़ी लिपि और उसकी व्युत्पत्ति	१६०
२४ खुसरो तथा रामजोशी का मनोरंजनात्मक काव्य	१६५
२५ होनहार महाकवि का त्यागपत्र !	१७१

१ | चिंतामणि कृत 'भाषापिगल' का रचनाकाल

रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य एवं कवि चिंतामणि त्रिपाठी के सबंध में प्रकाशित होने लगी साहित्य में जो परिचय उपलब्ध होना है वह अनेक दृष्टियों से अपूर्ण तथा भ्रांतिपूर्ण प्रतीत होता है। आचार्य केशव के पश्चात् रीतिकालीन साहित्य में भाषाशास्त्र के विविधांगों का सम्यक् निरूपण कर परवर्ती आचार्यों को प्रगल्भ मांग का दिग्दर्शन कराने वाले व्यक्ति आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी ही थे। दुर्भाग्य से इस महत्वपूर्ण आचार्य कवि की ओर अधिकांश विद्वानों का विशेष ध्यान नहीं गया है। जहाँ कहीं विगिष्ट सद्म में अथवा स्वतंत्र रूप से चिंतामणि त्रिपाठी की चर्चा की गयी है उसमें शिर्षासिंह सरोज में लिखी हुई बातों का अधानुकरण मात्र दिखायी देता है। चिंतामणि के सद्म में विशेष खोज करना दूर ही रहा परन्तु अज्ञातविधि उपलब्ध सूचनाओं की उपेक्षा कर जब कुछ विद्वान उन्हें 'कृतिरस सं हीन' कहते हैं तब सखेद आश्चर्य होता है। इस लेख में चिंतामणि कृत 'भाषापिगल' के सद्म में आने वाली कुछ भ्रांतियों का निराकरण करने का प्रयास किया गया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास तथा अथ प्रथम में चिंतामणि कृत 'भाषापिगल' ग्रंथ का उल्लेख छंद विचार छंदोविचार, छंद विचार पिगल, छंदोलता, पिगल, भाषापिगल आदि विभिन्न नामों से किया गया है। कुछ विचारक 'छंद विचार' और पिगल दो स्वतंत्र ग्रंथ मानते हैं। वस्तुतः चिंतामणि द्वारा छंद शास्त्र पर लिखा हुआ एक ही ग्रंथ प्राप्त होना है जो उपयुक्त विभिन्न नामों से परिचित किया गया है। अंतर्गत के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इसका वास्तविक नाम भाषापिगल ही है। दक्षिण—

चिंतामणि कवि को हुक्म कियो साहि मकरद ।
करी लछ लछम सहित 'भाषा पिगल' छंद ॥

इस ग्रंथ के प्रारंभ में भी लिखा है कि 'अथ भाषा पिगल चिंतामणि कवि कृत लिप्यने। अतः यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लिपिकार भी इस ग्रंथ का नाम भाषापिगल ही समझता था। चिंतामणि ने 'कविहुलकल्पतरु' के अन्तगत भी इस ग्रंथ का उल्लेख

‘छद विचार’ न कर ‘पिंगल ही किया है। अतः यह निश्चित होता है कि इस ग्रन्थ का वास्तविक नाम ‘भाषापिंगल ही है और लिपिकारों ने ही इसमें छद विवेचन देकर छद विचार, छदोलता, आदि नाम दिये हैं।

डा० शिवसिंह सेंगर ने ‘सरोज’ में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि चित्तामणि बहुत दिनों तक नागपुर के सूयवशी भोसला राजा मकरदशाह के यहाँ रहे और उन्हीं की आज्ञानुसार इन्होंने अपने ‘पिंगल’ ग्रन्थ की रचना की। तब से हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासों तथा अन्ध ग्रन्थों में, ‘हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास’ जैसे अद्यावधि ग्रन्थों में भी शिवसिंह सेंगर की बात ही स्वीकृत की गयी है और समय-समय पर उन्हीं के द्वारा लिखित निम्नलिखित छद भी दिया गया है—

सूरजबत्ती भोसला, लसत साह मकरद ।

महाराज दिग्पाल जिमि माल समुद्र सुभचद ॥

यही छद ‘भाषा पिंगल की हस्तलिखित प्रतियाँ में इस प्रकार मिलता है—

सूरजबत्ती भूसिला लसतु साहि मकरद ।

महाराज दिग्पाल जिमि माल समुद्र सुभचद ॥^१

इससे स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त दोनों छदों में मूल हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त छद ही अधिक समीचीन है। माल समुद्र सुभचद की अपेक्षा ‘माल समुद्र सुभचद’ अधिक सुस्पष्ट एवं अर्थ-गर्भित है। मूल प्रति के छद के अनुसार इसका अर्थ होगा कि सूयवशी के महाराज दिग्पाल साहि मकरद भोसला अपने पिता मालोजी रूपी समुद्र के पुत्र चद्रमा के समान शोभित होते हैं। जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ अपने समय में तथा उसके पश्चात् भी बहुत लोकप्रिय रहा होगा। शिवसिंह सेंगर, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ का ध्यान करते समय ‘बहुत भारी इस विशेषण का प्रयोग किया है जो ग्रन्थ की महत्ता एवं लोकप्रियता का द्योतक है। चित्तामणि के इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ लगभग सभी प्रमुख हस्तलिखित सप्रहालयों में उपलब्ध होती हैं। काशी, प्रयाग, बड़ौदा, रीवा, जयपुर, हैदराबाद, से लेकर सुदूर तजावर तक के सप्रहालयों में इसकी प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि हैदराबाद की स्टेट लायब्रेरी में जहाँ लगभग बारह सौ हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थ उर्दू लिपि में सुरक्षित हैं उनमें चित्तामणि कृत भाषापिंगल भी समाविष्ट है। गुलाम अली खाँ ने ‘भाषापिंगल का उर्दू रूपान्तर किया है।^२ उपलब्ध प्रतियों में तजावर की हस्तलिखित प्रति अतिजीर्ण अवस्था में एवं अधिक प्राचीन प्रतीत होती है।

भाषापिंगल के किसी भी छद में नागपुर के मकरदशाह भोसले का उल्लेख नहीं मिलता। इतिहासों में नागपुर के भोसला राजाओं की परम्परा में ‘मकरदशाह’

१ भाषापिंगल (हस्तलिखित प्रति), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २।२३

२ स्टेट लायब्रेरी हैदराबाद (दक्षिण) हस्तलिखित सग्रह, ज० क्रमांक ३२९

का नामोल्लेख तक नहीं है। चिंतामणि के समय यह प्रात मराठा के अधिकार में भी नहीं था। सन १७०७ के लगभग मराठों का वास्तव में प्रवेश इस प्रदेश में हुआ।^१ एसी स्थिति में ज्ञात नहीं जाना कि 'सरोज' कार ने 'साहि-मकरद' को किस आधार पर नामपुर के मकरदशाह भोसला कहा है। सम्भवत 'शिर्वासिंह सरोज' के आधार पर ही परवर्ती लगभग सभी साहित्य के इतिहासकारों ने इसी परम्परागत बात को स्वीकार किया है। प० भगीरथप्रसाद दीक्षित जी ने तो इस भ्रममूलक बात को अधिक स्थिर बनाकर उसके अनुसार 'पिगल ग्रंथ का रचनाकाल सवत् १७०० अर्थात् सन् १६४३ के लगभग न मानते हुए सवत् १७७६ अर्थात् सन् १७२२ के लगभग मान लिया है।^२

इस परम्परागत भ्रममूलक बात को सबप्रथम प० कृष्ण बिहारी मिश्रजी ने अस्वीकार करते हुए लिखा कि चिंतामणि के 'भाषापिगल' में शिवाजी के पितामह मकरदशाह और उनके पिता शहाजी की प्रशंसा है।^३ इसमें उन्होंने 'साहि मकरद' को शिवाजी के पितामह अर्थात् मालोजी माना है। सम्भवत इन्हीं के कथन के आधार पर डॉ० भगीरथ मिश्रजी^४ तथा डॉ० किशोरीलाल गुप्तजी^५ ने 'साहि मकरद' को शिवाजी के पितामह मालोजी अर्थात् माल मकरद मान लिया है जिनके आश्रय में चिंतामणि ने 'भाषापिगल' ग्रंथ की रचना की थी। प० भगीरथप्रसाद दीक्षित जी ने भी अपने भूषण विमश की द्वितीयावृत्ति में 'साहि मकरद' को शिवाजी के पितामह मकरदशाह मान लिया है।^६

वास्तव में ये 'साहि-मकरद' शिवाजी के पितामह मालोजी न होकर उनके पिता शहाजी भोंसले ही थे जिनकी आज्ञा से चिंतामणि ने भाषापिगल ग्रंथ की रचना की थी। अन्तर्साम्य तथा बहिर्साम्य दोनों सामग्रियों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि 'साहि मकरद' अर्थात् 'मकरदशाह' छत्रपति शिवाजी महाराज के पिता शहाजी ही थे। भूषण कवि ने शिवाजी के पिता मालोजी के लिए 'माल मकरद' तथा शिवाजी के लिए 'सिवसरजा मकरद' शब्दों का प्रयोग किया है।

१ महावीर ता घस में भयो एक अघनोस ।

लियो बिरद सीतोदिया दियो ईस को सीस ॥

१ नामपुरचा सांस्कृतिक इतिहास—दे० गो० लाडगे (सन १९५४ ई०), पृ० १

२ भूषण विमश—प० भगीरथ प्रसाद दीक्षित (द्वितीय आवृत्ति), पृ० ३०

३ मतिराम प्रयावली—प० कृष्ण बिहारी मिश्र (सवत् १९९१), पृ० २२३

४ भृगार मजरी—सम्पादक डॉ० भगीरथ मिश्र (सन १९५६ ई०), पृ० १७

५ प्रियसन कृत हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास—हि० अनुवादक डॉ० किशोरीलाल गुप्त (सन १९५७ ई०), पृ० १५६

६ भूषण विमश—प० भगीरथ प्रसाद दीक्षित (द्वितीयावृत्ति), पृष्ठ ३०

ता कुल में नृपय द सय उपजे घणत भुलद ।

मूमिपाल तिन में मयो बडो 'माल मकरद ॥'

२ सूर तिरोमनि सूर कुल सिप सरजा मकरद ।

क्या जीन मियराज सों अय अघक अवरण ।^२

जब 'माल मकरद' मालोजी हैं, सिव-सरजा मकरद' सिवाजी हैं तब स्पष्ट हो जाता है कि 'साहि मकरद' शहाजी ही हैं। शहाजी के आश्रित कवि जयराम पिंड्य वृत्त 'राधामाधव विलास चपू' में भी शहाजी के लिए 'साहि मकरद' शब्द का प्रयोग किया गया है—

देखियत नननि सोयि यन बोलतु है

सुनो 'साहि मकरद' जतपल रन की ।^३

शहाजी के आश्रित सस्कृत कवि तथा संगीतज्ञ वेद कवि ने सन १६५० ई० में 'संगीत मकरद' नामक सस्कृत ग्रंथ की रचना की थी। यह संपूर्ण ग्रंथ तजौर के सरस्वती महल प्रयालय में सुरक्षित है। इसमें भी शहाजी के लिए मकरद शब्द तथा 'साहिमकरद' दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।

नरवर 'मकरद' शब्द गुजमधुकर भगत मंत्र पाठपूवमें ।^४

इस प्रकार चिंतामणि के समकालीन कवियों के उपयुक्त उदाहरणों से तो यह स्पष्ट ही हो जाता है कि साहि मकरद और कोई न थे बल्कि शिवाजी के पिता शहाजी ही थे जिनके आश्रय में यह 'भाषा पिंगल' लिखा गया था। बहिमाधव सामग्री के समान ही अतर्साक्ष्य सामग्री से तो यह बात अधिक ही सुस्पष्ट हो जाती है। 'भाषा पिंगल' की प्रारंभ से अत तक पढ़ने पर यह बात ही स्पष्ट हो जाती है कि संपूर्ण ग्रंथ में शहाजी की ही प्रशंसा है और उनके लिए कवि ने साहि मकरद, साहिनपति, साहि महीपति, साहिजी, साहिखुमान माल मकरद नद सरजा आदि संबोधनों के प्रयोग किये हैं। इसी ग्रंथ के उत्तरार्ध के लगभग अंत में जो छंद है वह तो इस बात को अत्यंत सुस्पष्ट कर देता है—

माल मकरद नद सरजा बिलद मोहै

आलम सराहै याकी ओज ओ उदरती ॥

१ संपूर्ण प्रयायली—संपादक मिश्र बंधु (संवत् २०१५), पृष्ठ २

२ वही, पृष्ठ ४९

३ राधामाधव विलास चपू—जयराम पिंड्ये, सम्पादक वि० का० राजवाडे (गुरु १८४४) पृ० ३५६

४ वेद कवि वृत्त संगीत मकरद' (हस्तलिखित प्रति), सरस्वती महल प्रयालय तजौर न० १०७२४ (दानवणत)

आसाम तिलोग तथा दिग्गज निहू के
नाह साहि गर नाहन ती दिग्गज व डारती ॥'

'माल मकरद' शिवाजी के पिता मल्लजी अथवा मालोजी माने जाते हैं अतः 'माल-मकरद नद' का अर्थ अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि वे मालोजी के पुत्र शहाजी ही हैं। इस प्रकार बहिर्माक्ष्य तथा अन्तर्माक्ष्य के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि चिन्तामणि ने 'भाषापिगल' ग्रन्थ की रचना जिनकी आज्ञा से की वे न तो शिवाजी के पितामह मालोजी थे न नागपुर के 'मकरद शाह' भासला बल्कि वे थे शिवाजी के पिता तथा मालोजी के पुत्र शहाजी।

जब यह सिद्ध हुआ कि चिन्तामणि ने 'भाषापिगल' की रचना शिवाजी के पिता शहाजी की आज्ञा से उही के आश्रय में की तब यह भी निश्चित हो जाता है कि उक्त ग्रन्थ का रचना काल भी शहाजी की मृत्यु के पूर्व अर्थात् २३ जनवरी, १६६४ के पूर्व होना चाहिये। ५० भगौरथ प्रसाद दीक्षितजी ने 'भाषापिगल' का निर्माण काल सन् १७७६ अर्थात् सन् १७२२ ई० मान लिया है और वह भी इन्होंने नारनौल राज्य पटियाला में प्राप्त चिन्तामणिकृत पिगल की एक पंक्ति के आधार पर निश्चित किया है, जो पंक्ति अत्र स्थला में प्राप्त भाषापिगल की प्रतिव्या में बनी ही नहीं मिलती। वह पंक्ति इस प्रकार है—

बहुत अक मनि द्वीप द्वै जानि बराबर लेहु

प्रथम उहाने इसी पंक्ति के आधार पर 'पिगल का निर्माण काल-सन् १७६७ मान लिया था, जब वे मकरदशाह या साहि मकरद को नागपुर के भासला राजा मानने के पक्ष में थे।^१ इस कथन के लगभग चौबीस वर्ष पश्चात् भूपण विमश की द्वितीयावृत्ति में, जो सन् १६५० में प्रकाशित हुई उहाने साहि मकरद' की नागपुर में मकरदशाह भासला १ मानकर शिवाजी के पितामह माना और उसके अनुसार निर्माणकाल को भी सन् १७६७ के स्थान पर सन् १७७६ मान लिया। इस प्रकार देखा जा सकता है कि उपर्युक्त पंक्ति का अपनी सुविधा के अनुसार अर्थ लगाकर पिगल का रचनाकाल स्थिर करने का उहाने प्रयत्न किया है। चूंकि सबसे प्रथम उहाने ही भाषापिगल की रचना-काल-सूचक उपर्युक्त पंक्ति के मिलने तथा उचित होने की बात उठायी थी। तब उनके लिए यह उचित न लगा होगा कि अन्य प्रतियों में प्राप्त पंक्ति को स्वीकार कर लें। अतः अपनी पूर्वोक्त स्थापना को स्थिर बनाने के उद्देश्य से उहाने यह कल्पना कर ली कि जिस प्रकार शिवाजी की प्रशंसा में भूपण

१ चिन्तामणिकृत भाषापिगल (हस्तलिखित प्रति), ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बंबोदा, सी० ४५९५

२ शिवकालीन पत्रसार सप्त खंड ३—सपादक १० ना० जोशी (सन् १९३७ ई०), पृष्ठ १८४

३ 'माधुरी' पत्रिका, १९ अप्रैल, १९२६ पृष्ठ ३६०

ने 'शिवराज भूषण' उनके मरने के पीछे सं० १७७३ वि० में रचा था, उसी प्रकार चिंतामणि ने इस पिंगल ग्रंथ की रचना शिवाजी के पितामह मकरदंदाह के निग सवत १७७६ वि० में की थी।^१ अतः पंडित भगीरथ प्रसाद दीक्षित जी के विचारों में किसी प्रकार की स्थिरता न होने तथा ऐतिहासिक सत्य का अभाव होने से उस स्वीकार नहीं किया जा सकता।

शिवाजी के आश्रित कवि जयराम पिडये ने चिंतामणि का उल्लेख अपने 'राधामाधव विलास चपू' में किया है।^२ स्वयं चिंतामणि ने 'भाषापिगल म स्पष्ट लिखा है कि—

चिंतामणि कवि को हुषम बियो साहि-मकरद ।
करी सछ सछन सहित भाषा पिगल छद ॥
साहि नृपति के हुषमते मो मति की परगास ।
नननु की रवि के उव अधकार की नास ॥^३

'भाषापिगल' म प्रयुक्त वर्तमानकालीन त्रिव्याँ आगीर्वाणत्मक वचन आदि सभी बातों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रंथ चिंतामणि ने शिवाजी के आश्रय म २३ जनवरी १६६४ के पूर्व अर्थात् उनकी मृत्यु के पहले लिखा था। भाषापिगल का प्रारंभिक दस छंदों के अंतर्गत एक छंद मिलता है जिसे पिगल के निर्माण काल का सूचक माना जाता है—

कहि कवि मनि अरु द्वीप द्व जानि बरावरि लेहु ।

गुन प्रकास तब करत जब पावन पूरन नेहु ॥—भाषापिगल छंद ८

यही छंद अधिकांश हस्तलिखित प्राप्त प्रतियों म मिलता है। यदि इस छंद का निर्माण-काल सूचक दोहा मान लिया जाए तो कहना न होगा कि इसका पूर्वाध ही सूचनात्मक दिखायी देता है। सकेत कोण^४ के अनुसार इस दोहाद्वय म लिखित निर्माण काल (कवि=१ मनि=७ और द्विप द्व=१४=१७१४) सवत १७१४ अर्थात् सन १६७७ ई० ठहर जाता है। शिवाजी के आश्रित कवि जयराम पिडये ने 'राधा माधव विलास चपू' की रचना शिवाजी के आश्रय में शके १५८० अर्थात् सन् १६५८ ई० के लगभग पूर्ण की थी।^५ जयराम कवि ने अपने ग्रंथ में चिंतामणि का उल्लेख भी

१ भूषण विमल—प० भगीरथ प्रसाद दीक्षित पृष्ठ ३०

२ राधामाधवविलासचपु पृष्ठ २७५ तथा भूषण—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ८८

३ चिंतामणिवृत्त भाषापिगल (हस्तलिखित प्रति), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छंद ८

४ सकेत कोण—श्री० शा० हणमते (प्रथम सं०) पृष्ठ ११४

५ राधामाधवविलासचपु, पृष्ठ ४

किया है। सन १६५३ से सन १६६४ तक का काल शहाजी महाराज के जीवन का वैभव-सपन काल था। बगलोर की जागीर में एक स्वतंत्र राजा के समान शहाजी का ऐदव्य था। दूर दूर के कवि, पंडित, उनके दरबार में पहुँचते थे और पुरस्कार प्राप्त कर लेते थे। शहाजी अनेक भाषाओं के अच्छे ज्ञाता तथा रसिक और गुणग्राहक होने से उस समय उनके दरबार में विभिन्न भाषाओं के दूरस्थ कवियों तथा पंडितों का सदाव ध्यावागमन रहता था। जयराम कवि ने अपने 'चपू' में ऐसे लगभग ७० नामों का उल्लेख किया है। अतः अनेक दृष्टियों से पिण्ड का रचनाकाल सन १७१४ अर्थात् सन १६५७ ही समीचीन लगता है।

'भाषा पिण्ड' की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियाँ में तजौर के सरस्वती महल ग्रन्थालय की हस्तलिखित प्रति अतिजीर्ण एवं प्राचीन प्रतीत होती है। इस हस्तलिखित प्रति में भी उपयुक्त छंद तो मिलता ही है परंतु अंत में भी एक ग्रंथ समाप्ति का सूचक छंद इस प्रकार मिलता है—

सवत ग्रहस वरष बीतो जब उनईस।

पाच वदि वशाष की रच्यो ग्रंथ अवलीस ॥^१

इस छंद के अनुसार इस ग्रंथ का समाप्ति काल सवत १७१६ की वशाष मास की वदि पचमी हो जाता है अर्थात् मन् १६६२ के लगभग यह समय आ जाता है। अतः यह निश्चित हो जाता है कि भाषापिण्ड के पूर्वाध में पाया जाने वाला सवत सूचक छंद ग्रंथ का प्रारंभ-काल सूचक छंद है न कि समाप्ति सूचक। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि 'पिण्ड' का प्रारंभ सन १७१४ अर्थात् सन १६५७ को हुआ और उसकी समाप्ति सवत १७१६ की वशाषमास की वदि पचमी को हुई थी। शिवासिंह सरोजानि ग्रंथों में चिंतामणि के 'साहि मकरद' के यहाँ 'बहुत दिन तक' रहने की बात जो लिखी है उससे इस बात की पुष्टि ही हो जाती है।

१ चिंतामणि कृत छंदोविचार (हस्तलिखित प्रति) तजौर टी० एम० एस० न० बी ५३६८

२ | चिन्तामणि निपाठी के दो अज्ञात
ग्रन्थ 'रसविलास' और
'श्रीशृष्ण चरित्र'

भाषाण चिन्तामणि निपाठी द्वारा विरचित ग्रंथों में से एक अज्ञात ग्रन्थ कविकुलकान्त जयवरी १८७५ में मयनासिंहार प्रथम संग्रह में प्रकाशित हुआ था। दुभाषण में उगरी मुक्ति प्रति भी गुणगान में आनन्द प्राप्त नहीं हो सकती है। 'निषिद्ध-मारात्र' में चिन्तामणि विरचित कविकुलकान्त जयवरी विगत, काव्य प्रकाश काव्य विरह तथा समाप्त नामक तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। ठाणुर निषिद्ध गैंगर ५१ में केषण मुनी मुतादृशियों के आचार पर यह गुणगान नहीं दी कि-य व गमन ग्रन्थ उाके विनी प्रयासय म उातय थ। नाम म कविकुलकान्तय तथा भाषाविक्रम (छाणार विगत) आत्र भी गुणगान उातय हाये है। इनके अनिर्दिष्ट चिन्तामणिग्रन्थ 'कविसविषार तथा 'समाप्तय नामक ग्रन्थ भी सङ्ग्रहावली में प्राम्य है। डॉ० मनीरय मिश्रजी चिन्तामणि द्वारा सङ्ग्रहावली सङ्गठित 'शृणार मङ्गिरा भी प्रकाश म ल आ पुक है। गोज म चिन्तामणि निपाठी क एम दो महत्त्व पूण ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं जिनका उल्लेख लक उगक पूव विनी ग्रन्थ म गहा मितना। ये ग्रन्थ हैं रसविलास और 'श्रीशृष्णचरित्र' जिनका सङ्ग्रहित परिचय मात्र यहाँ दे रहा हूँ।

रस विलास

इस ग्रन्थ की दो पादुतिवियाँ श्रीकानेर के अनूप सल्लुन प्रयासय में उपलब्ध हैं। एक प्रति सङ्ग्रहित एक अपूर्ण है और दूसरी प्रति लगभग सपूर्ण एक स्वयत्स्विक है परन्तु इसका अन्तिम पृष्ठ लङ्घित है। इस प्रति के मुताबिक पर माटे अक्षरा म लिखा है— रसविलास भाषा' ग्रन्थ के अन्तगत कवि न सयत्र 'रसविलास च' का ही प्रयोग किया है। देगी वागज पर लिखित ग्रन्थ पढ़ते समय लिपिकार की असावधानी का अनुभव अवश्य ही आ जाता है। प्रतिलिपि बनाते समय कतिपय स्थलों पर 'ग' तथा वाक्यांगों की भी छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार है—

पूजि भवानी घरण जुग करि निज सरण गनेत ।

चिन्तामणि कवि' कहत है रसविलास सुखयेत ॥१॥

तो मैं रसु कासो कहत इह आगका पाई ।
निज मति के अनुहारि हौ कहत सुरस चितु लाई ॥२॥

इस ग्रथ में मयत्र चिन्तामणि की उसी प्रकार छाप मिलती है जैसे उनके अग्र ग्रथा में प्राप्त होती है । रसविलास के प्रत्येक परिच्छेद की समाप्ति पर लिखित पुष्पिका भी उनके अग्र ग्रथा की भांति ही है । उदाहरण के लिए प्रथम तथा द्वितीय परिच्छेद की पुष्पिकाएँ द्रष्टव्य हैं—

इतिश्रीमच्चिन्तामणिकृते रसविलासे प्रथम परिच्छेद ।
इतिश्रीमच्चिन्तामणिकृते रसविलासे अलखनविभावनिरूपणे
नायक वणनानाम् द्वितीय परिच्छेद ।

रचनाकाल

कविकुलकपतर, शृंगार मञ्जरी, कृष्णचरित्र आदि ग्रथा की भांति चिन्तामणि में इस ग्रथ में भी रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है । रसविलास के अतगत ग़ाहजहाँ, दारागिहोह हूदयशाह, जाफरखान तथा जनसी मुहम्मद की प्रशस्ति के जो छंद मिलते हैं । उनके आधार पर ग्रथ का रचनाकाल अनुमानत निर्दिष्ट किया जा सकता है । उदाहरण के लिए आश्रयदाताओं की प्रशस्ति विषयक निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

साहिजहा जू के हाथी अरिदल के प्रमाथी
गिरिन के साथी सोर पारत थलक में ॥

× × ×

दारा साहि तद्यन सो देत दान लच्छन सो
जगत के रच्छन विवच्छन विसेषिए ॥

× × ×

प्रेमसाहि जू के नद महाराजा हूदसाहि
मिरो अगहारी वीर सगर को भाकरी ॥

× × ×

एसो को जालिन वीर जहान जो जाफरखान सो जग जुर ।
जाफरखान नवाब कस्त्यो खण गहि रणमण ॥

× × ×

लोचन हैं लाल ला जनवी मुहम्मद जू ।
अब कहो कहा कहा चीहि चीहि लीजिए ॥

इन उदाहरणों में प्रयुक्त वर्तमानवासियों किम्माओं तथा प्रशस्तियों से स्पष्ट होता है कि रसविलास की रचना ग़ाहजहाँ, दारागिहोह हूदयशाह, जाफरखान एवम् अरवी मुहम्मद के जीवनकाल में हुई थी । इनसे ग़ाहजहाँ का शासनकाल सबत्

१६८४ वि० से १७१४ वि० तक या ।^१ शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह की मृत्यु सन १६५९ ई० अर्थात् सवत् १७१९ वि० में हुई ।^२ प्रेमशाह के सुपुत्र हृदयशाह अपनी सत्तर वष की अवस्था में सवत् १७३५ वि० में परलोक सिंघारे ।^३ इतिहास से ज्ञात होता है कि जाफरखान की मृत्यु सन् १६७० ई० अर्थात् सवत् १७२७ वि० में हुई थी ।^४ जैनदी मुहम्मद मनसबदार के पद पर सवत् १६९० वि० में नियुक्त हुआ था ।^५ अतः यह स्पष्ट है कि इन सभी लोगों का समय सवत् १६८४ वि० से लेकर सवत् १७३५ वि० तक हो जाता है । इतनी दीर्घ कालावधि में इस ग्रंथ का रचनाकाल निश्चित करना अपने आप में कठिन प्रतीत होता है ।

इन आश्रयदाताओं के समय का विचार करने पर जैनदी मुहम्मद ही एक व्यक्ति दिखायी देते हैं कि जिनकी नियुक्ति सबसे बाद में अर्थात् सवत् १६९० वि० में हुई है । शेष सभी का समय तो इनके पूर्व से ही आरम्भ होता है । 'चित्तामणिद्वय भाषाविंगल का रचनाकाल' के प्रसंग में इस बात की चर्चा की गयी है कि सवत् १७१४ अर्थात् सन १६५७ ई० में चित्तामणि गहाजी भोसला के दरबार में पहुँचे थे । अतः इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि रसविलास की रचना सवत् १७१४ वि० के पूर्व ही हुई थी । शाहजहाँ के दरबारी कवियों में चित्तामणि का उल्लेख तो इतिहासों में मिलता है^६ परन्तु वही भी इस बात को नहीं लिखा गया कि चित्तामणि गहाजहाँ के आश्रय में किस समय से किस समय तक थे । अतः रचना की निश्चित तिथि का निर्धारण करना अधिक ही कठिन है । उपयुक्त विवचन से इतना तो स्पष्ट होता है कि रसविलास की रचना सवत् १६७० वि० और सवत् १७१४ वि० के बीच हुई थी ।

विषय वस्तु

ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें रस चक्रा प्रमुख रूप से की गयी है । 'रसविलास के कुल मिलाकर आठ प्रकरण हैं । प्रकरण के लिए कवि ने 'परिच्छेद' कहा है । प्रथम परिच्छेद के अंतर्गत मंगलाचरण के उपरांत रस विभाषा का वर्णन किया गया है । द्वितीय परिच्छेद में नायक निरूपण के प्रसंग में धीरे धीरे गीत, धीरोद्धत एवम धीरोदात्त—इन चार भेदों के साथ शृंगारीनायक के अनुकूल दक्षिण गठ और घृष्ट इन भेदों का भी वर्णन है । यही पर पति, उपपति के भेद निरूपण

१ केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ४ (सन १९५७ का संस्करण), पृष्ठ ६१९

२ दाराशिकोह—३१० कालिकारजन कानूनगो (सन १९५८ ई.), पृष्ठ १२३

३ गोरेताल तिवारीद्वय बुबेलखंड का इतिहास सवत् १९९० का संस्करण, पृष्ठ १०६

४ जदुनाथ सरकारद्वय 'धीरगजेब' भाग ३ सन १९१६ का अंग्रेजी संस्करण, पृष्ठ ७९

५ बजरत्नदास द्वारा किया हुआ 'मज्रातिर-उल उमरा' का हिंदी अनुवाद 'मुगल दरबार' प्रथम संस्करण भा ३ पृष्ठ ३४४

६ केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भा ४, पृष्ठ २२१

के साथ ही प्रोपित पति के प्रोपित उपपति एवं वैशिव प्रोपितपति—ये दो उपभेद तथा नायक के सहायका—पीठमद, विट्ट एवं विदूषक के भी लक्षण और उदाहरण दिये हैं। तृतीय परिच्छेद के अतगत नायिका के पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी एवं शक्तिनी इन चार भेदों के अतिरिक्त नायिका के स्वकीया, परकीया और सामाया ये तीन भेद भी दिये हैं। यह परिच्छेद 'नाट्यशास्त्रम्' 'दशरूपक', एवं 'रस तरंगिणी' के आधार पर लिखा गया है। नायिकाओं के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए जो उदाहरण दिये गए हैं वे अत्यन्त कवित्वपूर्ण हैं। लक्षणों के पश्चात् उनके स्वरूप की समीचीन उदाहरणों से स्पष्ट करने का प्रयत्न प्रयास किया गया है। नायिका की अवस्थानुसार स्वाधीन-पतिका वासकसज्जा आदि सात भेद दिये हैं।

चतुर्थ परिच्छेद के अतगत उद्दीपन विभाव में रम्य देवा, चापी तडाग, नगर, महल, बन, बाग, शैल, रम्य-समय (धसतादि पङ्क्ति) का वर्णन किया गया है जिसमें बारहमासा वर्णन को भी स्थान दिया है। पंचम परिच्छेद में अनुभावा का वर्णन भरत के 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर किया है। षष्ठ परिच्छेद में सात्विक भावों का वर्णन है और सप्तम में सचारी भावा का वर्णन जो भरत, धनजय और विद्वनाथ के आधार पर किया गया है। अष्टम परिच्छेद के अतगत सभी रसों के लक्षण प्रस्तुत करने के बाद नखशिख वर्णन किया है। अंत में अपने आश्रयदाताओं की बिरुदावाली का सविस्तार वर्णन कर ग्रंथ को समाप्त किया है।

उदाहरण के लिए रसविलास के कुछ छंद उद्धृत कर रहा हूँ जिसमें रसविलास के काव्य-सौन्दर्य की कल्पना सहजता से की जा सकेगी। रूपवर्णन की नखशिख परंपरा में 'ललाट' का यह वर्णन देखिए—

मन महिपाल हू की सुवरन रगभूमि
 सुन्दर सोहित सो न याकी समता लहै ॥
 ए री ब्रजवाल ऐसे हाल अब रेपति न
 नेखत हि हाल नदलाल मो निहाल है ॥
 लाल सो मिलित हेम समय यह देवि कैसे
 कह्यो जात अनमद कौन सुषमा लहै ॥
 बच्यो मूल साल लग्यो साति उरि सुल साल
 प्यारो तेरो माल अघर खड बंद माल है ॥ ८१४

इसी प्रकार सोलह शृंगारों से सुसज्जित सुंदरी का यह चित्र भी अत्यंत विलोभनीय एवं कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है—

मनि मञ्जन कैं पहिरो पट भोनो दियो अखियान में अजम लीकी ॥
 मुक्ताहल नासिका बनी बनो मनि नुपुर को सुर हारक ही को ॥
 तन चदन लेप कसो अगिया बल किंकिनि रोव बनो मुखनीकी ॥
 ककन मारी के धार लस लियो चोरि क चातरता जित पीकी ४१५ ॥

पर्याप्त सम्मान एवं पुरस्कार पाकर चिंतामणि अपने घर लौटे हूँगे। उस समय उनकी अवस्था लगभग ७१-७२ वर्षों की थी। संभव है कि उसके बाद चिंतामणि वृद्धावस्था के कारण किसी के आश्रय में नहीं गए हूँगे। इसके बाद चिंतामणि का किसी के आश्रय में जाने का उल्लेख भी नहीं मिलता। अतः यह अधिक संभव जान पड़ता है कि घर आने पर ही चिंतामणि कृष्णचरित्र जैसी भक्तिपरक रचना करने में सलग्न रहे हूँगे। ग्रंथ का विशाल कलेवर और कवि की वृद्धावस्था के हिसाब से इसकी रचना के लिए तीन-चार वर्षों का कालावधि सहज ही लगा होगा। अतः अनुमानतः इस ग्रंथ की रचना सन् १७३२ के आसपास हुई होगी।

विषय-वस्तु

यह ग्रंथ बारह सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग के अंतर्गत मंगलाचरण, कृष्णजन्म, कृष्ण का असौकिक सौंदर्य-दर्शन, वसुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना, कृष्ण की कृपा से समस्त बाधाओं का निवारण, गोकुल पहुँचकर कृष्ण को नंद के यहाँ रखना और उनकी नवजात कन्या को मथुरा लाना, देवकी की प्रसूति की वार्ता सुनते ही कंस का देवकी के पास आना और उस कन्या को छीनकर पत्थर पर पटकने के लिए उद्यत होना, परन्तु उस कन्या का हाथ से छूट जाना और आकाशवाणी द्वारा कृष्ण के जन्म तथा सुरक्षित होने की सूचना देना, सुनकर कंस का व्याकुल होना और वसुदेव देवकी को बंधन मुक्त करना, इधर नंद गृह में पुत्र-जन्मोत्सव की सवत्र प्रसन्नता, यशोदा के भाग्य की सराहना, कृष्ण की श्रीढाएँ पूतनावध आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है।

द्वितीय सर्ग में प्रारम्भिक छंदों में वात्सल्य का वर्णन है। कृष्ण की बाल-लीलाओं का उत्कृष्ट वर्णन परंपरा के अनुसार ही किया गया है। कृष्ण द्वारा बाल्यावस्था में किये गये बोर-कर्मों का वर्णन भी इसी सर्ग में अंतर्गत किया गया है। तृतीय सर्ग के अंतर्गत कृष्ण-सौंदर्य का वर्णन भक्तिभाव की अभिव्यक्ति, कृष्ण के अनंत गुण तथा उसका महत्त्व, कृष्ण की वशी का माधुर्य तथा उसका ब्रजयुवतियों पर प्रभाव, आदि बातों का विवरण किया है। चतुर्थ सर्ग में कृष्ण के युवक होने की सूचना मिलती है। गोप और गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। कृष्ण का एक असुर को मारना, गोपियों का कृष्ण सौंदर्य पर लुब्ध होकर प्रेम करना तथा मुरली के माधुर्य का प्रभाव आदि के वर्णन के बाद इस सर्ग की समाप्ति होती है। पंचम सर्ग के अंतर्गत कालिया दमन तथा वन की प्रचंड अग्नि का पान कर ब्रजवासियों को सक्कों से मुक्त करने का विस्तृत वर्णन है। इसके बाद कृष्ण के महत्त्व का प्रतिपादन और कृष्ण एवम् गोपियों की लीलाओं के अनंतर यह सर्ग समाप्त कर दिया है।

षष्ठ सर्ग में कृष्ण के प्रति राधा का अनुरक्ति-चौर-हरण-लीला, कृष्ण द्वारा गोधन-घराना तथा कृष्ण के प्रति भक्तिभाव का वर्णन है। सप्तम सर्ग के अंतर्गत

गावधन पूजा तथा इन्द्र के गोप से ब्रजवासियों को बचाने के हेतु गोवधन पवत को कृष्ण द्वारा उँगली पर उठाने आदि का वर्णन है। अष्टम सग कृष्ण एव राधा के प्रेम वर्णन से आनप्रोत है। नवम सग म दोनों के प्रेम-वर्णन के अतिरिक्त सौन्दर्य वर्णन भी किया है। दशम सग में राधा और कृष्ण की विलास श्रीदाया का विस्तृत वर्णन और राधा का वियोग वर्णन दाना का समावेश किया गया है। एकादश सग लगभग ऐसे ही वर्णनो म युक्त है। विहार वर्णन के अतिरिक्त सुरत के कुछ चित्र भी इसमें मिलते हैं। द्वादश सग के अंतगत कृष्ण का राधा के अनिरिक्त अथ गोपियो के साथ रमण भी वर्णित है। इसी म भक्ति भाव की महत्ता का वर्णन कर कवि ने इस ग्रंथ को समाप्त किया है। पुष्पो की परिमित सख्या में लिखित इस लेख का उद्देश्य चिंतामणि के अज्ञात ग्रंथो का परिचय मात्र करा देना है। अत इच्छा होने पर भी श्री कृष्ण चरित्र का विस्तार से विवेचन सम्भव नहीं है। फिर भी उदारहण के लिए दो-तीन छंद उद्धृत कर देता हूँ जिसमें श्रीकृष्ण चरित्र के काव्यशिल्प तथा सौन्दर्य का ज्ञान हो सके।

वात्सल्य रस का यह वर्णन कितना हृदयस्पर्शी है, देखिए—

किंकिन नूपुर को घुनि यों किलक कर जानुन के बल धाय ।
दोऊ जने सित स्याम मनो मनि अगन अगनि की छवि छाव ।
रोहनी सग बिलोकि जसोमति बाल विनोद महासुख पाव ।
औचक अपनी छाँह निहारि डराइ कै माइ समीपहि आव ॥२॥१

श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर उससे मिलने की उत्कंठा में अपने बालो को सवारने वाली नायिका की मनोदशा का अत्यंत स्वाभाविक चित्र इस छन्द म द्रष्टव्य है—

सुन्दरी बार सवारन कारन बेनी बड़ी सजनी सों छुटाई ।
कानन आनि परी मुरली घुनि काह के रेखन को अकुलाई ॥
सौरभ फलि रही सब ठौरनि हाय सखी के छुड़ाइ क धाई ॥
चद्रमुखी उलटे मुज कै उचक कुचकै कछ बाँधनि आई ॥४॥५१

श्रीकृष्ण जसे पुत्र की प्राप्ति पर नन्द तथा यशोदा के आनन्द पारावार का यह वर्णन देखिये—

प्राची सौ यशोदा भई परम प्रसन्न रुचि
पहिले परी ही महामोह अधकार मे ॥
चिंतामणि कुमुद से फूले साथु जन मत
चाह उतपत्ति किति चद्रिका उदार में ॥
गोपी गोप गन दौरे चकोरी चकोर अनु
आनि परे महासुख सुपमा के सार मे ॥
उमड़यो अपार पुत्र चद्र के उदे ते जाने
नद भयो मगन आनन्द पारावार में ॥१॥१५

आनंद हुआ, परन्तु जब कष्टन 'शूरवीरसिंह न 'अलंकार प्रकाश' की भूमिका में मुरलीधर कवि भूषण को प्रसिद्ध महाकवि भूषण के रूप में सिद्ध करने का प्रयास किया तब हिंदी साहित्य के प्रेमियों के मन में उसने प्रति जिज्ञासा तथा उत्सुकता निर्माण होना स्वाभाविक ही है। लेखक ने 'शूरवीरसिंहजी के अनुमाना तथा धारणाओं की परीक्षा करना आवश्यक समझा। उस निगा से मुरलीधर कविकृत प्राप्त दोनों ग्रंथों का अध्ययन करने के उपरान्त यह बात अधिक स्पष्ट होने लगी कि मुरलीधर कवि भूषण हिंदी के सुप्रसिद्ध वीर रस के कवि भूषण से अभिन्न नहीं है अपितु सबया भिन्न व्यक्ति है। 'अलंकार प्रकाश' में कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

रामकृष्ण कश्यप कुलहि रामेश्वर सुव तासु ।

ता सुत मुरलीधर कियो, अलंकार परकासु ॥४३२॥

पाँच सुन्न सत्रह, वरिय, कातिक सुदि छटि जानु ।

अलंकार परकास को, कथि फोनो निरमानु ॥४३३॥

संवत् १७०५। इतिथी गहरवार बुंदेलवश वारिज विकासन मार्तंड राज्य लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दोदण्ड महावीराधिबीर राजाधिराज श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वरात्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचिते अलंकार प्रकाशे अभिधा निरूपणोनाम असमो उल्लास । समाप्तम् ।^१

'छन्दोहृदय प्रकाश' के अन्त में भी मुरलीधर कविभूषण ने अपना परिचय तथा ग्रंथ रचनाकाल इस प्रकार दिया है—

गहरव गुन मण्डत कवि पण्डित रामकृष्ण कश्यप कुल पूषन ।

रामेश्वर ता तनय सुकविजा कवि ता नहिन निरदेउ नेक पूषन ।

मुरलीधर ता सुअ सुपचम देवीसिंह सिअउ कवि पूषन ।

छन्दोहृदय प्रकाश रच्यो तिह जगमगात जिमि मिहर मयूषन ॥८॥

सवत सत्रह सय वरप तेइस कातक मासु ।

पूषन को पूरन भयो छन्दोहृदय प्रकासु ॥९॥

इति श्री पोलस्त्यवश वारिज विकासन मार्तंड गडा दुगाधिराज्य लक्ष्मीरपण विचप्यण दोदण्ड चनु पण्डितताविलासिनी भुजग महावीराधिबीर राजाधिराज श्री महाराजा हृदयनारायण देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वरात्मज मुरलीधर कविभूषण विरचिते छन्दोहृदय प्रकाशे गय विवरण नाम त्रयादसा उल्लास ॥१३॥ इति श्री विंगल भूषणकृत भाषा समाप्तम् ॥^२

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट हो जाता है कि उक्त दोनों ग्रंथों का रचयिता निःसंदेह मुरलीधर कवि ही है। उनके पितामह का नाम रामकृष्ण और पिता का नाम रामेश्वर था। वे काश्यप गान्धीय त्रिपाठी थे। वे अपने पिता के पाँचवें पुत्र थे और

१ अलंकार प्रकाश—सम्पादक कष्टन शूरवीरसिंह (सन् १९६२), पृ० ८६

२ छन्दोहृदय प्रकाश—सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, पृ० ९५

देवीसिंह ने इन्हें 'कविभूषण' किया। इन्होंने देवीसिंह अथवा देवीसाह के लिए 'अलंकार प्रकाश' की रचना सवत १७०५ वि० में की और गढ़ा के राजा हृदय-नारायण देव के लिए 'छन्दोहृदय प्रकाश' की रचना सवत १७२३ वि० में।

'शिवराज भूषण' में प्रसिद्ध कवि भूषण ने अपना परिचय देते हुए लिखा है—

वेसन-वेसन ते गुनी आवत जावन ताहि ।

तिनमे आये एक कवि भूषण कहियतु जाहि ॥

दुज बनौज कुल कस्यपि रतनाकर सुत धीर ।

बसत तिविक्रमपुर सदा तरनि तनूजा तीर ॥

धीर बिरबल से जहाँ उपजे कवि अह भूप ।

देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ॥^१

इन छंदों से स्पष्ट होता है कि 'शिवराज भूषण' के रचयिता कवि भूषण काश्यप गोत्रीय कायकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम रत्नाकर था और वे यमुनातीरस्थ त्रिविक्रमपुर के वासी थे जहाँ राजा बीरबल जैसे प्रसिद्ध कवि उत्पन्न हुए। यहाँ बिहारीश्वर का मंदिर विद्यमान था। इन्हीं चित्रकूटाधिपति हृदयराम-सुत रद्र ने 'कवि-भूषण' की पदवी दी थी। उन्होंने छत्रपति शिवाजी भासले के लिए 'शिवराज भूषण' की रचना सवत १७३० वि० में की थी।^२

दोना कवियों के परिचय में समानता केवल एक बात की है कि वे दोनों काश्यप गोत्रीय त्रिपाठी थे और दोनों को 'कवि भूषण' की उपाधि प्राप्त थी। शेष बातों में वही भी समानता प्राप्त नहीं होती। यद्यपि मुरलीधर कविभूषण और भूषण दोनों काश्यप गोत्रीय त्रिपाठी हैं फिर भी दोनों के पिता भिन्न हैं। मुरलीधर कवि के पिता का नाम रामेश्वर है तो प्रसिद्ध भूषण कवि के पिता का नाम रत्तिनाथ उपनाम रत्नाकर है। प्रसिद्ध भूषण कवि जाति से कायकुब्ज ब्राह्मण थे और यमुनातीरस्थ त्रिविक्रमपुर के वासी थे परंतु मुरलीधर कवि ने 'छन्दोहृदय प्रकाश' तथा 'अलंकार-प्रकाश' नामक ग्रंथों में अपनी जाति तथा निवासस्थान का उल्लेख नहीं किया है जिससे उनका जाति तथा निवासस्थान का संबंध में निश्चय-पूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। मुरलीधर कवि ने अपने पितामह का नाम रामकृष्ण दिया है परंतु प्रसिद्ध कवि भूषण ने इसका उल्लेख तक नहीं किया।

मुरलीधर कवि को कविभूषण की उपाधि देवीसिंह से प्राप्त हुई थी और प्रसिद्ध भूषण को कवि भूषण की पदवी हृदयराम सोलंका के पुत्र रद्र से प्राप्त हुई थी। देवीसिंह गहरवार बुंदेल वंशीय तथा चण्डी उरेश थे और हृदयराम के पुत्र रद्र

१ भूषण प्रभावती—स० मिश्रबन्धु, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स० २०१५), प० ८, छंद २५, २६, २७

२ संपूर्ण भूषण—भारत इतिहास संशोधन मण्डल, पूना (सन् १९३०), पृ० १३४, छंद ३८०

सोलकी वशीय तथा चित्रकूट नरेश थे। मुरलीधर को कवि भूषण यह उपाधि सवत् १७०५ वि० के आसपास या पूर्व दी थी^१ तो प्रसिद्ध भूषण कवि को 'कविभूषण' का उपाधि सवत् १७२३ वि० के लगभग प्राप्त हुई थी।^२ मुरलीधर कवि अपने पिता क पचम पुत्र थे तो भूषण अपने पिता के तृतीय पुत्र थे और य चिनामणि, मतिराम भूषण और नीलकंठ ऊफ जटाशंकर चार भाई होने की बात ही प्रसिद्ध है पाच नहा। मुरलीधर तो सुअन सुपचम देवीसिंह किअउ कवि भूषण^३ इस पक्ति के आधार पर कप्टन शूरवीरसिंह का कथन है कि यह 'सुपचम वास्तव म देवीसिंह का विशेषण है। बु देल वश के इतिहास स सिद्ध है कि उसका प्रवतक 'पचम' नाम से विख्यात था।^४ शूरवीरसिंह का कहना मान लेने पर भी अनुमान में कोई अंतर नहीं हा जाता। इस प्रकार दोनो कविया में समानता की अपेक्षा असमानता ही अधिक दिखायी देती है।

मुरलीधर कविकृत 'अलकार प्रकाश तथा छंदोहृदय प्रकाश के' प्रत्येक उल्लाम की समाप्ति पर एक ही सी परिचयात्मक पुष्पिका दी है परंतु 'शिवराज भूषण' म इस शली या पद्धति के दशन तक नहीं हाते। यदि 'शिवराज भूषण' के रचयिता मुरलीधर कवि भूषण होते तो उसम भी उमी प्रकार परिचयात्मक पुष्पिकाए होता जैसे अलकार प्रकाश और छंदोहृदय प्रकाश में पायी जाती हैं। यदि दोना कविया का रचनाओ का अन्तर्ग मूक्यता से देखा जाय तो जात होगा कि जहा मुरलीधर कवि भूषण की रचनाओ में सवत्र 'कविभूषण' की छाप मिलती है वहां प्रसिद्ध भूषण की लगभग समस्त रचनाओ म केवल भूषण अथवा भूषण भनत की ही छाप सामायत दिखायी देती है। छंदोहृदय प्रकाश तथा अलकार प्रकाश के रचयिता कवि भूषण को अपने मूल नाम मुरलीधर का बहुत ख्यात दिखायी देता है अत ग्रथ के प्रत्यक उल्लेख के अंत में व अपने वास्तविक नाम 'मुरलीधर वा उल्लेख किये बिना नहा रहते परंतु प्रसिद्ध भूषण कवि की समस्त रचनाओ म इसके विपरीत बात दिखायी देती है। उन्होंने केवल कवि वश परिचय के अंतगत ही 'कवि भूषण' उपाधि का उल्लेख किया है, अन्यत्र वे केवल 'भूषण' शब्द का ही प्रयोग करते हैं और कही भी अपने वास्तविक नाम—यदि मुरलीधर है तो—का उल्लेख नहीं करते हैं।

१ हरिऔध पत्रिका, अक्टूबर १९५९ (डा० किंगोरीलाल गुप्ता का लेख), पृ० २६

२ भूषण भारती—हरदयालुसिंह (सन १९५८) प० ६ तथा हिंदी नवरत्न—दिधिवधु (स० १९९८) पृ० ३९४

३ छंदोहृदय प्रकाश—स० डा० विचनाराय प्रसाद प० ९४

४ अलकार प्रकाश—मुरलीधर कवि भूषणकृत, स० कप्टन शूरवीरसिंह (सन १९६२), पृ० ११ १२

दोनों कवियों के काव्यादश म भी पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है । महा कवि भूषण ने 'शिवराज भूषण' में अलंकारा के उदाहरण के रूप में शायद ही ऐसा छंद प्रस्तुत किया हो जिसमें शिवाजी की प्रशस्ति न हो । उनका काव्यादश इस प्रकार है—

ब्रह्म के आनन तें निक्खें तें अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी ।

राम जुधिठिठर के बरने बलमीकिहू ब्यास के सग सुहानी ।

विक्रम भोजहू के गुन गाय के भूपन पावनता जग जानी ।

पुय पवित्र सिवा सरज बरम्हाय पवित्र भई घर बानी ॥ २५३ ॥^१

मुरलीधर कवि भूषण का काव्यादश दूसरा था । 'छंदोहृदय प्रकाश' के श्री मंगराज वशानुक्रम वनन नामक प्रथम प्रकरण में उन्होंने अपने आश्रयदाता हृदयसाहि की प्रशस्ति में कुछ छंद लिखे हैं और ग्रंथ के अंत में आशीर्वादात्मक एक छंद लिखा है । इनके अतिरिक्त समस्त ग्रंथ में आश्रयदाता की प्रशस्ति के छंद नाममात्र पाये जाते हैं । उदाहरणों में सवन्न कृष्ण काव्य ही की अधिकता परिलक्षित होती है । अलंकार प्रकाश में भी यादों भिन्नता के साथ इसी शैली का प्रयोग मिलता है । इसमें ग्रंथारंभ में राजवश वणन है और अंत में आश्रयदाता देवीसिंह के लिए आशीर्वादात्मक छंद है । शेष ग्रंथ में उदाहरण के रूप में देवीशाह तथा कृष्ण आदि का वणन मिलता है । उनकी यह शैली महाकवि भूषण की शैली से सबया भिन्न है । मुरलीधर कवि भूषण का काव्यादश इस प्रकार है—

हरि गुन गूथी कविता रुच है सवि को जऊ सीठी ।

ता दिन ही जो बानी जानत साधु जन सीठी ॥

कहिए वहे कविता सब गुन सून जऊ हे जू ।

जसुमति बालक सीला वरनित जिहि साधु सुचित सुनिकें जू ॥

धन सुधरी धनि बहु धिन धनि धनि दिन धय जनमु जिउ ताको ।

कविता सुधनि कहिए बरनत जह पूत महरि जसुदा को ॥^२

'छंदो हृदय प्रकाश' ग्रंथ के साथ-साथ कृष्ण बाललीला सबधी ग्रंथ भी हैं । इनकी प्रति डेरामाजीखाना में बल्लभाचार्य के शिष्य लालनाथ के मंदिर में सुरक्षित थी । पाकिस्तान हिन्दुस्तान का बंटवारा होने पर भगदड में यह हिन्दुस्तान पहुँचो है । डॉ० विशारीलाल गुप्तजी की धारणा है कि उक्त मुरलीधर कवि भूषण उस संप्रदाय के अनुयायी अवश्य थे ।^३ डॉ० विशारीलाल गुप्त जी की धारणा विचारणीय अवश्य है ।

१ भूषण—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (द्वितीयावृत्ति, स० २०१७), पृ० १७६, छंद २५३

२ छंदोहृदय प्रकाश—संपादक डा० विश्वनाथ प्रसाद (सन् १९५९), पृ० ६१, छंद २१, २३, २४

३ हरिऔध—पत्रिका, अक्टूबर, १९५९, पृ० ३०

‘अलंकार प्रकाश’ में छंद, अथदोष, रसरूपण, साहोक्ति आदि काव्यांगों के साथ ही अलंकारों का निरूपण भी किया गया है। ‘शिवराज भूषण’ में भी अलंकारों का निरूपण किया गया है और उदाहरण रूप में शिवाजी के वीर चरित्र के प्रसंगों का वर्णन किया है। यदि दोनों कवि अभिन्न होते तो जहाँ तक सद्धान्तिक लक्षणा की रचना है वहाँ सादावली एक-सी होनी चाहिये थी परंतु वैसी स्थिति दिखायी नहीं देती। एक ही अलंकार के लक्षण लिखते समय दोनों ग्रंथों में प्रयुक्त छंदों की तुलना करने से ज्ञात हो जाता है कि दोनों की रचना, भाषा, तथा रीति या पद्धति और शारणा में अन्तर है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छंद तुलनीय हैं—

श्लेष अलंकार लक्षण

एक भांति के पदों में उपजत अर्थ दुतीत ।
ताहि कहत श्लेष है कवि भूषण सुत धीनि ॥^१

—मुरलीधर कविभूषण

एक घचन में होत जहें बहु अर्थों को ज्ञान ।
श्लेष कहत ताहि को भूषण सुकवि सुजान ॥^२

—महाकवि भूषण

व्यतिरेक अलंकार लक्षण

अधिकाई उपमान ते उपमित में जो ठानि ।
कवि भूषण कह कवित तहें वितरेकहि मानि ॥^३

—मुरलीधर कविभूषण

सम अर्थों में दुहने में जहें अर्थों में बढ़ि एक ।
भूषण कवि कविद सब ताहि कहत व्यतिरेक ॥^४

—महाकवि भूषण

सहोक्ति अलंकार लक्षण

कारण कारण सहित जहें कहिए जुक्ति समेत ।
यह सहोक्ति है कही कविभूषण कर हेत ॥^५

—मुरलीधर कविभूषण

वस्तु को मासत जहाँ जन रजन सह भाव ।
ताहि सहोक्ति बखानहीं, जे भूषण कविराव ॥^६

—महाकवि भूषण

१ अलंकार प्रकाश—सं. शूरवीरसिंह, पृ० २२ छंद १३५

२ भूषण प्रयावली—मिश्रबधु नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं० २०१५), पृ० ४६, छंद १६५

३ अलंकार प्रकाश—सं. शूरवीरसिंह, पृ० २० छंद १२४

४ भूषण प्रयावली—मिश्रबधु नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पं० ४४, छंद १४६

५ अलंकार प्रकाश—सं. शूरवीरसिंह (सन १९६३) पृ० २१ छंद १२७

६ भूषण प्रयावली—मिश्रबधु नागरी प्रचारिणी सभा काशी (सं० २०१५) पृ० ४५, छंद १४९

उपयुक्त उदाहरणा से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कविषा की कथनपद्धति तथा भाषा शैली में पर्याप्त अंतर है। महाकवि भूषणकृत लक्षणो म जो स्पष्टता तथा विनम्रता का भाव है वह मुरलीधर कविभूषणकृत लक्षणो म नहीं है। यही स्थिति समस्त छंदों में देखी जा सकती है। 'छंदोहृदय प्रकाश' और अलंकार प्रकाश' के छंदों में जिस प्रकार समानता दृष्टिगोचर होती है उस प्रकार अलंकार प्रकाश' और 'गिराज भूषण' तथा भूषण की अन्य रचनाओं में दिखायी नहीं देती। कहा जाता है कि शैली लेखक से अभिन्न होती है। (Style is the Man) यदि दोनों कवि अभिन्न होते तो उनकी शैली में इतना अंतर न हो जाता। इसके अनिश्चित विषय एक होने पर भी अलंकार-प्रकाश' तथा 'शिवराज भूषण' के अलंकारों का क्रम, वर्गीकरण, विवेचन, नामकरण आदि में भी अंतर दिखायी देता है।

महाकवि भूषण की भाषा में व्रज भाषा के साथ-साथ जरबी-फारसी तथा तुर्की भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं तो मुरलीधर कविभूषण की भाषा में ऐसे विदेशी शब्दों की संख्या न्यूनतम है। महाकवि भूषण की कविता का उत्पन्न वीर रस में दिखायी देता है तो मुरलीधर कवि का शृंगार और शान रस में। भूषण की रचनाओं में ओज गुण की प्रधानता है तो मुरलीधर कवि की रचनाओं में माधुर्य गुण की। भूषण की रचनाओं में बालकृष्ण व्रणन तथा भक्तिव्रणन विषयक छंद न के बराबर हैं परंतु मुरलीधर कवि की रचनाओं में ऐसे छंद पाए जाते हैं। 'छंदोहृदय प्रकाश' के उल्लास ४ ५, ६, ७, ११, १२ में छंदों के लक्षण देने पर उदाहरण रूप में जो छंद पाए जाते हैं उनमें प्रायः बालकृष्ण का ही व्रणन मिलता है, शृंगारी वृष्ण का नहीं। इस ग्रंथ में अथर्व वही-वही भक्ति के भी छंद प्राप्त हो जाते हैं। अलंकार-प्रकाश' में देवभक्ति, गुरुभक्ति, मुनिभक्ति, राजभक्ति के सबंध में व्रणन मिलते हैं। मुरलीधर कविभूषण की रचनाओं में महाकवि भूषण का इतिहास प्रेम नहीं दिखायी देता। भूषण ने अपनी रचनाओं में गिराज की प्रशंसा में जो ऐतिहासिक उल्लेख तथा व्रणन किये हैं वैसे मुरलीधर कवि ने अपने आश्रमदाताओं—देवीसिंह और हृदय नारायण देव—के सबंध में नहीं किये हैं। मुरलीधर कवि की रचनाओं में जसा गद्य का प्रयोग हुआ है वसा भूषण की किसी रचना में नहीं मिलता।

इस प्रकार पिता का नाम, जाति, निवासस्थान, कविभूषण की उपाधि देनवाले राजा, रचना में प्राप्त कवि की छाप, भावव्यंजकता, निरूपणशैली, भाषा, कथन-पद्धति, रसिभेद आदि अनेक बातों में महाकवि भूषण और मुरलीधर कविभूषण में जो भिन्नता दिखायी देती है उससे यह निश्चित हो जाता है कि महाकवि भूषण और मुरलीधर कविभूषण दो भिन्न व्यक्ति हैं। अतः केवल दोनों के कथनपद्धति तथा श्रियायी होने मात्र से उन्हें अभिन्न मानना युक्तिसंगत न होगा।

१ अलंकार प्रकाश—मुरलीधर कविभूषणकृत, सम्पादक गुरदीरसिंह पेंथार (सन १९६२), पृ० ५४, ५५ ५६

४ | महाकवि भूपण के वास्तविक नाम की खोज

हिंदी साहित्य की बीर-काय धारा के प्रमुख एवम लोकप्रिय कवि के रूप में महाकवि भूपण का नाम सर्वविदित है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि व्यक्तित्व तथा कृतित्व का प्रभाव कभी कभी इतना प्रबल हो जाता है कि उसके सम्मुख सबधित व्यक्ति के मूल नाम, वंश अथवा जीवन वृत्त के अर्थ आवश्यक जग भी आवृत्त ही रह जाते हैं। रसिक पाठक अथवा सामान्य समीक्षक इन बातों का महत्व कदाचित ही स्वीकार करेंगे परन्तु अनुसंधानकर्ता की ऐसी दृष्टि व्यक्तित्व तथा कृतित्व के अनिरिक्त उसके निजी जीवन के वे जावत्त अंग खोजने से नहीं चूकती।

महाकवि भूपण का अनुशीलन करते समय अनेक विद्वान समीक्षक तथा अनुसंधान कर्ताओं ने भूपण के काव्य के अनिरिक्त उनके जीवन वृत्त पर भी पर्याप्त विचार व्यक्त किये हैं जिनमें भूपण का वंश, नाम जाति, पिता, जन्म-मृत्यु आदि अनेक बातों का समावेश हो जाता है। इस निबंध में भूपण के वास्तविक नाम के संबंध में विचार किया जायेगा। उपलब्ध सामग्री एवम अनुमानों का आश्रय लेकर अनेक विद्वानों ने इस विषय के संबंध में मतप्रदान किया है जिनमें प्रमुख मता की चर्चा यहाँ की जाएगी।

सबसे प्रथम श्री कुमारपालसिंह जी ने तिकवारपुर के एक भाट के कथन के आधार पर भूपण का वास्तविक नाम 'पतिराम' मान लिया^१। अपने मत का समर्थन करते हुए वे कहते हैं कि 'पतिराम यह नाम मतिराम के वंश पर होने से ठीक हो सकता है। भाट का मौखिक कथन प्रमाण के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं प्रतीत होता। हो सकता है कि उसने सुनी सुनाई किसी निराधार बात को कह दिया हो अथवा 'मतिराम' के म को ध्रम के कारण उसने प समझ लिया हो। पतिराम नाम की पुष्टि न तो समकालीन प्रमाणा से होती है न भूपण के काव्य में ही कहीं इस नाम का उल्लेख आया है। अतः यह मत अविश्वसनीय सामग्री पर समाश्रित हान से ग्रह्य नहीं हो सकता।

दूसरा मत श्री नारायण प्रसाद 'बेताव' जी का है, उनके मतानुसार भूपण का जन्म नाम 'कनौज था'। अपने मत को पुष्ट करने के लिए उन्होंने किसी प्रमाण का उपस्थित नहीं किया। मत प्रदर्शित करते समय प्रयुक्त 'शायद' शब्द इस बात का स्रोतक है कि वे स्वयं भी इसके सबंध में दृढ़ नहीं थे। दूसरी बात यह भी है कि 'कनौज' का प्रयोग ज्ञातिविशेषण के रूप में पाया जाता है, न कि व्यक्तिनाम के रूप में। अतः श्री बेताव जी का यह मत केवल अनुमानाश्रित ही होने से उसका भी प्रमाण करना समीचीन नहीं प्रतीत होता।

पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने प्रथमतः भूपण का मूल नाम जटाशंकर मान लिया था^१, जो केवल कल्पनाश्रित ही था। परन्तु भूपण विमर्श के द्वितीय संस्करण में उन्होंने स्वयं ही भूपण का वास्तविक नाम 'मनिराम' मान लिया है^२। जिससे उनके पूर्व मत का अपने आप खंडन हो गया है। इसलिये उस पर चर्चा का प्रश्न ही नहीं उठता। उनके कथन का आधार पं० बन्नीदत्त पांडेयकृत कुमाऊँ के इतिहास का एक अध्याय तथा उद्धरण है। कुमाऊँ के इतिहास में उदोतचंद्र के बचन में लिखा है— 'कहते हैं सितारागढ़ नरेश साहू महाराज के राजकवि 'मनिराम' राजा के पास अलमोडा आये थे। उन्होंने उनकी प्रशंसा में एक कवित्त सुनाया था। राजा ने दस हजार रुपये और एक हाथी इनाम में दे दिया।' वह कवित्त इस प्रकार है—

पुराण पुरुष के परम दम दोउ अहैं,

कहत वेद बानी या पढ गई ॥

ये दिवस पति व निसापति जोतकर है

पाहू धी बढाई बढाये ते नचढ गई ॥

सूरज के घर में वरण महादानी भयो,

यहै सोच समुक्ति चित चिंता मडि गई ॥

जब तोहि राजबंठत उदोतचंद्र चंद्र के,

कण की किरण करे जे सो कडि गई ॥^३

इस कवित्त की द्वितीय पंक्ति में मीन अपरा की कथी है। पं० दीक्षित जी का कहना है कि रिक्त स्थान में भूपण ही नाम था जो लिपिकार की असावधानी से छूट गया है। चूंकि साहू महाराज के दरबारी कवि भूपण ही थे, अन्य कोई नहीं, अतः मनिराम ही भूपण का वास्तविक नाम था^४। वस्तुतः यह छंद भूपण का नहीं है,

१ निश्चयधु प्रलाप, पं० १८

२ भूपणविमर्श (द्वितीय संस्करण) पृ० ५

३ महाकवि भूपण (सन १९५३) पं० १५

४ कुमायूँ का इतिहास—दशरदत्त पांडेय पं० ३०३

५ वही पं० ३०३

६ महाकवि भूपण, पं० १५

बल्कि मतिराम का है। शिवसिंह सरोज मयही छंद^१ अधिक शुद्ध रूप में प्राप्त हुआ है, जिसमें 'मतिराम' की छाप मिलती है। अब रही बात कुमाऊँ के इतिहास के यत्न्य की। प० बद्रीनाथ पांडेय ने अपने कथन का प्रारंभ ही 'बहुते हैं' से किया है, जो हम बात का ध्यान है कि उन्होंने कथन को किसी प्रमाण पर नहीं कहा बल्कि मुनी-मुनाई बात के आधार पर ही कहा है।

इसके अतिरिक्त उनके कथन से यह भी अभिप्राय नहीं निकलता कि शाहू महाराज के उक्त राजकवि 'मनिराम' भूपण ही थे। अब रही बात केवल भूपण ही के शाहू महाराज के दरबारी कवि होने की जिसकी पुष्टि किसी भी प्रमाण से नहीं हो पाती है। अनुसंधान में उपलब्ध सामग्री से यह सिद्ध होना है कि सितारा नरेश शाहू महाराज के दरबार में अनेक पंडितों तथा कवियों को उदार आश्रय प्राप्त हुआ था^२। अतः केवल भूपण ही को उनका दरबारी कवि मानना उचित नहीं है। 'भूपण शिवाजी महाराज के दरबार में जिग प्रकार स्थायी रूप में रहे थे उस प्रकार शाहू महाराज के दरबार में कभी नहीं रहे। वे तो बाधकभावस्था में प्रसंगवश कुछ समय के लिए शाहू के दरबार में पहुँचे थे^३। अतः भूपण का वास्तविक नाम 'मनिराम मानना तत्संगत प्रतीत नहीं होता।

रीनिकानोन साहित्य के समस्त एक महाकवि भूपण के विषय अध्ययन आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भूपण का वास्तविक नाम धनश्याम माना है^४। उनके अनुमान का आधार जयराम का 'राधामाधव विलास चपू है। जयराम ने अपने आश्रयदाता शाहूजी महाराज (छत्रपति शिवाजी के पिता) के दरबार में आने वाले कवियों का जो विवरण प्रस्तुत किया है, उसमें निम्नलिखित छंद विचारणीय हैं—

(१) गायो उत्तर देस के द्व पुनि अति अनिराम,
नाम एक को लालमनि दुसरो है धनश्याम' ॥

× × ×

(२) धयाप्रिदि धनश्याम बबाप्रिदि बात कही छछप्रिदि छंद पुनिए एक भायो ।
ममाप्रिदि मत्तगब हहाप्रिदि हेमहय तताप्रिदि ताहि धीर दान पायो ॥
जजाप्रिदि जत्र अह चिचिप्रिदि चित्र पुनि ननाप्रिदि तप साहे करि सिद्धायो ।
ककाप्रिदि कवि माहें जजप्रिदि जयराम मयप्रिदि यह मात पठि दिखाये ॥^५

१ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण) पृ० २५३

२ ३ विनोद जानकारी के लिए देखिए—डा० कृष्ण विद्याकर द्वारा लिखित 'मोंसला राजाओं तथा उनके आश्रित कवियों का हिन्दी काव्य शोधक गोप प्रबंध।

४ भूपण—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (द्वि० सं०) पृ० ८८

५ जयराम कृत राधामाधव विलास चपू—सम्पादक राजवाडे पृ० २७५ ७६

प्रथम छंद से नात होता है कि उत्तर देश से लालमणि और घनश्याम नामक दो गुणीजन गहाजी महाराज के दरबार में आये और उन्होंने कविता को गाकर सुनाया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इही शब्दों के आधार पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—हिन्दी में चिन्तामणि त्रिपाठी दो नामों (भणित्ता, छाप) से रचना करते थे—मनिलाल और लालमणि से। इसलिये लालमणि अत्यन्त परिचित नाम है। उनके साथ जाने वाले, रहने वाले वे उत्तर देश के गुणी 'घनश्याम' कौन हैं? घनश्याम का स्मरण जयराम ने घघाग्रिदि घनश्याम में पुन किया है। उनके एव छंद गाने पढ़ने का भी उल्लेख है। यही नहीं आगे तुरंत ही अमृतध्वनि छंद में जयराम की रचना भी मिलती है जैसी भूपण ने शिवभूषण में अनुप्रास के उदाहरणों में रखी है।^१ उसने पश्चात् जयराम कवि द्वारा रचित अमृतध्वनि छंद के साथ भूपण कृत अमृतध्वनि छंद की तुलना कर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने यह अनुमान किया है कि ये 'घनश्याम' कवि भूपण की मदवी पाने वाले सज्जन होंगे। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने भूपण का निम्नलिखित छंद दिया है—

देखत ही जीवन बिडारी तो तिहारी जायों जीवन द-नाम कहिये ही को कहानी में ॥
क्यों 'घनश्याम' जो कहाव सो सताव मोहि निहच के आजु यह बात उर आनी में ॥
भूपण सुकवि कीज कौनपर रोसु निज भागु ही को बोपु भागि उठति ज्यों पानी में ॥
रावरैहू आए हाय हाय मेघराय सब धरनी जुडानी पै न बरती जुडानी में ॥^२

उक्त छंद में प्रयुक्त 'घनश्याम' शब्द भूपण के मूल नाम का ही सूचक है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसी छंद में अथ अनेक छंदा की भांति भूपण की भणित्ता का भी प्रयोग हुआ है। अत एक ही छंद में विभिन्न स्थानों पर एक कवि अपने दो नामों का प्रयोग क्या कर करेगा? इसके अतिरिक्त यह छंद शृंगार के अतगत होने से सद्भ की दृष्टि से घनश्याम का अथ श्रीकृष्ण अथवा कृष्ण मेघ लेना ही समीचीन प्रतीत होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने पाद टिप्पणी में ये दोनों अर्थ दिये भी हैं।

चिन्तामणि के साथ गहाजी के दरबार में आने वाले घनश्याम चिन्तामणि के कोई समकालीन सुहृद मित्र कवि भी हो सकते हैं जिनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं है। भूपण की उपलक्ष्य रचनाओं में कही गहाजी के दरबार में जाने का उल्लेख भी नहीं मिलता। अत प्रबल प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से यह सिद्ध नहीं होता कि भूपण का वास्तविक नाम 'घनश्याम' ही था। यह केवल अनुमान मात्र रह जाता है।

कण्ठन दूरवीरसिंह ने भूपण का वास्तविक नाम 'मुरलीधर' माना है।^३ उनके कथन का मूलाधार मुरलीधर कविभूपण द्वारा रचित 'छंदा हृदय प्रकाश तथा 'अलंकार-

१ भूपण—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ८८

२ वही पृ० ८९

३ मुरलीधर कविभूपण कृत—अलंकार प्रकाश, स० कण्ठन दूरवीरसिंह (सूत्रिणा)

बल्कि मतिराम का है। शिवासिंह सरोज भयही छ^१ अथिक् सुढ रूप म प्राप्न होना है, जिसम 'मतिराम' की छाप मिलती है। अब रही बात मुमाऊँ क इतिहाम के वक्तय की। प० बद्रोनाथ पांडेय ने अपने कथन का प्रारम ही 'बहते है से किया है, जो इम बात का धोतक है कि उहोंने कथन को किसी प्रमाण पर नहीं कहा बल्कि सुनी-सुनाई बात के आधार पर ही कहा है।

इसके अतिरिक्त उनके कथन से यह भी अभिप्राय नहीं निकलता कि गार्ह महाराज के उक्त राजकवि 'मतिराम' भूषण ही थे। अब रही बात बेवल भूषण ही के गार्ह महाराज के दरबारी कवि होने की जिमकी पुष्टि किसी भी प्रमाण से नहीं हा पाती है। अनुसधान म उपलब्ध सामग्री से यह सिद्ध होना ह कि सितारा नरेण गार्ह महाराज के दरबार मे अके पडितो तथा कवियो को उदार आश्रय प्राप्त हुआ पा^२। अत बेवल भूषण ही की उनका दरबारी कवि मानना उचित नहीं ह। 'भूषण शिवाजी महाराज के दरबार म जिस प्रकार स्थायी रूप म रह थे उम प्रकार गार्ह महाराज के दरबार मे कभी नहीं रहे। वे तो वाधन्यावस्था म प्रसंगवण कुछ समय क लिए गार्ह के दरबार म पहुँचे थे^३। अत भूषण का वास्तविक नाम 'मतिराम' मानना त्कसगत प्रतीत नहीं होता।

रीतिकालीन साहित्य के ममज्ञ एमम महाकवि भूषण के विशेष अध्याय आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भूषण का वास्तविक नाम घनश्याम माना है^४। उनके अनुमान का आधार जयराम का राधामाधव विलास चपू है। जयराम ने अपने आश्रयदाता शाहजी महाराज (छत्रति शिवाजी के पिता) के दरबार म आने जाने वाले कवियो का जो विवरण प्रस्तुत किया है उसम निम्नलिखित छद विचारणीय है—

(१) गायो उत्तर देस के हूँ गुनि अति अमिराम,
नाम एक को लालमनि दुसरो है घनश्याम' ॥

× × ×

(२) यथाप्रिदि घनश्याम बबाप्रिदि बात बही छदप्रिदि छद पुनिए एक भायो ।
ममाप्रिदि मत्तगळ हहाप्रिदि हेमहृय तताप्रिदि ताहि धीर दान पायो ॥
जजाप्रिदि जत्र अरु विचिप्रिदि चित्र पुनि ननाप्रिदि नय साहे करि सिधायो ।
ककाप्रिदि कवि माहें जत्रप्रिदि जयराम ययप्रिदि यह नात पठि दिखाये ॥^५

१ शिवासिंह सरोज (सप्तम संस्करण) प० २५३

२ ३ विवेक जानकारो क लिए देखिए—डॉ० कृष्ण दिवाकर द्वारा लिखित 'मोसला राजाओं तथा उनके आश्रित कवियों का हिन्दी काव्य शीघ्र गोथ प्रबंध।

४ भूषण—आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (द्वि० सं०) पृ० ८८

५ जयराम कृत राधामाधव विलास चपू—सम्पादक राजवाडे पृ० २७५ ७६

प्रथम छंद से पाठ होता है कि उत्तर देश से लालमणि और घनश्याम नामक दो गुणीजन गहाजी महाराज के दरबार में आये और उन्होंने कविता को गाकर सुनाया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इही शब्दों के आधार पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—हिन्दी में चिन्तामणि त्रिपाठी दो नामों (भणिता, छाप) से रचना करते थे—मनिलाल और लालमणि से। इनलिये लालमणि अत्यन्त परिचित नाम है। उनके साथ जाने वाले, रहने वाले ये उत्तर देश के गुणी 'घनश्याम' कौन हैं? घनश्याम का स्मरण जयराम ने घघाग्रिदि घनश्याम में पुन किया है। उनके एक छंद गाने पढ़ने का भी उल्लेख है। यही नहीं आगे तुरंत ही अमृतध्वनि छंद में जयराम की रचना भी मिलती है जसी भूपण ने शिवभूषण में अनुप्रास के उदाहरणों में रखी है।^१ इसके पदचातु जयराम कवि द्वारा रचित अमृतध्वनि छंद के साथ भूपण कृत अमृतध्वनि छंद की तुलना कर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने यह अनुमान किया है कि ये 'घनश्याम' कवि भूपण की पदवी पाने वाले सज्जन होंगे। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने भूपण का निम्नलिखित छंद दिया है—

देखत ही जीवन बिडारी ती तिहारी जायों जीवन द-नाम कहिये ही को कहानी में ॥
 बंधों 'घनश्याम' जो कहाव सो सताव मोहि निहच के आजु यहै बात उर आनी में ॥
 भूपन सुकवि कीज कौनपर रोसु निज मागु ही को दोषु आगि उठति ज्यों पानी में ।
 राबरेहू आए हाय हाय मेघराय सब घरनी जुडानी पै न बरती जुडानी में ॥^२

उक्त छंद में प्रयुक्त 'घनश्याम' शब्द भूपण के मूल नाम का ही सूचक है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसी छंद में अथ अनेक छंदों की भांति भूपण की भणिता का भी प्रयोग हुआ है। अतः एक ही छंद में विभिन्न स्थानों पर एक कवि अपने दो नामों का प्रयोग क्यों कर करेगा? इसके अतिरिक्त यह छंद शृंगार के अंतगत होने से सदम की दृष्टि में घनश्याम का अथ श्रीकृष्ण अथवा कृष्ण मेघ तेजा ही समीचीन प्रतीत होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने पाद टिप्पणी में ये दोनों अर्थ दिये भी हैं।

चिन्तामणि के साथ गहाजी के दरबार में आने वाले घनश्याम चिन्तामणि के कोई समकालीन सुदृढ़ मित्र कवि भी हो सकते हैं जिनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं है। भूपण की उपलब्ध रचनाओं में कहीं गहाजी के दरबार में जान का उल्लेख भी नहीं मिलता। अतः प्रबल प्रमाणों के अभाव से निश्चित रूप से यह सिद्ध नहीं होता कि भूपण का वास्तविक नाम 'घनश्याम' ही था। यह केवल अनुमान मात्र रह जाता है।

कैप्टन सूरवीरसिंह ने भूपण का वास्तविक नाम 'मुरलीधर' माना है।^३ उनके कथन का मूलाधार मुरलीधर कविभूपण द्वारा रचित 'छंदो हृदय प्रकाश' तथा 'अनकार-

१ भूपण—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ८८

२ वही, पृ० ८९

३ मुरलीधर कविभूपण कृत—अनकार प्रकाश, स० कैप्टन सूरवीरसिंह (सूचिका)

प्रकाश' नामक दो ग्रन्थ हैं। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मुरलीधर कवि भूषण और प्रसिद्ध महाकवि भूषण एक ही व्यक्ति थे। परन्तु दोनों का गंभीर अनुशीलन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि दोनों कवि सखया भिन्न व्यक्ति थे, अतः कवि का मूनायार हो बह जाने से उनका मत भी अपने आप अगमनीय सिद्ध हुआ है।

महाकवि भूषण के वास्तविक नाम की खोज में विद्वानों ने जो मत प्रस्तुत किए हैं वे अधिकतर अनुमान अथवा अविश्वसनीय सामग्री पर समाश्रित होने से निष्पन्न रूप में स्वीकार नहीं किये जा सकते। भूषण के मूल नाम की खोज उस बस्तुरी के समान ही प्रतीत होती है जिसे खोजने के लिए मृग बन-बन घूमता रहता है। भूषण की समस्त रचनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त यही प्रश्न उठता है कि आखिर यह खोज क्या हा रही है? इसका मूल कारण संभवतः गिबराज भूषण का यही छन्द है—

कुछ सुलक चितकूट पति साहस शील समुद्र ।

'कवि भूषण' पदवी बई हृदयरामसुत रद ॥^१

इस छन्द से स्पष्ट होता है कि चित्रकूटाधिपति हृदयराम सुत रद ने भूषण की पदवी प्रदान की वह 'कविभूषण' है न कि भूषण। इस छन्द के पूर्ववर्ती छन्द में निम्नलिखित छन्द विशेष विचारणीय हैं—

देसनि देसनि तैं गुनी आवत जावन ताहि ।^२

तिन मे आयो एक कवि भूषण कहियतु जाहि ।

इस छन्द में प्रयुक्त अर्थात् 'भूषण कहियतु जाहि'—से स्पष्ट होता है कि कवि का वास्तविक नाम भूषण ही था। भूषण की समस्त रचनाओं में भूखन भूषण भूषण, भूषण सुकवि भूषण भनत आदि की ही छाप विद्यमान है। यदि उनकी अपनी पदवी या उपाधि में ही प्रसिद्ध होना था तो मुरलीधर कवि ने जिस प्रकार प्रत्येक छन्द में कवि भूषण का प्रयोग किया है उसी प्रकार भूषण के द्वारा भी किया जाता। पदवी को राहित रूप में प्रयोग करना सखया अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। यदि उनका मूल नाम दमरु होता तो वे कहियतु भूषण जाहि के समय ही लिंग देते। गिबराज भूषण की समाप्ति दशक पुष्पिका में भी इस प्रकार का कोई सङ्कलन तक प्राप्त नहीं होता। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि भूषण का वास्तविक नाम भूषण ही था। उनके इस नाम की सुनकर तथा उनके कवित्व से प्रसन्न होकर संभवतः चित्रकूटाधिपति ने स्वाभाविक रूप से कहा था कि आप तो भूषण ही हैं परन्तु कविया में भूषण हैं, और हमारे फलस्वरूप नाम सादृश्य कविभूषण की पदवी उद्दान की होगी। निष्पन्न रूप में यही कहा जा सकता है कि महाकवि भूषण का वास्तविक नाम 'भूषण ही था अतः उनके मूल नाम की खोज करना व्यर्थ है।

१ विस्तृत विवेचन के लिये देखिये—इसी ग्रन्थ का 'महाकवि भूषण और मुरलीधर कविभूषण—मिन्न व्यक्ति' शीर्षक निबंध।

२ भूषण प्रयावली—सम्पादक मिश्रवधु (संवत् २०१५), पृ० ८, छंद २५

३ यही—भूषण प्रयावली पृ० ८, छंद २८

५ | नीलकंठ उपनाम जटाशंकर त्रिपाठी के सम्बन्ध में

हिंदी साहित्य के इतिहास में चिन्तामणि, भूषण तथा मतिराम के प्रसंग में नीलकंठ उपनाम जटाशंकर का भी नाम आ जाता है। परंपरा विरुद्ध कयनों के अनुसार इन चारों को भाई माना गया है। कहते हैं कि इनके पिता रत्नाकर त्रिपाठी टिकमापुर में रहते थे। वे देवी का परम भक्त थे। वे प्रतिदिन अपने दनदिन काय से मुक्त होने पर नियमित रूप से टिकमापुर में स्थित सवन की देवी की पूजा करने जाते थे। उसी की अपार कृपा से रत्नाकरजी को चार प्रतिभासपन पुत्र प्राप्त हुए जिनके नाम हैं— चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ उपनाम जटाशंकर।

चिन्तामणि भूषण तथा मतिराम की भांति नीलकंठ की हिंदी काव्य रचनाएँ उपलब्ध हो जाती तो संभवतः रीतिकाल के कवियों में इनकी चर्चा विस्तार से हो जाती। शिवसिंह-सरोज^१ में नीलकंठ को मतिराम के भाई के रूप में स्वीकार कर उनका उपस्थितिकाल सवत १७३० वि० दिया है।^१ डॉ० प्रियसन ने नीलकंठ का चिन्तामणि त्रिपाठी के भाई कहकर जिला बानपुर के निवासी कहा है। उन्होंने नीलकंठ द्वारा लिखित काव्य निणय तथा सरस्वतीरविलास नामक दो ग्रंथों का भी उल्लेख किया है^२ जो दुर्भाग्य से अप्राप्य हैं। मिश्रबंधु विनोद में नीलकंठ द्वारा रचित अमरेशविलास का उल्लेख किया गया है जिसका रचनाकाल सवत १६६८ वि० दिया गया है। सौभाग्य से इस ग्रंथ की एक खंडित प्रति खोज में मिली है।^३ यह ग्रंथ संस्कृत के प्रसिद्ध अमरकण्ठक का पद्यबद्ध अनुवाद है जो रीवाँ नरेश अमरसिंह के लिए सवत १६६८ वि० में रचा गया था। अमरेशविलास में रचनाकाल सम्बंधी छंद इस प्रकार दिया गया है—
वरप से सोरह डानवे साते साधन मास।

नीलकंठ कवि उच्चरित श्री अमरेश विलास ॥

१ सरोज-सर्वभूषण—डॉ० किशोरीलाल गुप्त (प्रथम संस्करण) पृ० ४००

२ डॉ० प्रियसनकृत हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास—डॉ० किशोरीलाल गुप्त (प्रथम संस्करण) पृ० ११८

३ नागरी प्रचारिणी सभा की शोध रिपोर्ट, १९०३।१

इही ने द्वारा लिखित नायिका विषयक एक और ग्रंथ खोज में उपलब्ध हुआ है जो दुर्भाग्य से खंडित रूप में ही है।^१ इस प्रकार अब तक उपलब्ध विवरणों में नीलकंठ द्वारा लिखित कायनिर्णय, सत्कविगिरिविलास, अमरेशविलास, नायिका भेद, इन चार ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें से दो ग्रंथ, खंडितावस्था में भी क्यों नहीं, उपलब्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त नीलकंठ द्वारा रचित कुछ स्फुट छंद भी उपलब्ध होते हैं जिससे अनुमान होता है कि उनकी और भी रचनाएँ होगी जो आज अनुपलब्ध सी हो गई हैं। श्री अरुणोदयराय ने 'भूषण ग्रंथावली' की भूमिका में नीलकंठ के संबंध में सवथा नवीन सूचना दी है कि नीलकंठ महाराज शिवाजी के सुपुत्र रामुराज के दरबार में रहे थे। साथ ही साथ उन्होंने नीलकंठ की स्फुट रचनाओं के देवने का भी उल्लेख किया है। नीलकंठ के निम्नलिखित छंद से श्री अरुणोदयराय के कथन की पुष्टि कुछ सीमा तक हो जाती है—

तन पर भार तीन तनपर भार तीन
 तनपर भार तीन तनपर भार है ॥
 पूजें देवदार तीन पूजें देवदार तीन है,
 पूजें देवदार तीन पूजें देवदार है ॥
 'नीलकंठ' दारुण दिलेलखां तिहारी धाक,
 नाघतो न द्वार तें व नाघतो पहार है ॥
 अघे रन कर गहे वहिरे न सग रहे,
 वार छूटे वार छूटे वार छूटे वार है ॥^२

इस छंद में दिलेरखा की धाक से जनता की जो दयनीय एवं दारुण स्थिति हुई है, उसका वर्णन है। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र युवराज सभाजी (शंभुराज) तथा मुगला का प्रथम सरदार दिलेरखां १३ दिसंबर १६७८ बीस नवंबर १६७९ तक एक साथ रहे थे। तत्कालीन पारिवारिक या अन्य किसी कारण से उद्विग्न होकर शत्रुपक्ष से मित्रता का अविचार शंभुराज द्वारा हुआ था। परंतु बीजापुर की लड़ाई में शिवाजी द्वारा पराजित होकर पहाला की ओर जाते समय रास्ते में दिलेरखां ने हिंदू जनता पर जो अमानुषिक अत्याचार किये उन्हें शंभुराज का भावुक हृदय देख न सका और फलस्वरूप पराजितापदग्रथ स्थिति में वे अपने मित्र के पास लौट आये। दिलेरखां के इस अत्याचार का वर्णन करते हुए इतिहासकारों ने लिखा है कि हमारा महिलाओं ने गीत की रक्षा के हेतु छाट छाट बालक सहित कुंआ तथा बाबडिया में बूढ़कर आत्म हत्याएँ कीं। हिंदुओं को पकड़कर उनकी बिक्री करना, नूतमार से घन प्राप्त करना आदि नराम दुष्टतय दिलेरखां ने किये।^३

- १ हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का समिप्त विवरण (प्रथम खंड) पृ० ५१५
- २ शिवाजी गतक—सम्पादक श्री गोविंद गिल्ला भाई (सन १९१६ ई०), पृ० ६
- ३ गङ्गावती शिवाजी—गो० सं० सरदेसाई (सन १९३५ ई०), पृ० २०४ २०५

छंद में प्रयुक्त वर्तमानवासीन त्रियाओ तथा ऐतिहासिक घटना को देखकर स्पष्ट होता है कि कवि ने आँसो देवी घटना का वर्णन किया है। दिलेरखाँ विषयक यह छंद देखकर अनुमान होता है कि नीलकण्ठ शमुराज तथा दिलेरखाँ के आश्रय में उसी विशेष कालखण्ड में (तेरह सितम्बर, १६७८ से बीस नवंबर, १६७९) रह हा, जिस समय इन दोनों का संबंध अच्छे रहे था। केवल एक छंद मात्र से इसके संबंध में अधिक कुछ कहना समीचीन भी नहीं है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर नीलकण्ठ का उपस्थितिकाल सन १६४१ ई० से सन १६७९ ई० तक माना जा सकता है। नीलकण्ठ के उपरिनिर्दिष्ट छंद में प्रयुक्त वर्णयोजना तथा यमक अलंकार की आसक्ति को देखकर महाकवि भूपण के निम्नलिखित प्रसिद्ध छंद का स्मरण हो जाता है—

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ॥
 बंद मूल भोग करूँ कद मूल भोग कर,
 तीन बेर खाती व ते तीन बेर खाती हैं ॥
 भूपन सिधिल अग भूपन सिधिल अग,
 बिजन डुलाती व बिजन डुलाती हैं ।
 भूपन भनत सियराज तेरे प्राप्त,
 नगन जडाती ते व नगन जडाती हैं ॥^१

चिंतामणि, भूपण तथा मतिराम के उपेक्षित भाई नीलकण्ठ के अप्राप्य एवं अज्ञान प्रथा की खोजकर उन्हें प्रकाश में लाना अत्यावश्यक है। उनके जीवन वृत्त तथा कवित्व का संबंध में अधिक विस्तार से एक प्रामाणिक रूप में लिखना उनके समस्त ग्रंथों का अनुशीलन का उपरांत ही संभव है। आशा है कि खोज में उपलब्ध प्रथा का विस्तृत विवरण में विद्वानों के सम्मुख गीत ही प्रस्तुत कर सकूंगा। हम लेख का उद्देश्य नीलकण्ठ की अद्यावधि उपलब्ध सामग्री का परिचय देना मात्र है अतः इनमें अधिक विवरण नहीं दिया गया।

हिंदी साहित्य के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथ विभिन्न सप्रहालया में अज्ञात रूप में बिलखे पड़े हैं। इस अज्ञात ग्रंथ रत्नाकर का भयन कर मूल्यवान् एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ को सुधी पाठकों के समक्ष लाना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है और हिन्दी साहित्य व इतिहासकारों को भी चाहिए कि खोज में उपलब्ध अज्ञात ग्रंथों तथा ग्रंथकारों का समावेश वे अपने नए-नए संस्करण में करत रहें। हिन्दी साहित्य में रीतिवादीन ग्रंथों का अपना विशिष्ट स्थान है। इस काल में यद्यपि शृंगार रस की प्रधानता रही फिर भी भक्ति नीति तथा बीररस से पूर्ण रचनाओं का भी संपूर्ण अभाव न था। 'यूनाधिक माया में आदिवालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास इस युग में दृष्टिगोचर होता है। रीतिकाल के अन्तिम चरण में सोताराम महापात्र द्वारा रचित उक्ति विलास नामक ग्रंथ की एकमात्र हस्तलिखित प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में सुरक्षित है। यह प्रति अत्यन्त जीर्ण एवम् गन्धित रूप में है। उसका आकार ११½" × ७" है। इस लघु में सोताराम महापात्र तथा उनकी उपलब्ध रचना 'उक्तिविलास का संक्षिप्त परिचय दे रहा है।

सोताराम का जीवन-वृत्त

सोताराम का जीवन वृत्त हिन्दी साहित्य के इतिहासा सोत्रविवरणों प्राप्ति में अथवा अग्रत्र कही भी प्राप्त नहीं होता। अतः 'उक्तिविलास के अन्तर्गत प्राप्त छन्दों व आधार पर ही इनका जीवन परिचय दिया जा सकता है। इस ग्रंथ में कवि परिचय विषयक निम्नलिखित छन्द प्राप्त होते हैं—

नगर नागपुर में बसै कवि-सत सोताराम ।
प्रम नेम प्रभु चरणों सायु दिग विभ्राम ॥
मुद्द सग निरतिदिन रहै की-हयो धवन विनोद ।
'उक्तिविलास' बनाइय जासों उपज मोव ॥
बसो सोच विचार क की-टपो बुधि जनमान ।
सपुमति गुण अगणित प्रभु जया गवित बिल्यान ।

उक्ति पूव सव बंधि रही जूठन लई सुवीन ।
गरजन लीजें शोधिक कवि जन सुधर प्रवीन ॥^१

इन छदा के अनिरिक्त ग्रंथ म दी हुई पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री मोतीरामात्मज सीताराम महापात्रे विरचिते
उक्तिविलासे स गार प्रसंगे तृतीयो प्रकाश सम्पूर्ण ॥

इन छदो एकम् पुष्पिका से जात होता है कि सीताराम नागपुर के निवासी थे । पिता का नाम मोतीराम और उपनाम महापात्र था । छद में प्रयुक्त 'कवि-सुत' शब्द से प्रतीत होता है कि इनके पिता मोतीराम भी कवि थे परन्तु दुर्भाग्य से उनका कोई परिचय प्राप्त नहीं होता । छदा से ज्ञात होता है कि वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और साधु-सत्ता के सहवास में रहते थे । चौथे छद में प्रयुक्त 'जूठन लई सुवीन' स कवि की विनयशील वृत्ति का परिचय हाता है । काव्य में ये सीताराम के अनिरिक्त 'मोतलदास' तथा 'सीतल' की छाप भी लगाने थे । इस दृष्टि से इनके निम्नलिखित छद द्रष्टव्य हैं—

राम सनेही जगत में प्राण सनेही देहि ।
पचतत्व की खोज में 'सीतल' हरि मजि सेहि ॥
उक्ति मुक्ति को मूल है वरण्यो 'मोतलदास' ।
ज्ञानी रसिक विनोदहित की-ह्यो उक्तिविलास ॥^२

सीताराम के जन्मकाल के संबंध में भी कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता । नागपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार तथा साहित्यिक पंडित प्रयागदत्त शुक्ल जी ने लिखा है कि सीताराम का मकान नागपुर के अंतर्गत 'पुरानी धुक्वारी' विभाग में था और इनका स्वगवास ई० सन १८६५ में हुआ ।^३ उन्होंने यह सूचना सीताराम के नागपुर निवासी यशजो से प्राप्त की है । सीताराम ने लोकमणि मिश्र के 'नवरसरग' की जो प्रतिलिपि बनाई थी, उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है—

“इति श्रीममिथ केशवराम चरणाभोरुह चचरीक लोकमणि विरचितया
नवरसरग वणना नाम द्वादशो अग समाप्त ॥ शके १७५६ सवन १८६१ सन्
१२४४ फमलीमाह जमा दुआनी तारीख ७ रोज गुरुवार उफ भाद्रपद गुकल १० इद
पुस्तक सीताराम महापात्र मोतीरामात्मज तेन स्वहस्तेन लिखितम आत्मा अयम परोप-
कारायम पन्नगपुर नग्न तममध्ये परसोजी भोगले राज्यारूढ तस्याश्रयेन किञ्चित
सुखाश्रातश्रवकर्मनियोगेन मयास्थितम् ॥”

इससे स्पष्ट होता है कि सीताराम महापात्र ने 'नवरसरग' का प्रतिलिपि सन् १८६१ अथात् सन् १८३४ ई० में बनाई थी और उन्हें परसोजी भोसला का

१ सीताराम कृत उक्तिविलास (हस्तलिखित प्रति), १।२, ३, ४ तथा ५

२ उक्तिविलास १।५९ तथा ३।१०३

३ हिंदी साहित्य को विदम की देन—प्रयागदत्त शुक्ल (प्र० स०), पृ० १०१

हिंदी साहित्य के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथ विभिन्न सग्रहालया में अज्ञात रूप में बिखरे पड़े हैं। इस अज्ञात ग्रंथ रत्नाकर का मयन कर भूत्ववान एव महत्वपूर्ण ग्रंथ को मुधी पाठकों के समक्ष लाना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है और हिंदी साहित्य के इतिहासकारों को भी चाहिए कि खोज में उपलब्ध अज्ञात ग्रंथों तथा ग्रंथकारों का समावेश वे अपने नए-नए संस्करण में करत रहें। हिंदी साहित्य में रीतिकालीन ग्रंथों का अपना विनिष्ट स्थान है। इस काल में यद्यपि शृंगार रस की प्रधानता रही फिर भी भक्ति नीति तथा वीररस से पूर्ण रचनाओं का भी संपूर्ण अभाव न था। 'यूनाधिक मात्रा में आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास इस युग में दृष्टिगोचर होता है। रीतिकाल के अन्तिम चरण में सीताराम महापात्र द्वारा रचित उक्ति विलास नामक ग्रंथ की एकमात्र हस्तलिखित प्रति हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में सुरक्षित है। यह प्रति अत्यन्त जीर्ण एवम खन्ति रूप में है। उसका आकार ११ १/२" × ७" है। इस लक्ष में सीताराम महापात्र तथा उनकी उपलब्ध रचना उक्तिविलास का संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ।

सीताराम का जीवन-वृत्त

सीताराम का जीवन वृत्त हिंदी साहित्य के इतिहासों में खोजविवरणा प्राप्ति में अथवा अग्रज नहीं भी प्राप्त नहीं होता। अतः 'उक्तिविलास' के अन्तर्गत प्राप्त छन्दों के आधार पर ही इनका जीवन परिचय दिया जा सकता है। इस ग्रंथ में कवि परिचय विषयक निम्नलिखित छन्द प्राप्त होते हैं—

नगर नागपुर में बस कवि-सुत सीताराम ।
 प्रेम नेम प्रभु चरण सो सायु डिग विधाम ॥
 गुहद सग निसिदिन रहै की-हयों यवन विनोद ।
 उक्तिविलास' बनाइयें जासो उपज मोद ॥
 दासो सोच विचार के की-हयों बुधि उनमान ।
 सद्युमति गुण अगणित प्रभु जया गवित विद्यान ।

उक्ति पूव सब बंधि रही जूठन लई सुवीन ।

गरजन लीज शोधिक कवि जन सुधर प्रवीन ॥^१

इन छंदों के अतिरिक्त ग्रंथ में दी हुई पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री मोतीरामात्मज सीताराम महापात्रे विरचिते

उक्तिविलासे स गार प्रसंगे तृतीयो प्रकाश सम्भूण ॥

इन छंदा एवम पुष्पिका से ज्ञात होता है कि सीताराम नागपुर के निवासी थे ।

पिता का नाम मोतीराम और उपनाम महापात्र था । छंद में प्रयुक्त 'कवि-सुत' शब्द से प्रतीत होता है कि इनके पिता मोतीराम भी कवि थे परन्तु दुर्भाग्य से उनका कोई परिचय प्राप्त नहीं होता । छंदा से ज्ञात होता है कि वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और साधु-संतों के सहवास में रहते थे । चौथे छंद में प्रयुक्त 'जूठन लई सुवीन' से कवि की विनयशील वृत्ति का परिचय जाना है । काव्य में ये सीताराम के अतिरिक्त 'सीतलदास' तथा 'सीतल' की छाप भी लगातार है । इस दृष्टि से इनके निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य हैं—

राम सनेही जगत में प्राण सनेही देहि ।

पचतत्त्व की खोज में 'सीतल' हरि भजि लेहि ॥

उक्ति मुक्ति को मूल है वरण्यो 'सीतलदास' ।

ज्ञानी रसिक विनोदहित कोह्यो उक्तिविलास ॥^२

सीताराम के जन्मकाल के संबंध में भी कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता ।

नागपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार तथा साहित्यिक पंडित प्रयागदत्त शुक्ल जी ने लिखा है कि सीताराम का मकान नागपुर के अंतर्गत 'पुरानी शुक्रवारी' विभाग में था और इनका स्वगवास ई० सन १८६५ में हुआ ।^३ उन्होंने यह सूचना सीताराम के नागपुर निवासी वंशजों से प्राप्त की है । सीताराम ने लोकमणि मिश्र के 'नवरसंग' की जा प्रतिलिपि बनाई थी, उसके अंत में इस प्रकार लिखा है—

“इति श्रीमिश्र केशवराम चरणाभारुह चचरीक लोकमणि विरचितयां नवरसरंग वणनो नाम द्वादशो अंग समाप्त ॥ शके १७५६ सवत १८६१ सन १२४४ फसलीमाह जमा दुआनी तारीख ७ रोज गुरुवार उफ भाद्रपद शुक्ल १० इद पुस्तक सीताराम महापात्र मोतीरामात्मज तेन स्वहस्तेन लिखितम आत्मा अथम परोप-काराथम पन्नगपुर नग तमन्धे परसोजी भोगले राज्यारूढ तस्याश्रयेन किंचित सुखाश्रातस्वकमानुयोगेन मयास्थितम ॥”

इससे स्पष्ट होता है कि सीताराम महापात्र ने 'नवरसरंग' का प्रतिलिपि सवत १८६१ अर्थात् सन १८२४ ई० में बनाई थी और उन्हें परसोजी भोंसला का

१ सीताराम कृत उक्तिविलास (हस्तलिखित प्रति), १।२, ३, ४ तथा ५

२ उक्तिविलास १।५९ तथा ३।१०३

३ हिंदी साहित्य की विद्वान् की वेन—प्रयागदत्त शुक्ल (प्र० स०), पृ० १०१

आश्रय था। इतिहास में ज्ञात होता है कि परमोजी का स्वगवास एक फरवरी १८१७ ई० में हुआ।^१ अतः यह निश्चित हो जाता है कि सीताराम परसोजी के यहाँ उनकी मृत्यु के पूर्व गए थे। परमोजी की मृत्यु के सत्रह वर्ष के पश्चात् बनायी गई नवरत्नरंग की प्रतिलिपि में सीताराम ने अपने आश्रयदाता परसोजी भोंसले का जिन प्रकार उल्लेख किया है उसमें प्रतीत होता है कि सीताराम को सर्वभूत परसोजी महाराज के द्वारा कोई भूमि अथवा स्थायीवस्ति प्राप्त हुई थी जिससे उनकी मृत्यु के पश्चात् भी सीताराम अपनी जीविका सुखमहित चलाते थे और सम्भवतः इसी कारण से सीताराम स्वयं को प्रमुखतः परसोजी के ही आश्रित मानते थे। परसोजी के द्वारा इस प्रकार का सम्मान पानेवाले सीताराम उम्र मय अवश्य ही ३५ के लगभग रहे होंगे। यदि यह स्वीकार किया जाय तो इस हिसाब से कवि का जन्म काल सन् १७८२ ई० के आसपास ठहरा जाता है। इस प्रकार उक्तिविलास की रचना के समय सीताराम की अवस्था ५४ वर्ष की ठहर जाती है। उक्तिविलास में सीताराम ने जो भक्तिपरक छन्द लिखे हैं उन्हें देखकर यह अनुमान होता है कि इसकी रचना अवश्य ही कवि की प्रौढावस्था में हुई थी। सन १७८२ अर्थात् सन् १८३६ वि० के आसपास इनका जन्मकाल मानना अधिक सगुण प्रतीत होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि ८३ वर्ष की अवस्था में सन १८६५ ई० में सीताराम का स्वगवास हुआ था।

आश्रयदाता

उपयुक्त विवेचन में स्पष्ट है कि सीताराम को नागपुर के परसोजी भोंसले का राजाश्रय था। 'उक्तिविलास' के प्रारम्भ में सीताराम ने अपने दूसरे आश्रयदाता के संबंध में इस प्रकार उल्लेख किया है—

(१) धितिपति नाना के सुवन बही साहू महाराज ।

कीरति बसुधा में प्रगट सब रूपन सिरताज ॥

(२) दिन हित सीताराम कियो ।

मोह सा अदुह सप्त में निधि और राग ॥^२

इन छंदों में पात होता है कि सीताराम ने 'उक्तिविलास' की रचना जिनके लिए की थी वे महाराज राजाजी में श्रेष्ठ, बलवान तथा कीर्तिकान थे और वे 'नाना' के सपुत्र थे। इन छंदों में कवि ने स्पष्ट रूप से आश्रयदाता का नाम नहीं लिखा और यदि लिखा भी हो तो खंडित अंग में रहा होगा जिसकी पढा नहीं जा सकता। इसलिए अन्य साधनों का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। प० प्रयागलाल गुप्त ने इनकी नागपुर के रघोजी भोंसला, तनीय माना है और साथ में यह भी कहा है कि ये नाना अहिरराव के पुत्र थे।^३ उक्तिविलास की रचना नागपुर के रघोजी तनीय के लिए हुई

१ नागपुरकर भोतल्याची बखर—भा० प० गुप्ते (सन् १९३६ ई०), पृ० २३३

२ उक्तिविलास ११७ और ८

३ हिंदी साहित्य की विदम की देन पृ० १०१

थी, यह कथन तकमगत ही प्रतीत होता है। परन्तु रघोजी तृतीय नाना अहेरराव के पुत्र थे यह कथन इतिहास से मेल नहीं खाता।^१

रचनाकाल

उक्तिविलास के अन्त में कवि ने रचनाकाल विषयक जो पुष्पिका दी है वह इस प्रकार है—

इति श्री मोतीरामात्मज सीताराम महापात्रे विरचिते—

उक्तिविलासे सुगार प्रसंगे तृतीयो प्रकाश संपूर्ण ॥

सम्बत १८९३ शके १७५८ शुभुखनाम सवसरे षोड

शुक्ल पचम्या सौम्य वासर तद्दिने इदं प्रथमं समाप्त ॥

इससे स्पष्ट होता है कि 'उक्तिविलास' की समाप्ति १८९३ शके १७५८ के षोड मास की शुक्ल पचमी को सोमवार का हुई थी।

उक्तिविलास के तीन प्रकाश हैं जिनके क्रमशः 'भक्तिप्रसंग', 'प्रस्ताव प्रसंग' तथा 'शृंगार प्रसंग' ये नाम रखे गए हैं। प्रथम प्रकाश में ११५ दोहे तथा सोरठे हैं जिनमें भक्तिविषयक विचारधारा व्यक्त की है। प्रारम्भ में शृंगार, करुण, रोद्र, यीर, मयानक, बोमत्स, अदभुत आदि रसों में भक्ति के कुछ उदाहरण देकर बाद में भक्ति के विभिन्न अंगों का विवरण दिया है। विवरण में अधिकांश उदाहरण कृष्ण के मिलते हैं। भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिए प्रह्लाद आदि भक्तों के उदाहरण का स्मरण कराया है। भक्ति के अंतगत ईश्वर की महत्ता आदि के विवेचन में 'गीता' का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। कवि का कृष्ण प्रेम कितना दृढ़ तथा शीघ्र है उसकी कल्पना निम्नलिखित छंदों से सहज हो सकती है—

१ बह्यलोक, शीबलोक अरु इद्रलोक पुनि साय ।

नागलोक अलकावती अजसमान नहिं कोय ॥^१

२ इद्रपद जद्यपि मिल तिहू लोक को राज ।

× × समाज सीतल लष यज में रहै विराज ॥^२

द्वितीय प्रकाश में जिसका नाम प्रस्ताव प्रसंग रखा है १२६ छंद हैं। इसमें वक्रोक्ति अयोक्ति, व्याघ्रिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, युक्तयुक्तालंकार आदि पर सुंदर छंद हैं। द्वितीय प्रकाश में अधिकांश छंद म नीति तथा व्यवहार विषयक सूक्तियाँ हैं। विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से मनुष्य मूल्यों की योजना की है जिससे काव्य में अधिष्ठान माधुर्य आ गया है। कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नहिं सुगंध जा फूल में नहिं पराग मकरंद ।

अली कली जित क्यों रचे तजि सोरम अरविंद ॥

१ विस्तृत विवेचन के लिए देखिए पुना विश्वविद्यालय से प्रकाशित तथा डॉ० कृष्ण दिवाकर द्वारा सम्पादित सीताराम महापात्रे विरचित 'उक्ति विलास'

२ उक्तिविलास प्रथम प्रकाश, ४९ तथा ५१ छंद

बनी बनाई ना मिट, कौन मिटावन हार ।
 गव किये रावण गयो हतो तिधु के पार ॥
 जगत पियारो लक्ष्मी, भक्त पियारो राम ।
 ब्राह्म पियारो पुत्र है वाय पियारो काम ॥
 लोहा लोहा एक सम तामे हैं छ भाँति ।
 एक लोहा समशेर हैं एक लोहा म घात ॥^१

इस प्रकार समस्त छंदों में सामाजिक पक्ष भी महत्त्व का ही गया है। समाज के विभिन्न व्यक्तियों—स्त्री पुरुष, सज्जन दुजन, आदि की प्रवृत्तियों का विवरण विभिन्न अलंकारों के साथ देने का सफल प्रयत्न किया गया है। समाज में स्थित विविध गुण दोष तथा प्रवृत्तियों के विवेचन में नीतिविषयक सत्पक्ष की उक्तियाँ भी पर्याप्त हैं। प्रथम का 'उक्तिविलास' यह नामकरण साधक एवं सारगर्भित है।

तृतीय प्रकाश का नाम है शृंगार प्रसंग। इस प्रकाश का नाम ही वण्य विषय का परिचय करा देता है। इस प्रकाश में कुल मिलाकर १०३ छंद हैं। इसमें परंपरा अनुसार नायिका भेद तथा नख शिख का वणन है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि नायिका भेद तथा नख शिख जैसे वणन के लिए भी सीताराम ने प्रथम दो प्रकाशों की भाँति दोहा तथा सोरठा जैसे छोटे छंदों का ही प्रयोग किया है। स्वकीया का यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

सजल नैन मृदुवन लपि लसत भव मुसकान ।
 कजयदन मन भवन मन प्रेम परम सुखदान ॥

नख शिख वणन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

- १ तिल प्रसून तुन्नीर शुक्र छवि नासिकी ओर ।
 सखर निरखि न करि सक किहे जतन करोर ॥
- २ पुष्प प्राण प्यारी निरखि सौतिन के उरसाल ।
 मानो उपजे सग ही प्रफुलित कज सनाल ॥
- ३ केलि समै प्रीतम पिया साज लजाहनि मजि ।
 भकुटी में सपटो रहति तन सकेत विराजि ॥^२

भाषा-शैली और छंद-योजना

काव्य के भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है और उस भावार्थ व्यक्तियों को सयबद्ध एवं नादमधुर बनाने का काव्य छंद करते हैं। काव्य-शैली का विभिन्न घटकों में कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा-शैली और छंद का भी बहुत महत्त्व होता है। काव्य के अध्ययन में काव्य की भाषा का शास्त्रीय एवं व्याकरणिक

१ उक्तिविलास, द्वितीय प्रकाश, छंद ३, ३१, ३२, १०१

२ उक्तिविलास, तृतीय प्रकाश छंद २३, ५२, ६२, ३३

अध्ययन अपेक्षित नहीं होना। पूठो की परिमित सीमा में लिविन^१ उक्तिविलास की परिषयात्मक भूमिका में यह संभव भी नहीं है। सीताराम महापात्र ने उक्तिविलास के लिए तत्कालीन लोकप्रिय तथा प्रातिनिधिक ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। अतः ब्रजभाषा की समस्त विशेषताएँ इसमें विद्यमान हैं। कवि ने भावा तथा प्रसंगों के अनुकूल शब्द याचना की है। शब्दावली को देखने पर स्पष्ट दिखाई देता है कि इसमें शब्दों के तत्सम, अद्यतत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त यूनाधिक मात्रा में श्रावृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी के भी शब्द प्रयोग मिल जाते हैं। यत्र तत्र बुदेही तथा अवधी भाषा के शब्दों का उपयोग भी कवि ने किया है। सीताराम ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिए प्रचलित मुहावरों का भी अनेक बार प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

- १ गरजत किलकारी करै काल सीस पर माइ ।
- २ घायल सी घूमत फिरँ छतिपा घरकत वाम ।
- ३ भवजल अगम अषाह में निपुरा गीता सार्थ ।
- ४ लखि चल बह छवि छकि रहे जक न लग दिनरात ।

उक्तिविलास में अधिकांश रूप में दोहा और सौरठा छंदों के प्रयोग मिलते हैं।

कवि ने विहारी की भाँति गभीर भावों की अभिव्यक्ति भी इन छोटे छंदों के माध्यम से की है। इसमें कवि का भाषा प्रभुत्व तथा अभिव्यक्ति कौशल दृष्टिगोचर होता है। दोहों और सौरठा के अतिरिक्त मंत्रतत्र बुडलिया, छप्पय कवित्त आदि छंद भी मिलते हैं परन्तु अत्यल्प मात्रा में।

हिंदी साहित्य में सीताराम का स्थान

उक्तिविलास ग्रंथ की रचना रीतिकाल के अन्तिम चरण में हुई है अतः इस पर पूर्ववर्ती रीति ग्रंथों के रचयिताओं का प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष प्रभाव रहना स्वाभाविक है। उक्तिविलास पर विहारी की परंपरा का प्रभाव अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। कवि ने ग्रंथ का जो नामकरण किया है वह उसकी मूल्यता का द्योतक है। इसमें कवि की उक्तियों का वास्तविक विलास दिखायी देता है। इसमें भक्ति, नीति व्यवहार, नख शिख, नायिकाभेद, अलंकार रस तथा ऋतुवर्णन सब कुछ एवं साथ ही विद्यमान है। कवि की प्रतिभा, भाषा प्रभुत्व काव्यकौशल, अभिव्यक्ति की गली आदि बातों से अनुमान होता है कि सीताराम महापात्र ने उक्तिविलास के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों की भी रचना अवश्य की होगी। इस दिशा में अधिक खोज करना अत्यंत आवश्यक है। उक्तिविलास की भाँति उनके अन्य ग्रंथों का भी पता लग जाय तो हिंदी साहित्यमागार अवश्य ही अधिक समृद्ध होगा। हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिकालीन प्रमुख कवियों की चर्चा के प्रसंग में सीताराम महापात्र को भी अवश्य स्थान मिलना चाहिए।

७ | मराठा शासक नृपशम्भु का हिन्दी काव्य

रीतिवादीन हिन्दी कवियों में नृपशम्भु का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासों में इनका जो परिचय मिलता है वह अत्यन्त संक्षिप्त एवं भ्रमात्मक है। नृपशम्भु का सब प्रथम उल्लेख 'शिवसिंह सरोज' में पाया जाता है और परवर्ती साहित्यकारों ने सराज के आधार पर नृपशम्भु का परिचय दिया है। डा० गिर्वसिंह सेंगर ने^१ इनका उपस्थिति-काल अर्थात् कविता-काल स० १७३८ (सन १६८१ ई०) मानते हुए लिखा है कि ये महाराज कवि कोविदों के कल्पवृक्ष महान कवि हो गये। शृंगार रस वर्णन इनका निराला है। नायिका भेद का इनका ग्रन्थ सर्वों पर है। डॉक्टर प्रियसन ने^२ तथा एफ० ई० के^३ ने इनका उपस्थिति काल सन् १६५० ई० के पास माना है। डॉक्टर विजयेन्द्र स्नातक^४ ने, 'हिन्दी साहित्य के बहुद् इतिहास' में नृपशम्भु का जन्म स० १७३८ (सन १६८१) में माना है। इन सभी इतिहास लेखकों ने नृपशम्भु को सितारा गढ़वाले राजा शम्भुनारायणसिंह सुलवी कहा है जो शिवसिंह सरोजका अनुगमन मात्र है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखित नृपशम्भु का यह परिचय कल्पना तथा अनुमान पर ही अधिकतर समाश्रित दिखायी देता है। गिर्वसिंह सेंगर ने भूषण क आश्रयदाता गिवाजी को भी, शिवराज सुलवी कहा है। इतिहास में यह स्पष्ट है कि भूषण के आश्रयदाता गिवाजी भासला थे न कि सुलवी। ठीक यही भ्रान्ति नृपशम्भु के सम्बन्ध में भी हुई है। अनुसंधान में प्राप्त सामग्री से यह स्पष्ट होता है कि ये 'नृपशम्भु' महाराष्ट्र के प्रसिद्ध मराठा शासक छत्रपति गिवाजी के सुपुत्र समाजी ही थे। प्रसिद्ध इतिहासकार मुन्गी देवी प्रसादजी ने भी नृपशम्भु को गिवाजी के पुत्र समाजी भोंसले ही माना है।^५ नृपशम्भु द्वारा रचित किसी भी रचना में कहीं भी सितारा

१ गिर्वसिंह-सरोज, कवि सख्या ८३७

२ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—डा० गिगोरीसाल गुप्त पृष्ठ १५८

३ हिन्दी लिटरेचर—एफ० ई० के० पृ० ४२

४ हिन्दी साहित्य का बहुद् इतिहास (षष्ठ भाग), पृ० ५३३

५—शिवराम ध्यावली—संपादन कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ० २५१

गडवाले राजा शम्भुनाथ सुलकी' वा उल्लेख तक नहीं है। प्रत्युत नपशमु शम्भुराज, शम्भुकि, सभ्रकि, सभराज, सभाज आदि नामों की छाप मिलती है जो शम्भुराज अथवा सभाजी के ही नाम हैं। इन रचनाओं में कई स्थानों पर ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जो सभाजी के जीवन का कुछ घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। मराठी के इतिहास में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि सभाजी ने संस्कृत काव्य के अतिरिक्त नायिका भेद और नखशिख नामक हिन्दी काव्यों की भी रचना की है।^१ अतः ये स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी के पुत्र सभाजी का ही साहित्यिक नाम नपशमु था। इतिहास के अनुसार इनका जीवनकाल सन् १६५७ ई० से सन् १६८६ ई० तक था। अनिश्चित हो जाता है कि सन् १६५७ ई० के पूर्व इनकी जन्म तिथि नहीं हो सकती। डॉक्टर विजेन्द्र स्नातक ने नपशमु का जीवनकाल सन १६८१ ई० (स० १७३८ वि०) लिखा है वह असत्य प्रतीत होता है। सम्भवतः अनेक इतिहासकारों की भाँति, सरोज में लिखित 'उ०' का अर्थ 'उद्दान ठोक से ग्रहण नहीं किया और इसी के परिणाम स्वरूप उद्दान 'उ०' का अर्थ, 'उपस्थिति-काल, के स्थानपर, उत्पन्न काल' ले लिया। डा० शिवसिंह सेंगर ने इनका उपस्थिति काल सन १६८१ ई० (स० १७३८ वि०) माना है जो अनेक दृष्टियों से तर्कसंगत है। सभाजी का राज्याभिषेक सन १६८१ ई० हुआ उसके पश्चात् वह, 'नप' हुए। अतः नपशमु का शिवसिंह सरोज द्वारा लिखित उपस्थिति-काल उचित ही है।

प्रामाणिक सामग्री के अभाव में प्रचलित तथा कल्पित एवम् निराधार किम्बदंतियों के आधार पर अनेक इतिहासकारों ने 'शम्भुराज' को विलासी, अत्याचारों दुराचारी, दुःखसूनी के रूप में प्रस्तुत किया था परन्तु सभाजी के समकालीन पत्र व्यवहार, उपलब्ध ग्रंथ तथा अनुसंधान में प्राप्त सामग्री के कारण सभाजी का वास्तविक महान् चरित्र जानने में सहायता हो रही है। कुछ इतिहासकारों एवम् साहित्यकारों ने सभाजी के चरित्र को नई सामग्री के आधार पर नई दिशा देने का प्रयास प्रयत्न किया है।

छत्रपति सभाजी न केवल पराक्रमी, राजनीतिज्ञ एवं कृतत्वसम्पन्न शासक ही थे वरन् वे एव उल्लेख्य तथा सहृदय कवि भी थे। जिस प्रकार सभाजी का वास्तविक राजकीय व्यक्तित्व प्रामाणिक सामग्री के अभाव में अज्ञात रहा व उसी प्रकार सभाजी का साहित्यिक व्यक्तित्व भी पूर्णतः प्रकाश में नहीं आया था। पूर्वग्रहदूषित दृष्टिकोण से शम्भुराज के चरित्र की ओर देखने वालों ने उनकी साहित्यिक कृतियों पर जोर विशेष ध्यान नहीं दिया और जो दिया वह उनकी श्रुतित एवं स्फुट कविता के आधार पर उन्हें विलासी सिद्ध करने के लिए।

सभाजी की अधिकांश रचनाएँ श्रुतार प्रधान हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि सभाजी केवल विलासी ही थे। कृतत्व-सम्पन्न एवं पराक्रमी व्यक्ति

जीवन में फुरसत के समय यदि शृंगार या विलास का आगमन होना है तो वह रूपण नहीं भूषण सिद्ध होता है। सभाजी का विलास कायरो तथा भीरुआ का दुबल विलास तथा बल्कि एक पराक्रमी राजनीतिज्ञ एवं कृतृत्वसंपन्न व्यक्ति का सबल विलास था। बाल्यावस्था से ही राजनीति के साथ-साथ काव्यालंकार, शास्त्र, पुराण, संगीत आदि के अध्ययन से साहित्य के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि बढ़ी। जीवन के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत एवं मुगला की छावनी में रहने के कारण वहाँ के विलासी एवं ऐश्वर्यमयी वातावरण का प्रभाव सभाजी पर होना स्वाभाविक ही था। विलासी एवं शृंगारिक प्रवृत्ति होने पर राजनीतिक क्षेत्र में भी सभाजी ने जो प्रगतनीय काय किया उससे स्पष्ट हो जाता है कि सभाजी विलासी वृत्ति के दास कभी नहीं बने थे, उल्टे जीवन की सध्या में उनकी प्रवृत्ति धर्म तथा अध्यात्म की ओर दिखाई देती है। संभवतः इसी प्रवृत्ति ने उन्हें मृत्यु के समय स्थितप्रज्ञ बनाया था।

नृपशम्भु अर्थात् सभाजी के अवतरण चार ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं जिनमें एक सस्कृत का और तीन हिंदी के हैं। बुधभूषण नामक उनका सस्कृत ग्रंथ माहाराज्य प्राञ्चविद्या मंदिर से प्रकाशित हुआ है। हिंदी ग्रंथों में अतगत नखशिख, नायकिभेद एवं सातसतक ग्रंथ आ जाते हैं। इस लेख में नृपशम्भु के हिंदी काव्य ग्रंथों का ही संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जा रहा है।

नख शिख

हिंदी साहित्य में प्रचलित परम्परा के अनुसार ही इस ग्रंथ की रचना है। इस ग्रंथ की सम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में उपलब्ध है। नखशिख का बहुत सा अंश बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'साहित्य मुद्रा निधि' में प्रकाशित किया था। परन्तु उस समय उन्हें सम्पूर्ण ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सका था। इस ग्रंथ का उल्लेख इतिहासकारों तथा अन्य विद्वानों ने बार-बार किया है परन्तु सम्पूर्ण ग्रंथ की प्राप्ति के अभाव से अथवा अन्य किसी कारण से इस ग्रंथ के अन्तरंग की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। मैंने इसकी मूल प्रतियों की खोजकर उसका विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया है। यहाँ केवल ग्रंथ का स्वरूप परिचय के रूप में दिया जा रहा है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर १३६ छंद हैं। इसमें अधिकांश रूप में कवित्तो और सबयो का ही प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं दोहा तथा छप्पय छंद के प्रयोग भी मिलते हैं परन्तु अत्यल्प मात्रा में। ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया गया है। संभव है कि समय-समय पर नृपशम्भु द्वारा रचित नखशिख विषयक छंदों को बाद में संकलित किया गया हो और इसी कारण उसमें ग्रंथ समाप्ति दशक दोहा या दशक छंद नहीं मिलता। प्रतिलिपिकार ने भी अपना नाम नहीं दिया। इसका लिपिकाल स० १८०० वि० है। नृपशम्भु की कविता में अलंकार योजना की परिपाटी ठीक वसी ही मिलती है जसी देव, मतिराम पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों की थी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नृपशम्भु ने हिंदी के इन कवियों की रचनाएँ पढ़ी होगी। इनकी कविता में हृदय के भावों के चित्र एवं मार्मिक अनुभूतियों की अपेक्षा बाह्य

बन्तुशा का वणन लिखायी देना है । वही कही प्राचीन परम्परा की पिटी हुई लकीर को छोड़कर नपशु ने नये उपनाम के सहारे आकषक चित्र भी प्रस्तुत किए हैं । उदाहरण के रूप में निम्नलिखित नाभि का वणन द्रष्टव्य है—

रूप को रूप बखानत है कवि कोऊ तलाब सुधा ही के लग को ॥
कोऊ तुफान मोहारि कहै दरला कल्पद्रुम भाषत अग को ॥
बार ही बार विचार कियो नपशु नया मत मो मति दग को ॥
सोसो उरोजनि तें मदधार रुमावली नामी न प्याला अनग को ॥

इसमें परंपरागत उपमानों को छोड़कर उरोजा को मदिरा की शीशी, रोमावली को मदिरा की धार और नाभि को मदिरा का प्याला कहा है । काव्य में प्रयुक्त नयामत मो मति दग को नपशु की विशिष्ट दृष्टि का यातक है जिससे उनकी उद्भावना शक्ति का परिचय होता है ।

नायिका भेद

इस प्रय के स्फुट छंद ही प्राप्त होते हैं । छंदों को देखकर स्पष्ट होता है कि ये किसी संपूर्ण प्रय के छंद ही होंगे । बहुत प्रयत्न करने पर ही मुझे नायिका भेद की संपूर्ण प्रति प्राप्त न हो सकी । इस प्रय के उपनाम छंदों से नपशु की कवित्व शक्ति तथा काव्य सौन्दर्य की प्रतीति होती है । नायिका भेद का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

सासु कह्यो दधि बँचन को
सुदई सुखदाई कहाँ ते धों हाकरी ।
मोहि मिले 'नपशु' गुपाल
तमाल तरे वह गैल जो साँकरी ।
मो तन ताँकि बडी आखियान तें
काँकरी ल फिर मोहन घाँकरी ।
बाकरी ओडि लई कर तें पै
करे जें कहाँ धों गई गडि बाकरी ।

यह प्रय सम्पूर्ण रूप से प्राप्त न होने से इसके रचनाकाल तथा लिपिकाल के सन्तर्पण में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है । नायिकाभेद के पद्यों में 'नपशु' की जो छाप मिलती है उससे स्पष्ट होता है कि इनकी रचना समाजी के 'नृप' हो जाने के पश्चात् हो गई थी । नपशु का गायनकाल सन १६८१ से १६८६ तक था । अतः नायिकाभेद की रचना इसके बीच संभव है ।

सानसतक

नपशु का यह प्रय प्रथम बार ही विद्वानों के सम्मुख आ रहा है । किसी भी प्रय में नपशु द्वारा लिखित सातसतक प्रय का नामोल्लेख भी नहीं है । मैंने यह प्रय काशी नागरी प्रचारिणी समाज के हस्तलिखित संग्रह में प्राप्त किया । इस प्रय में

जीवन में फुरसत के समय यदि शृंगार या विलास का आगमन होना है तो यह रूपण नहीं भूषण सिद्ध होता है। सभाजी का विलास कायरो तथा भीरुआ का दुबल विलास न था बल्कि एक पराक्रमी राजनीतिज्ञ एवं शत्रुत्वसंपन्न व्यक्तिक का सबल विलास था। शाल्यायण्या से ही राजनीति के साथ-साथ काव्यानुवाद, नाट्य, पुराण, सगीत आदि के अध्ययन से साहित्य के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि बढ़ी। जीवन के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत एवं मुगला की छावनी में रहने के कारण वही के विलासी एवं ऐश्वर्यमयी वातावरण का प्रभाव सभाजी पर होना स्वाभाविक ही था। विलासी एवं शृंगारिक प्रवृत्ति होने पर राजनीतिक क्षमता में भी सभाजी ने जो प्रगतिशील कार्य किया उससे स्पष्ट हो जाता है कि सभाजी विलासी बर्तन के दास कभी नहीं बने थे उल्टे जीवन की सध्या में उनकी प्रवृत्ति धर्म तथा अध्यात्म की ओर गिराई देती है। संभवतः इसी प्रवृत्ति ने उन्हें मृत्यु के समय स्थितप्रज्ञ बनाया था।

नृपशमू अर्थात् सभाजी के अवतक चार ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं जिनमें एक ससृष्ट का और तीन हिंदी के हैं। बुधभूषण नामक उनका ससृष्ट ग्रंथ भांडारकर प्राच्यविद्या मंदिर से प्रकाशित हुआ है। हिंदी ग्रंथों के अंतर्गत नखशिख, नायकभिेद एवं सातसतक ग्रंथ आ जाते हैं। इस लेख में नृपशमू के हिंदी काव्य ग्रंथों का ही संक्षिप्त परिचय मात्र दिया जा रहा है।

नख शिख

हिंदी साहित्य में प्रचलित परम्परा के अनुसार ही इस ग्रंथ की रचना है। इस ग्रंथ की सम्पूर्ण हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में उपलब्ध है। 'नखशिख' का बहुत सा अंश बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'साहित्य सुधा निधि' में प्रकाशित किया था। परन्तु उस समय उन्हें सम्पूर्ण ग्रंथ प्राप्त नहीं हो सका था। इस ग्रंथ का उल्लेख इतिहासकारों तथा अन्य विद्वानों ने बार-बार किया है परन्तु सम्पूर्ण ग्रंथ की प्राप्ति के अभाव से अथवा अन्य किसी कारण से इस ग्रंथ के अन्तर्गत की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। मैंने इसकी मूल प्रतियों की खोजकर उसका विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। यहाँ केवल ग्रंथ का स्वरूप परिचय के रूप में दिया जा रहा है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर १३६ छंद हैं। इसमें अधिकांश रूप में कविता और सवयों का ही प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं दोहा तथा छप्पय छन्द के प्रयोग भी मिलते हैं परन्तु अल्प मात्रा में। ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया गया है। संभव है कि समय-समय पर नृपशमू द्वारा रचित नखशिख विषयक छंदों की बाद में संकलित किया गया हो और इसी कारण उसमें ग्रंथ समाप्ति दशक दोहा या दशक छंद नहीं मिलता। प्रतिलिपिकार ने भी अपना नाम नहीं रिया। इसका लिपिकाल स० १८०० वि० है। नृपशमू की कविता में अलंकार योजना की परिपाटी ठीक वही ही मिलती है जैसी देव मतिराम पपाकर आदि रीतिकालीन कवियों की थी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नृपशमू ने हिंदी के इन कवियों की रचनाएँ पढ़ी होंगी। इनकी कविता में हृदय के भावों के चित्र एवं मार्मिक अनुभूतियों की अपेक्षा बाह्य

भी युष्मभूषण नायिका भेद, नखगिल आदि ग्रथो की भाँति नरेशभु, समुराज, सभाजू, समुराज आदि की छाप स्पष्ट रूप से मिलती है। पूर्ववर्ती ग्रथा की अपेक्षा इम ग्रथ का विषय सवया भिन है। इसमे युञ्ज मिलारर सौ छद हँ जिनम प्रारम्भिक मान छद प्रस्ताविक रूप में हँ। इन छऱा में गणेश, कमला, सीता, राम आदि की प्रशसा है। ग्रथ के आरम्भ म कवि ने अपना उद्देश्य भी दिया है। ग्रथ के प्रतिपाद्य विषयो का सकेत निम्नलिखित छद म दिया गया है—

उपालम कहि बिनै कहि जगत सीप कहि ध्यान ।

ब्रह्म निरूपन बसु बह्यो जाते बाढ़त ध्यान ॥

इस प्रकार समस्त ग्रथ उपालम, विनय, जगतसीप, ध्यान तथा ब्रह्मनिरूपण अथवा ब्रह्मविचार इन पाँच शीषको मे विभाजित किया गया है। अथ ग्रथो की भाँति इस ग्रथ का रचनाकार प्राप्त नहीं होता। नायिका भेद तथा सातसतक की प्रथि लिपियो की देखकर पात हाता है कि दोनो ग्रथा का लिपिकार एक ही है। उसने नखशिख की प्रथिलिपि स १८०० वि० के चत्र मास म पूण कर पाँच ही महीनों म अर्थात् स० १८०० वि० के भाद्रपद मास म सातसतक की प्रथिलिपि पूण की थी।

अब तक अज्ञात 'सातसतक' ग्रथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इस ग्रथ म व्यक्त विचारों तथा उल्लेखो की देखकर सभाजी के उत्तर चरित्र पर कुछ प्रकाश पड जाता है। सभाजी के शासन काल के दो अंतिम वर्षों म सभाजी के चरित्र मे वह राजनीतिक तीव्रता बयो नहीं दिखायी देती और औरंगजेब द्वारा जीवितादस्या म अपने शरीर मे असह्य अमानुष अत्याचार होने पर भी स्वधम के लिए हँसने हँमते मत्युको आलिगन देने वाले राजा सभाजी के जीवन का रहस्य खुल जाता है। 'सातसतक' मे सभाजी के धार्मिक आध्यात्मिक एव वैराग्यपरक विचार देखकर अनुमान होता है कि जीवन के प्रारभ मे माता की मत्यु होने स भातमुख का अभाव, पिता के साथ नो वष की अवस्था म आगरा जाना, बदीगह म रहना, मुक्त होने पर भी इलाहाबाद मे अपरिचित परिवार मे रहना, विद्याध्ययन करना दूर दूर की यात्राओ के कष्ट तथा प्रेम का एकमात्र सहारा जिजाबाई का स्वगवास, उसके पश्चात चार वर्षों के पश्चात ही पिता की मत्यु राजसिंहासन छिनने से तथा हरया पडयन, राज्याभिषेक होने ही प्रारभ के लगभग छ वष सिद्दिया पोतु गीजो तथा प्रबल सम्राट औरंगजेब के साथ युद्ध कर महाराष्ट्र की स्वाधीनता को परचन से बचाते रहना आदि एक से एक बढकर जीवन म आने वाली आपत्तियो के कारण सभाजी का मन लौकिक एदवय से विरक्त हुआ हो और आध्यात्मिक क्षेत्र मे शांति पाने के लिए आर्कषित हुआ हो। इतनी आपत्तियो के बावजूद भी सभाजी का रमिक मन फुरसत के समय साहित्य का पडने तथा सजन करने म यस्त रहता था और सधपमय जीवन से कुछ समय के लिए दूर रहकर आनन्दित हो जाता था। इतिहास स शात होता है कि रायगढ से बिगासगढ की ओर जाने वाले रास्त पर सगमेवर नामक एक स्थान के पाम कविकलण ने और सभाजी ने कुछ मकान और बगीच बनवाकर अपने

निवास का स्थान बनवाया था। कविकलश ने मयमिद्धि के लिए खास कर यह गान तथा एवात स्थान चुना था। सन् १६८८ ई० की ग्रीष्म ऋतु में सभाजी इस स्थान पर रहे थे। इतिहास की इस घटना को देखकर प्रतीत होता है कि मृत्यु के एक-डेढ़ वर्ष पहले ही सभाजी में यह विरक्ति प्राप्त हुई थी।

'सातसतक' की रचना भी इसी समय हुई होगी। ग्रन्थ में कवि ने अपनी मृत्यु के समय के कुछ संकेत दिए हैं। कहीं-कहीं सभाजी ने अपने विभासी जीवन के प्रति परचाताप भी व्यक्त किया है। 'सातसतक' का निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है—

छत्र जग चमर तुरग अगनित सग एते ।

पर मन नां गहर गहियतु है ॥

असन विह्रैने अग वे बसन सूने रापो ।

सोक निदा भापो सुप मानि साहिअतु है ॥

दूपन तुम्हें जे देत मुगुध अचेत प्रभु

करि हो उहै पै जाको जसो चाहिअतु है ॥

सम पोई महिपाल कर्हें सुनिये गोपाल

हम हरि लाल तुम सौ निहाल रहिअतु है ॥

सानसनरु ग्रथ की भाषा का परिचय उपयुक्त छंद से सहज ही हो जाता है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रथ का उतना महत्त्व नहीं है क्योंकि संपूर्ण ग्रथ का उद्देश्य सवथा भिन है।

नृपशम्भु की हिन्दी कविता की परिष्कृत शब्दावली देखकर स्वभावतः यह शका उठ सकती है कि मराठी भाषी होने पर भी नृपशम्भु की भाषा इतनी शुद्ध एवं परमाजिन कैसे रही? कुछ समीक्षक तो कविकलश को ही इन प्रश्नों के वास्तविक रचयिता मानने के पक्ष में हो सकेंगे। परंतु समस्त रचना में जब तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता तबतक केवल अनुमान करना भी उचित नहीं। स्थानाभाव में इसकी विस्तृत चर्चा यहाँ संभव नहीं है, फिर भी इसके संबन्ध में कहा जा सकता है कि सभाजी द्वारा प्रस्तुत की हुई हिन्दी रचनाओं को उनके काव्यगुरु कविकलश ने अवश्य ही सस्कारित किया होगा। नृपशम्भु की हिन्दी कविताओं का विशेष विश्लेषण फिर कभी प्रस्तुत किया जायगा। इस लेख में नृपशम्भु की हिन्दी रचनाओं का परिचय मात्र करा दिया गया है। आशा है कि हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य में नृपशम्भु की काव्य-कृतियों को समादृत किया जाएगा।

८ | रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन*

“राति काव्य के प्रति उपेक्षा के सकेत तो आधुनिक युग के प्रथम चरण से ही मिलने लगे थे, परन्तु इसने द्विवेदी युग में एक कटु प्रतिक्रिया का रूप धारण किया। एक प्रकार से यह युग मर्यादावाद, आदर्शवाद और पुनरुत्थानवाद का था। पुनरुत्थान इस युग की मूल चेतना तो थी पर पश्चिम की नवीन दृष्टि की स्वीकृति भी एक सीमा तक थी चाहे वह औपचारिक ही हो। इसके द्वारा भारतीय काव्य समीक्षा के सिद्धान्तों

*[भारतीय हिंदी परिपद का आईमबा वार्षिक अधिवेशन विन्नम विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में दिसम्बर १९६६ में बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ। उसमें हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर विभिन्न रूपों में विचार विमर्श हुए जो अत्यन्त उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक मिष्ट हुए। इस समय विचारगोष्ठियों के अन्तर्गत जो विषय थे उनमें 'रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन' भी एक विषय रहा। इसके अध्यक्ष डाक्टर विजयपालसिंह तथा प्रवक्तक डाक्टर महीरय मिश्र थे। इनके अतिरिक्त डा० नगेन्द्र प० बलदेव उपाध्याय डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डा० रामबुमार बर्मा आचार्य नन्ददुलारे वाजपयी डाक्टर हरबालाल शर्मा डा० कृष्ण शिवाकर डा० मनोहरलाल गौड़, डा० दगारय ओभा आदि व्यक्तियों ने चर्चा में भाग लिया था। चर्चा अत्यन्त रोचक एवं नयी सिंगा देन वाली रही। उस चर्चा के आधार पर यह लेख प्रस्तुत है जिससे परिपद के अधिवेशन में सम्मिलित न होने वालों को उसके प्रमुख स्वर का स्थूल परिचय हो सकेगा।

हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य को स्वर्णयुगीन साहित्य कहकर उसको जितना गौरव तथा महत्त्व दिया गया उतना ही उपेक्षा भाव तथा हीनभाव रीतिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रति दिखाया गया। पिछले कुछ वर्षों में किये गए 'गोप-कार्य' द्वारा हिन्दी साहित्य के ऐसे अनेक अज्ञात कवि तथा उनका साहित्य प्रकाश में आया है कि उनके सादर में समस्त हिन्दी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन तथा पुनर्मूल्यांकन का आवश्यकता है। इस लेख में बड़े चर्चित रीतिकालीन हिन्दी साहित्य के पुनर्मूल्यांकन का सम्बन्ध में स्थूल रूप से चर्चा प्रस्तुत है।]

का नवोन्नीकरण हुआ। उनकी एकदेशीयता और गतानुगतता के परित्याग की चेष्टा हुई। चाहे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा का मान दण्ड बही रहा हो जो संस्कृत का था पर इसकी पुनर्स्थापना सुरुचि नतिकता, सुधार भावना और राष्ट्रीय विशिष्ट्य के आधार पर हुई। भक्ति कालीन वर्णव्यवस्था के मान दण्ड को भी एक महत्वपूर्ण आयाम प्रदान किया। इन सभी तत्वों ने प० रामचंद्र शुक्ल के माध्यम से एक सुनिश्चित मानदण्ड में अपनी परिणति पायी। आधुनिक समीक्षा द्वारा सामाजिक दृष्टि से पुनर्निर्धारित इस नवोदित परिवेश में भक्ति कालीन साहित्य की प्रतिष्ठा और रीति काव्य की उपेक्षा स्वाभाविक हो गयी।

“समीक्षा पद्धति अन्तर मूल्या पर आधारित हो गयी, जिसमें कवि के उद्देश्य और काव्यगत उदात्तीकरण की सम्भावनाओं पर विचार किया जाता है। तुलसी इस दृष्टि से आदर्श बने। इन सभी कारणों से रीति काव्य के प्रति एक कटु प्रतिक्रिया हो उठी। सायास शिल्प की उपलब्धियों के स्थान पर वस्तुगत सौंदर्य अधिक महत्वपूर्ण हो गया। अभिव्यक्ति की सहजता और आन्दोलन की कमठ छाया में पले आदर्शवाद की भूमिका में रीतिकाव्य और नत्कालीन जीवन दृष्टि को स्थान मिलना प्रायः असम्भव हो गया।

“यद्यपि इस युग के समीक्षका की सदाशयता में सन्देह करना कठिन है। फिर भी इस युग की मनीषिता पूर्वाग्रहों से नितान्त मुक्त न रह सकी। इसका प्रमाण यह है कि तुलसी-साहित्य के अतिरिक्त न दोष भक्ति कालीन साहित्य का ही मूल्यांकन हो पाया, न सनों के दान और साहित्य को ही उपयुक्त निष्कर्ष मिल सकी और न रीति कालीन साहित्य की उपलब्धियों पर ही ध्यान गया। यहाँ तक कि आधुनिक साहित्य के नवोन्नीकरण का भी स्वागत और मूल्यांकन नहीं हो सका। एक पूर्वाग्रह प्रस्त मान दण्ड के ये ही लक्षण होते हैं। किसी ने रीतिकाव्य को साहित्यिक गौरव का नाम दिया तो किसी ने रण मन का अनगल प्रलाप बताया। सभी को शिल्पछल से आच्छादित हृदय-हीनता ही छायावाद में मिली। आरापित आदर्शवाद और नतिकता ने साहित्य के एक समूचे युग को लाञ्छित कर दिया। शुक्लजी जैसी मध्या घनानन्द और मतिराम की भावार्थक एवं कलात्मक स्त्रीतियों पर तो रीभगी रही, पर यह वैयक्तिक रूप से कुछ कवियों का चुनाव था, युग का सामूहिक प्रभाव तो ज्यों का-त्यों बना रहा।

‘छायावादी समीक्षा-पद्धति में प्रतिक्रिया की दिशा में परिवर्तन हुआ। अतीन्द्रिय सौंदर्य और साक्षणिक अभिव्यक्तियों के इस युग चरण में रीतिकालीन सौंदर्य दृष्टि को अति-ऐन्द्रिय और अभिव्यक्तियों को रुढ़ि-प्रस्त कहकर तिरस्कृत किया गया। यद्यपि छायावादी, ‘प्रस्तुत’ की रीतिकालीन ‘अप्रस्तुत’ ने पर्याप्त साज सज्जा की, पर उसकी वस्तु को सवया स्पून और ऐन्द्रिय कह कर धिक्कारा जाता रहा। प्रगतिवादी आलोचक इनमें सामतवादी मत तत्वों को ही पाता रहा।’

इस प्रकार "आधुनिक युग के प्रवेश के साथ इस काव्य के सम्बन्ध में दृष्टिकोण बदला और रीति कालीन काव्य विशेष रूप से रीतिकाव्य पर अनेक प्रकार के दोषा रोपण किये गये और यह काव्य नितांत हेय एवम पतनामुख काव्य कहा गया तथा इसके प्रति घणा और द्वेष का भाव जागृत किया गया। इसकी प्रतिक्रिया में दूसरा मत इस प्रकार का निर्मित हुआ कि वास्तव में हिन्दी का रीतिकाव्य ही उत्कृष्ट काव्य है और अय धाराओं के काव्य इसकी तुलना में निम्न कोटि के हैं। ये दोनों दृष्टिकोण राग द्वेष की भावना से युक्त कहे जा सकते हैं। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि हम रीति-काव्य का पुनर्मूल्यांकन प्रस्तुत करें और यह भी जानने का प्रयत्न करें कि इस काव्य का महत्त्व क्या है? साथ ही यह भी जानने का प्रयत्न करें कि इसमें किन तत्वों की कमी है। सामान्यतः रीति काव्य पर जो दोष लगाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं—

- (१) अश्लीलता।
- (२) समाज को प्रगति देने की अक्षमता।
- (३) आश्रयदाता की अतिशय प्रशंसा।
- (४) चमत्कार प्रियता।
- (५) रुढ़िवादिता।^१

"यहाँ संक्षेप में इन सभी पर विचार किया जाएगा। अश्लीलता की धारणा युग सापेक्ष तथा स्थल सापेक्ष है, अतः एक ही वस्तु अथवा व्यक्तिरूप एक युग में अथवा देश में अश्लील कहा जा सकता है और दूसरे युग में अथवा देश में नहीं। भक्ति युग में ही मुरदास, नन्ददास, विद्यापति, जायसी सेनापति आदि ने अनेक वचन ऐसे कहे जा रीति कालीन वचनों से अधिक अश्लील कह जा सकते हैं। आधुनिक युग में भी इस प्रकार के वचनों का अभाव नहीं है जिन्हें अश्लील कहा जा सकता है। प्रकृतिवादी और प्रगतिवादी काव्यों तक में ऐसे वचन मिलते हैं जो हेय और अश्लील हैं। एसी दृष्टि से रीतिकालीन मौखिक चित्रण के प्रसंग में और विरोध रूप से नए शिल्प सौंदर्य चित्रण में कतिपय अगावा यदि ऐसा वचन मिलता है जो आज अश्लीलता की सीमा में आता है तो उसके आधार पर समस्त काव्य को लक्षित करें यह उपयुक्त नहीं है।^२

'मानव मन के विश्लेषण और उसकी काम वृत्ति की विरल अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर रीति कालीन शृंगार का पुनर्निर्धार सम्भव हुआ गया। व्यक्तिगत और सामूहिक मन की इतनी काम छायाएँ एकत्र कहीं मिलेंगी? साथ ही, आज के बहुविध विज्ञान सौंदर्य शास्त्र की दृष्टि से रीति कालीन गल्प और सौन्दर्य की सधारणाओं का विश्लेषण सम्भव है।^३ साथ ही इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि रीति कालीन

१ डॉ० भगोरथ मिश्र के प्रबन्ध भाषण का अंग

२ डॉ० भगोरथ मिश्र के प्रबन्ध भाषण का अंग

३ डॉ० विजयपाल सिंह के अध्यायीय भाषण का अंग

काव्य का अवतरण अकस्मात् नये रूप में नहीं हुआ बल्कि वह पूर्ववर्ती परम्परा से निस्सृत है। संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश में शृंगार मुक्तकों की परम्परा चलती ही रही।" हिन्दी के आदिवालीन दौर काव्य में तथा भक्ति कालीन साहित्य में 'यूनानिक' मात्रा में इस परम्परा के दसा सहज ही किये जा सकते हैं। परम्परा के इन सभी पूर्ववर्ती मूर्तों की इकाई के रूप में स्वीकार और प्रतिष्ठित कर्के रीति-काव्य के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

'दूसरा दोष इस युग के काव्य पर लगाया जाता है कि वह (साहित्य) समाज को प्रगति की प्रेरणा नहीं देता। यह साधन भी बहुत ठीक नहीं है। जहाँ तक रीति-काव्य का प्रश्न है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि उसका प्रमुख क्षेत्र शृंगार रहा, परन्तु रीति-काव्य के अतगत भी धीरता, भक्ति और नीति से युक्त रचनाएँ मिलती हैं। रीति-काव्य के उस युग में अथ काव्य धाराएँ भी प्रवाहित थीं जिनके अतगत आध्यात्मिक तथा सौक्य जीवों की प्रेरित करने की शक्ति थी। यह नहीं कहा जा सकता कि रीति युग का काव्य जीवन और उसकी प्रगति से विमुक्त था वरन् इसके विपरीत यह सत्य है कि वह काव्य पूर्ववर्ती भक्ति युग के काव्य से अधिक लोक-जीवनाभिमुखी है। भक्ति काव्य का वास्तव में बहुत अधिक विस्तार इस युग में हुआ। सतसाहित्य के अनेक पथ इस युग में अधिक प्रचलित हुए। सुन्दरदास, रज्जब, यारी पलटू प्राणनाथ, जगजीवनदास, चरनदास, दरिया, गिदनारायण तुलसीसाहब हाथरस वाले आदि हैं। इसी प्रकार जानकाशिम शाह, नूरमोहम्मद, शेख मिसाद आदि निगूणापासना की सूफी काव्य धारा के बहुसंख्यक प्रमुख कवि इसी रीति युग में हुए। सगुण भक्ति धारा के अतगत कृष्ण भक्ति और राम भक्ति से सम्बंधित असंख्य रचनाएँ इस युग में प्राप्त होती हैं। इस युग का नीति काव्य भी कम समृद्ध नहीं है। अनेक कवियों ने जीवन के निर्देश करने वाले सुन्दर मुक्तक तथा दुराचरण पर प्रहार करने वाले हास्य व्यंग्य काव्य लिखे हैं जो सामाजिक निर्माण और प्रगति की समालन वाला काव्य है। कई लोगों ने अवाकियों द्वारा सुन्दर और मार्मिक नीति काव्य प्रस्तुत किया है। इन सब बातों का विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के काव्य में समाज को प्रगति देने की क्षमता थी।

'आश्रयदाता की अतिशय प्रशंसा करने की प्रवृत्ति भी रीतिकालीन साहित्य का एक दोष माना जाता है। यह दोष भी आशिक रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है और उस युग के लिए कला और काव्य के संरक्षण के लिए आश्रयदाता की प्रशंसा आवश्यक भी थी। उस समय यदि कविता सगीत, चित्र आदि कलाओं को राजाश्रय प्राप्त न होता तो इनका विकास तो रुक ही जाता, साथ ही ये सुरक्षित भी नहीं रह सकती थीं। अतएव थोड़ी-बहुत प्रशंसा द्वारा उस समय के कविता और कलाकारों ने राजाओं और सामन्तों से कला मक और साहित्यिक विकास का परिचायन प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त समस्त प्रशंसा नितात असत्य भी नहीं है बल्कि ही उसमें अतिशयोक्ति 'यूनानिक' मात्रा में रही है। यदि कुछ कवियों की रचनाओं में यह प्रशंसा असत्य भी रही हो तो

ऐसे कवियों की साम्या विन्ती अत्यन्त ही मह देना भी आवश्यक है। अत युगान्तर परिस्थिति के परिवर्तन में इस बात का पुनर्विचार आवश्यक है।

“रीतियुगीन काव्य में चमत्कार प्रदान करने पर भी उस हृदय कोटि का ठहराना या प्रयत्न हुआ। इसके लिए भी युगीन विनय स्थिति ही कारण रही है। इस सामान्य युग में अधिकांश कवि दरबार से संबद्ध रहे हैं। एक दरबार से दूसरे दरबार में भाइयें आना-जाना पड़ता था। अपनी रचनाएँ सुनाकर श्रोताओं के बीच उत्प्रेषित अन्य कवियों की स्पर्धा में अपने को श्रेष्ठ ठहराने की ईर्ष्या उनमें थी। अतः चमत्कार प्रियता उनमें स्वभावतः भिन्न गयी थी। यह चमत्कार प्रदान उनकी प्रतिभा का एक मांग था। इसने परिणामस्वरूप हम रीति काव्य के अन्तर्गत चमत्कारिक रचनाएँ अधिक मिलती हैं, जिनमें कला का एक चमत्कार प्राप्त होता है। यह सत्य है कि इनमें अनुभूति की अपेक्षा कलात्मक चमत्कार अधिक है, फिर भी अमिथ्यक्ति को सौष्ठव प्रदान करने का प्रयत्न इन रचनाओं में देखा जाता है। चमत्कारिक विनयना को हम दोष के रूप में नहीं देख सकते। विनय रूप से उस अलंकरण और सजावट प्रधान काल में इसे एक गुण के रूप में ही देखना चाहिए।

रूढ़िवादिता का दोष इस युग में दिखायी देता है। एक ही प्रकार के प्रसंग और विषयों पर इस युग के कवियों ने अपनी रचनाएँ लिखी हैं। ऐसी बात नहीं है कि उसमें वैविध्य नहीं हो परन्तु परिपाटीबद्धता उनमें अवश्य मिलती है जिसका मूल कारण यही था कि इस युग के कवि अपने लिए एक शुद्ध काव्य का मांग निकालना चाहते थे। अतएव परिपाटी का अनुगमन समग्र युग की विशेषता है और ध्यान से देखें तो यह रूढ़िबद्धता सभी युगों के काव्य में दिखायी देती है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर इतना स्वीकार करना पड़ता है कि इस युग में रूढ़िवादिता का प्रचलन अधिक मात्रा में दिखाई देता है चाहे उसके कई अनिवाय कारण भी क्या न रहे हों। उन कारणों की खोज नयी उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर की जा सकेगी।

इससे स्पष्ट होता है कि ‘रीतिकालीन साहित्य को नितांत हेय तथा निम्न कोटि का सिद्ध करने के लिए साधारणतः प्रमुख रूप से जो दोषारोप लगाए जाते हैं उसके कारणों में या तो पूर्व ग्रह दूषित दृष्टिकोण है अथवा युग विशेष का विशिष्ट दृष्टिकोण है। अनुसंधान में प्राप्त सामग्रियों को देखकर ज्ञात जाता है कि रीतिकालीन साहित्य का वास्तव में सही सही मूल्यांकन ही नहीं हो पाया। पुनर्मूल्यांकन तब ही संभव है जब किसी का मूल्यांकन पूर्ण हो जाता है। रीतिकालीन साहित्य का विचार करते समय कुछ ही विशिष्ट कवियों की कृतियाँ सामने रखी जाती हैं और उन्हीं के आधार पर समस्त रीतिकालीन साहित्य पर समीक्षा की जाती है। लोकमणि, सीताराम, नपुण्णु, शाहराज, जयराम, कवीद्राचाय शंकर सुकवि जैसे अनेक रीतिकालीन कवियों तथा उनकी रचनाओं का परिचय तक हिंदी साहित्य को नहीं था ऐसे अनेक अज्ञात एवं अपरिचित रीतिकालीन कवियों तथा उनके काव्य प्रथाओं को हिंदी साहित्य के इतिहास में सहृदयता से समाविष्ट कर उनका उचित अध्ययन करना चाहिए। कवि

भेद अथवा दृष्टिभेद के कारण कुछ मतभेद भले हा रह परन्तु रीतिकालीन साहित्य का इकाई के रूप में जब मूल्यांकन किया जाएगा तब तत्कालीन अद्यावधि उपलब्ध संपूर्ण साहित्य के प्रति पूणतः 'याय' होना आवश्यक है। पुनर्मूल्यांकन का अर्थ यह नहीं है कि रीतिकालीन साहित्य के समस्त दोषारोपों का विरोध कर रीतिकालीन साहित्य को सर्वश्रेष्ठ कहा जाए। परन्तु एक तटस्थ समीक्षक के रूप में यह देखना अत्यावश्यक है कि क्या उन दोषारोपों में कोई तथ्य भी है? यदि उपलब्ध प्रमाणों से हम यह सिद्ध कर सकें कि दोषारोप सही नहीं हैं तो तत्कालीन साहित्य के प्रति 'याय' होगा। साथ-ही साथ हम रीति युग के सदम में समस्त रीति-कालीन साहित्य को देखकर उसने गुण दोषों का चर्चा करनी होगी न कि वर्तमान युग के सदम में। रीतिकालीन साहित्य के अध्ययन तथा अनुसंधान की दिशाओं पर भी उस दृष्टि से विचार होना आवश्यक है।^१

“पुनर्मूल्यांकन की पद्धति विभिन्न 'आधुनिक' पद्धतियों में से एक है। यदि रीतिकालीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन किया जाए तो आधुनिकता किसी भी अर्थ में बाधित नहीं होगी। समय की गति से जो धूल का आवरण अतीत के मुन्वावरण पर पड़ जाता है पुनर्मूल्यांकन उस पाछता है। ये साहित्य रूप जो 'याय' के लिए चीखते हैं पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया से गाने हो जाते हैं। यदि हमें अपनी अतीत की उपलब्धियों का तिरस्कार नहीं करना है, यदि उन्हें सहेजना है, यदि हम परम्परा को स्वस्थ रखना है, तो पुनर्मूल्यांकन करना ही होगा।^२ हमें विश्वास है कि रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन से उसके प्रति 'याय' होगा और अनेक अज्ञात एवं महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ जाएंगे।

१ डा० दृष्टन दिवाकर के भाषण का अंग

२ डॉ० विजयपाल सिंह के अध्यक्षीय भाषण का अंग

६ | कवि कलस-कृत 'चद कवर री बात'

हिन्दी साहित्य में उपलब्ध प्रमास्यानक काव्यों में 'चद कवर री बात' का अपना विनिष्ट स्थान है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में शोधार्थक विस्तृत विवचन जब तक प्रस्तुत नहीं हुआ है। हिन्दी के प्रेमास्यानक काव्य की चर्चा के प्रसंग में दो चार स्थलों पर इस ग्रंथ की जो चर्चा हुई है वह अपर्याप्त एवं भ्रमात्मक भी है। कुछ ग्रंथों में तो इसका नामोल्लेख मात्र किया गया है। 'चद कवर री बात' की हस्तलिखित प्रतियाँ बीकानेर उदयपुर जोधपुर, भारण (गुजरात), कलकत्ता, इलाहाबाद, पूना आदि स्थानों पर प्राप्त होती हैं। विभिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठ भेद तथा मूल ग्रंथ की छान बीन का अभाव आदि से इस ग्रंथ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद के साथ साथ कुछ बातों में भ्रान्तियाँ भी रही हैं। ये बातें प्रमुखतया ग्रंथ का रचना काल, विषय-वस्तु तथा कवि के नाम के सम्बन्ध में हैं।

ग्रंथ के रचना-काल के सम्बन्ध में विभिन्न प्रतियों में मुख्यतः दो प्रकार के छंद प्राप्त होते हैं। वे छंद इस प्रकार हैं—

पनरे स चालीस में पौस मास तिय त्रयोदशी ।

गुण कीनो गुणसार नगर नाम अमरावती ॥^१

× × ×

सतरे स चालीस सम तेरस पय जठ मास ।

गुण कीनो कर चाव सु भोगी पूरण आस ॥^२

उपयुक्त छंदों में से प्रथम छंद केवल उदयपुर वाली एक ही प्रति में प्राप्त होता है। यह छंद अनेक कारणों से अशुद्ध प्रतीत होता है। छंद की मात्राएँ तथा अर्थ की दृष्टि से भी दोनों पंक्तियों के अत्याक्षर भी भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त सबत

१ 'चद कवर री बात' (हस्तलिखित प्रति), सरस्वती भंडार उदयपुर

२ 'चद कवर री बात' (हस्तलिखित प्रति), राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

१५४० में राजस्थान के इतिहास में किना भी प्रतापसिंह नामक राजा के होने का उल्लेख तक नहीं मिलता। प्रत्युत सवत् १७३२ वि० से० स० १७६२ वि० के बीच महारावत प्रतापसिंह राजत्वकाल का विवरण मिलता है।^१ दोनों छन्दों में से किसी भी सवत् और मास के साथ दिन का उल्लेख नहीं है। यदि दिन का उल्लेख होता तो पंचांग के आधार पर तुलना कर निश्चित करना बड़ा ही सरल हो जाता। फिर भी गणिहासिक सदभ, छद की मात्राएँ, अथबोध अत्याक्षरो में प्राप्त समता, अधिकांश प्रतियों में उपलब्धि आदि बातों के कारण द्वितीय छद ही शुद्ध प्रतीत होता है। यही छन्द किञ्चित् हेर फेर के साथ लगभग सभी प्रतियों में मिलता है। अधिकांश समीक्षकों ने भी इसका रचना-काल सवत् १७४० वि० ही माना है जो समीचीन ही है।

राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् प० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की बाज के प्रथम भाग में 'चद कवर री बात' के विवरण में प्रथम के विषय के सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें अमरावती नगरी के राजकुंवर और वहाँ के सेठ की पुत्री राजकुंवरी के प्रेम की कहानी है।^२ विषय का यह विवरण अत्यन्त अशुद्ध है। प्रथम का ठीक तरह से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि इसमें अमरावती नगरी का अमरसिंह राजा के पुत्र चद कुंवर तथा ब्रवावती नगरी के सेठ की पुत्री के प्रेम की कहानी है। डॉ० उदयसिंह भटनागर ने राजस्थान में हिन्दी ग्रंथों की खोज के तृतीय भाग में प० मोतीलाल मेनारिया द्वारा लिखित विवरण में सगोचन करने का प्रसन्नोप प्रयत्न किया है। परन्तु फिर भी उनमें कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने लिखा है कि चद कुंवर सेठानी से विवाह कर उन्ने घर ले आता है। प्रथम में इस विवाह के सम्बन्ध में इस प्रकार विवरण है—

अजदीन री कुंवरी चद कुंवर परणाय ।

एय गय पापक छोवरी दीना पच पठाय ॥

चद कुंवर बीनती कर सुणयो बात नरेय ।

हम कुं हसकर सीप छी, ज्यु जावा हमगेह ।

कारि सजाई गमनकी घर कुं चद कुंवार

साबत साथे पर ठिया एके सहम असवार ॥^४

उन छन्दों से स्पष्ट है कि चद कुंवर ने मन्नापुरी के राजा अजदीन की पुत्री के साथ विवाह किया था न कि सेठानी के साथ। इस प्रकार छोटी मोटी बातें और भी हैं।

रचना-काल तथा विषय-वस्तु की भाँति प्रथम के रचयिता के सम्बन्ध में भी मत-

१ राजसूताने का इतिहास—अजदीन गहलौत (१९३७ ई०), पृ० ५२४

२ राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज प्रथम भाग, (प्र० स०), पृ० २८

३ वही तृतीय भाग, प्र० स०, पृ० १६०

४ चद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति), जोधपुर।

६ | कवि कलस-कृत 'चद कवर री बात'

हिन्दी साहित्य में उपलब्ध प्रमाख्यात्मक काव्यात्मक 'चद कवर री बात' का अपना विशिष्ट स्थान है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में गोधामन विस्तृत विवचन अब तक प्रस्तुत नहीं हुआ है। हिन्दी के प्रेमपर्यायक काव्य की चर्चा के प्रसंग में दो चार स्थानों पर इस ग्रन्थ की जो खचा हुई है वह अपर्याप्त एवं अध्यात्मिक भी है। कुछ ग्रन्थों में तो 'चद कवर री बात' की हस्तलिखित प्रतियाँ बीरानेर उन्पपुर, जायपुर, भारण (गुजरात), कलकत्ता इत्यादि स्थानों पर प्राप्त होनी हैं। विभिन्न प्रतियों में प्राप्त पाठभेद तथा मूल ग्रन्थ की छान पान का अभाव आदि से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद के साथ साथ कुछ बातों में भ्रान्तियाँ भी रहती हैं। ये बातें प्रमुक्तता ग्रन्थ का रचना काल विद्वान्-वस्तु तथा कवि के नाम के सम्बन्ध में हैं।

ग्रन्थ का रचना काल के सम्बन्ध में विभिन्न प्रतियों में मुद्रण दो प्रकार के पाठ प्राप्त होत हैं। वे इस प्रकार हैं—

पनरे स चासीस म पोस मास तिस प्रयोहणी ।

गुण बीनो गुणसार मगर ताम अमरावनी ॥^१

× × ×

सनरे स चामागे तम तेरस पय जड माग ।

गुण बीनो कर चाव तं भोगी पुरण माग ॥^२

१५४० में राजस्थान के इतिहास में किसी भी प्रतापसिंह नामक राजा के होने का उल्लेख तक नहीं मिलता। प्रत्युत सवत १७३२ वि० से० स० १७६५ वि० के बीच महारावत प्रतापसिंह राजत्वकाव का विवरण मिलता है।^१ दोनों छंदों में से किसी भी सवत और मास के साथ दिन का उल्लेख नहीं है। यदि दिन का उल्लेख होता तो पचास के आधार पर तुलना कर निश्चित करना बड़ा ही सरल हो जाता। फिर भी एतिहासिक सद्ब, छंद की मात्राएँ, अथबोध अत्याश्रयों में प्राप्त समता, अधिकांश प्रतियों में उपलब्धि आदि बातों के कारण द्वितीय छंद ही शुद्ध प्रतीत होता है। यही छंद विचित हर फेर के साथ लगभग सभी प्रतियों में मिलता है। अधिकांश समीक्षकों ने भी इसका रचना-काल सवत १७४० वि० ही माना है जो समीचीन ही है।

राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान प० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थान में हिन्दी हस्तलिपित ग्रंथों की खोज के प्रथम भाग में 'चद कवर री बात' के विवरण में प्रथम विषय के सम्बन्ध में लिखा है कि इसमें अमरावती नगरी के राजकुंवर और वहाँ के सेठ की पुत्री राजकुंवरी के प्रेम की कहानी है।^२ विषय का यह विवरण अत्यंत अशुद्ध है। प्रथम का ठीक तरह से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि इसमें अमरावती नगरी के अमरसिंह राजा के पुत्र चद कुंवर तथा अमरावती नगरी के सेठ की पुत्री के प्रेम की कहानी है। डॉ० उदयसिंह भटनगर ने राजस्थान में हिन्दी ग्रंथों की खोज के तृतीय भाग में प० मोतीलाल मेनारिया द्वारा लिखित विवरण में संशोधन करने का प्रयास प्रयत्न किया है। परंतु फिर भी उनमें कुछ अशुद्धियाँ रह गयी हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने लिखा है कि चद कुंवर सेठानी से विवाह कर उसे घर ले आता है। प्रथम में इस विवाह के सम्बन्ध में इस प्रकार विवरण है—

जगदीन री कुंवरी चद कुंवर परणाय ।
 हय गय पापक छोकरी बीना पच पठाय ॥
 चद कुंवर वीनती करै सुणज्यो बात गरेस ।
 हम कुं हसकर सीय छौ, ज्यु जावा हमगेह ।
 बारि सजाई गनणकी घर कुं चद क्ष्वार
 सावत साथे पर ठिया एके सहस असवार ॥^४

इन छंदों से स्पष्ट है कि चद कुंवर ने मकापुरी के राजा अजनीन की पुत्री के साथ विवाह किया था न कि सेठानी के साथ। इस प्रकार छाटी मोठी बातें और भी हैं।

रचना-काल तथा विषय वस्तु की भांति प्रथम के रचयिता के सम्बन्ध में भी मत

१ राजभूताने का इतिहास—जगदीन गहलोत (१९३७ ई०), पृ० ५२४

२ राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज प्रथम भाग, (प्र० स०), पृ० २८

३ यही, तृतीय भाग, प्र० स०, पृ० १६०

४ चद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति), जोधपुर।

भिनता दष्टिगोचर होती है। प० मोतीलाल मनारिया^१ तथा डा० कमल कुलश्रेष्ठ^२ प्रतापसिंह को 'चंद कवर री बात' के रचयिता मानते हैं। परंतु ग्रंथ का सूत्रम अध्ययन करने पर यह कथन असत्य प्रतीत होता है। ग्रंथ की निम्नलिखित पंक्तियां विचारणीय हैं—

परतापसिंह खुमाण न, हुकुम कियो कर चाव ।

हस कवि सु ऐसे कहै, कछु यक बात सुणाय ॥

× × ×

जोधवस जुग जुग जीवो, पुणो होत परवार ।

नाम धरयो प्रताप त, या गुणको गुणसार ॥^३

इन छंदों से स्पष्ट हो जाता है कि चंद कवर री बात की रचना प्रतापसिंह खुमाण की आज्ञा से हुई। अंतिम छंद में कवि द्वारा की गयी प्रशंसा तथा आजीवचन भी इसी बात की पुष्टि करते हैं कि प्रतापसिंह ग्रंथ के रचयिता नहीं थे बल्कि गद्यकार के आश्रयदाता थे। अतः प्रतापसिंह को 'चंद कवर री बात' के रचयिता मानना तक सगत एवं समीचीन नहीं है।

डा० भगीरथ मिश्र^४, डा० हरिकान श्रीवास्तव^५, तथा डॉ० उदयसिंह भटनागर^६ ने इस ग्रंथ के रचयिता प्रतापसिंह को न मानकर हस कवि को माना है। उनके मत के मत की आधारगिला सभक्त निम्नलिखित पंक्तियां ही हैं—

परतापसिंह खुमाण न हुकुम कियो कर चाव ।

हस कवि सु ऐसे कहै कछु यक बात सुणाय ॥

सबकुं लाग सुहामणी रचि सजोग विचार ।

मुरप ही को मन हर, सब रसोयन को सार ॥^७

प्रथम छंद की द्वितीय पंक्ति में प्राप्त हस शब्द का स्थान पर कुछ प्रतियां में 'हंस' शब्द भी मिलता है। समस्त वृत्ति में हस कवि का प्रयोग नहीं मिलना कुछ प्रतियां में, कवि शब्द 'करि' के समान लिखा हुआ है। राज्यस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह में उपलब्ध 'चंद कवर री बात' की प्रति

१ राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग (प्र० सं०) पृ० २०

२ हिंदी प्रेमाख्यान काव्य—डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, (प्रथम संस्करण), पृ० १५

३ चंद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति), जोधपुर

४ हिंदी साहित्य का उदभव और विकास—रामबहोरी गुप्त तथा भगीरथ मिश्र, (प्र० सं०) पृ० ३०

५ भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान श्रीवास्तव (प्र० सं०), पृ० २६६

६ राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज तृतीय भाग (प्र० सं०) पृ० १६०

७ चंद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति) जोधपुर

में प्रथम के अन्त में रचनाकार का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है देखिए—

प्रतापसिंह सुरत सब वाचत सदा सुहाय ।

चद बात पूरो हुई, करी 'कलस कबीराय' ॥^१

बीकानेर के अभय जैन प्रयालय में सुरभित 'चद कवर री बात' की एक प्रति में, 'कसल पाठ भी मिलता है।^२ लिपिकार की असावधानी से, 'कलस' के स्थान पर, 'कसल' पाठ का लिखा जाना सहज सम्भव है। इसके अतिरिक्त, 'कसल' द्वितीय अक्षर नाम भी तो सम्भव नहीं प्रतीत होता। इस प्रथम, 'कलस' का दो बार उल्लेख हुआ। इस सदर्भ में प्रयारम्भ की उपरिनिर्दिष्ट चार पक्तियों का समुचित अर्थ इस प्रकार ही किया जा सकता है कि प्रतापसिंह खुमाण ने बड़ी प्रसन्नता से आना देते हुए कवि से हंस कर कहा कि कुछ एसी अपूर्व बात सुनाओ जो सबको सुन्दर लगे। वह सरस बात रसिकों के माथ मूल व्यक्तियों का भी मन हर सके। सन्दर्भ तथा औचित्य की दृष्टि से यही अर्थ समीचीन प्रतीत होता है। द्वितीय पक्ति में प्राप्त, 'हम' शब्द को व्यक्तिवाचक सज्ञा के रूप में ग्रहण किया जाए तो अर्थ में स्पष्टता नहीं आती। द्वितीय छंद के मदम में 'हस' शब्द का अर्थ, 'हसकर' लेना ही अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है। दूसरी बात ध्यान देने योग्य है कि प्रतिपा में 'हस' अथवा 'हंस' शब्द मिलते हैं न कि, 'हस'। हिंदी साहित्य के इतिहासों अथवा अन्य ग्रंथों में, 'हंस' नामक कवि का कोई परिचय भी प्राप्त नहीं होता। यदि कवि का नाम 'हस' होता तो ग्रंथ के अंत में 'कलस कबीराय' के स्थान पर हस कबीराय होना चाहिए था। अतः विवचन से स्पष्ट होता है कि चद कवर री बात का वास्तविक रचयिता कलस कवि ही हो सकता है न कि प्रतापसिंह अथवा हस कवि।

अब प्रश्न उठ सकता है कि यह कलस कवि कौन होगा? समकालीनत्व एवम ऐतिहासिक सन्दर्भ को देखते हुए पात होता है कि चद कवर री बात के रचयिता कलस कवि सम्भवतः महाराष्ट्र के मराठा शासक छत्रपति सम्भाजी के प्रधान मंत्री 'कवि कलस' ही थे। संक्षेप, मे कवि कलस एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उनका समय अनुमानतः मगत १६७८ वि० से सवत् १७५६ वि०^३ तक था। छत्रपति शिवाजी तथा सम्भाजी के दरबार में उन्हें सम्मान का स्थान प्राप्त था। प्रधान मंत्री के अतिरिक्त वे सम्भाजी के वाक्य गुरु भी थे।^४ कुशल राजनीतिज्ञ के साथ-साथ वे उत्कृष्ट कवि भी थे। संस्कृत तथा हिंदी भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था। उन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त हिंदी में भी प्रथम रचना की थीं। शृंगार रस में उन्हें विशेष रुचि थी। मंत्र तंत्र की विशेष सिद्धि उन्हें प्राप्त थी। राजपूता से कवि कलस

१ चद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति), जाधपुर

२ चद कवर री बात (हस्तलिखित प्रति), बीकानेर

३ उपरि प्रकृति सम्भाजी (प्र० सं०), गो० सं० सरदेसाई पृष्ठ ६६

४ निम्नवर्ष विनोद, भाग—३ (द्वि० सं०), पृष्ठ ९५२

का घनिष्ठ सम्बन्ध था। शाहजादा अकबर तथा दुर्गादास को कविकलस ही की सिफारिश से आश्रय मिला था।^१ कविकलस की मृत्यु के बाद उनके घर वाले लोगों के राजस्थान में चले जाने का उल्लेख मिलता है^२ जिससे अनुमान होता है कि राजस्थान में उनके रिश्तेदार अथवा हितैषी थे।

'चंद्र कवर री बात' का रचनाकाल सन् १७४० वि० है। ग्रंथरचना की आना देने वाले खुमाण प्रतापसिंह राजपूत थे। ग्रंथ की विषय वस्तु में शृंगार रस का प्रधानता है। इस प्रकार कविकलस के जीवन में प्राप्त तथ्या से यह स्पष्ट होता है कि, 'चंद्र कवर री बात' के रचयिता कवि कलस महाराष्ट्र के मराठा राजा छत्रपति सम्भाजी के काय गुरु तथा प्रधान मंत्री ही थे।

आजतो (हस्तलिखित प्रति), १२/२७ २८

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग—२, स० १९७८, पृष्ठ ६८

१० | कवींद्र सरस्वती और कवींद्र परमानंद

‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’^१ में श्रीमान् तामसकर जी का ‘कवींद्राचार्य सरस्वती’ नामक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मुगल सम्राट ग़ाहज़हाँ के आश्रित कवींद्राचार्य सरस्वती और छत्रपति शिवाजी महाराज के ससृजन चरित्र ‘गिवभारत’ के रचयिता कवींद्र परमानंद दोनों अभिन्न व्यक्ति थे। अनुसंधान कार्य के सिलसिले में मुझे कवींद्राचार्य सरस्वती तथा कवींद्र परमानंद के चरित्रों एवं ग्रंथों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उक्त दोनों कवियों के सम्बन्ध में उपलब्ध समस्त अन्तर्बाह्य सामग्रियों का परिशीलन करने से पता हुआ है कि कवींद्राचार्य सरस्वती और कवींद्र परमानंद दोनों एक व्यक्ति नहीं, अपितु भिन्न व्यक्ति हैं।

कवींद्राचार्य सरस्वती और कवींद्र परमानंद इन दोनों का अभिन्नत्व सिद्ध करते समय अपने मन की पुष्टि में श्रीमान् तामसकर जी ने जो बातें लिखी हैं उनमें से लगभग सभी कल्पना एवं अनुमान पर आधारित हैं। कवींद्र सरस्वती बड़े विद्वान् थे तथा बनारस के रहने वाले थे। परमानंद भी ‘कवींद्र’ थे तथा बनारस के रहने वाले बहुत बड़े विद्वान् थे। दोनों के सम्बन्ध में प्राप्त इतनी सी सामान्य बातों में समता पाकर श्रीमान् तामसकर जी ने उन दोनों को अभिन्न व्यक्ति ठहराने का प्रयास किया है। उन्होंने प्रारम्भ में ही उन दोनों के अभिन्न होने की बात स्वीकार की है और उसी दृष्टिकोण से हर बात पर जिना विरोध छानबीन किए अनुमान के आधार पर ही चर्चा की है और निष्कर्ष भी निकाले हैं।

कवींद्राचार्य सरस्वतीवृत्त ‘कवींद्र कल्पद्रुम’ नामक संस्कृत ग्रन्थ में कवींद्राचार्य के जन्मस्थान के विषय में स्थूल परिचय प्राप्त होता है—

गोदातीरे प्रमोदावलि बलितमे जन्ममाक पुण्यभूमा
वृध्वेदी वेदवेदी जगति विजयते श्री कवींद्र द्विजेन्द्र ॥^२

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी आवण-आश्विन, स० २००५ वष ५३, अंक २
२ इंडिया आक्सिडेंटल, भा० ७, न० ३९४७

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवीद्राचाय का जन्म महाराष्ट्रान्तर्गत गोदावरी नदी के तीरस्थ किसी पुण्यक्षेत्र में हुआ था। यह पुण्यक्षेत्र का स्थान या तो नासिक हो सकता है या प्रतिष्ठान (पठण)। परन्तु श्री तामसकर जी ने यह स्थान निधिवास (नवासे) मान लिया है, क्योंकि 'शिवभारत' के रचयिता का निवास-स्थान निधिवास था। निधिवास को गोदावरी के पुण्यक्षेत्र के रूप में स्वीकार करते समय उन्होंने भौगोलिक तथा ऐतिहासिक सूचनाओं की उपेक्षा-सी की है। वास्तव में निधिवास प्रवरा नदी के तीर पर है न कि गोदावरी नदी के।^१ और उस समय निधिवास की प्रसिद्धि भी पुण्यक्षेत्र के रूप में वसी नहीं जाती नासिक अथवा प्रतिष्ठान की थी। अतः निधिवास को गोदावरी के तीरस्थ पुण्यभूमि मानकर उसे कवीद्राचाय की जन्म भूमि ठहराना कौरी कल्पना मात्र है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवीद्राचाय सरस्वती का जन्मस्थान गोदावरी के तीरस्थपुण्यक्षेत्र नासिक अथवा प्रतिष्ठान (पठण) था और कवीद्र परमानन्द का जन्मस्थान प्रवरा नदी के तीरस्थ निधिवास नामक ग्राम था। अतः यह निश्चित हो जाता है कि दोनों के जन्मस्थान भिन्न थे।

यह सत्य है कि दोनों विद्वान् थे, दोनों को 'कवीद्र' उपाधि प्राप्त थी परन्तु केवल इतनी-सी बात के आधार पर दोनों व्यक्तियों को एक ठहराना तब सङ्गत प्रतीत नहीं होता। किसी भी विद्वान् तथा श्रेष्ठ कवि को कवीद्र उपाधि देने की परम्परा बहुत प्राचीन है। परमानन्द के नाती गोविन्द कवि को भी 'कवीद्र' की उपाधि प्राप्त थी।^२ इसी प्रकार कालिदास त्रिवेदी के पुत्र उदयनाथ भी 'कवीद्र' नाम से प्रसिद्ध थे।^३ इस भाँति 'कवीद्र' उपाधिधारी कई संस्कृत तथा हिंदी कवियों का नाम गिना जा सकते हैं। यह स्पष्ट ही है कि 'कवीद्र' उपाधि उन्हें इसीलिए मिली होगी कि वे सभी अच्छे विद्वान् तथा श्रेष्ठ कवि होंगे। अतः केवल 'कवीद्र' की उपाधि तथा विद्वत्ता में साम्य होने से कवीद्र सरस्वती और कवीद्र परमानन्द को अभिन्न ठहराना समीचीन नहीं होगा। अब रही बात दोनों के वनारस निवास की। परन्तु यह भी कोई महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उस समय काशी के विद्याकेन्द्र होने से उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए भारतवर्ष के लिए समस्त सुदूर प्रांतों से विद्वज्जन काशी में आते ही रहते थे। इसलिए यद्यपि उन दोनों के काशी निवास का उल्लेख मिलता है तो भी उससे उनके अभिन्नत्व सिद्ध होने में कोई सहायता नहीं मिलती। 'कवीद्र चन्द्रोदय' में प्राप्त एक छंद के द्वारा कवीद्राचाय सरस्वती के सयास पूव नाम का अस्पष्ट-सा संकेत प्राप्त होता है—

१ महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—डा० श्रीधर व्यक्तेश केतकर (१९२५ ई०), विभाग १७, पृ० ३९३

२ मराठा रियासत, भा० ४, गो० सं० सरदसाई पृ० १६४

३ दि माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान—डा० प्रियसन, कवि सत्या ३३४

भट्टो नारायण साक्षात् पुरासोच्छ्रुत्तुर शिव ।
तथैवाप्रस्वय कृष्ण कवीद्रस्वामिदण्डक ॥^१

श्रीमान तामसकर जी ने इसका अर्थ देने हुए लिखा है—'नारायण भट्ट ही कवीद्र थे जो सयासी हुए। वे गकर के समान उपनारी थे और सब का उपनार करन थे। अब वे कृष्ण के समान सबको वेदान्त सिखाते हैं। उपयुक्त श्लोक का अर्थ ऐसा ही हो सकता है दूसरा नहीं। ऐसा न होने पर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वे पहले 'गकर शिव' थे, बाद में कृष्ण हुए। एक ही जीवन में एक आश्रम के न तो दो नाम हा सकते हैं और न दो अवतारों की कल्पना की जा सकती है। शिव अथवा उपनारी गकर और कृष्ण अर्थात् वेदान्त की गिना देने वाले कृष्ण ही अभिप्रेत हो सकते हैं।' अबय की दृष्टि से विचार करने पर पात होता है कि श्रीमान तामसकरजी द्वारा किया हुआ यह अर्थ योग्य नहीं है। वास्तव में इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यही हो सकता है कि इसके पूर्व जिस प्रकार नारायण भट्ट^२ साक्षात् शिव के समान कन्याणकारी थे उसी प्रकार यहाँ (तथैवा) ये कवीद्र स्वामी सयासी हाकर भी कृष्ण के समान थे। अर्थात् सयासी होकर भी तपश्चर्याय कही एकान्त म न जाकर इहाने अपना जीवन कृष्ण के समान सामाजिक काय के लिए व्यतीत किया था। इस छंद के पूर्व के छन्दों में भी कवाद्राचाय सरस्वती की तुलना अनेक महान् व्यक्तियों से की गई है। डा० राघवन् ने^३ इसी श्लोक के आधार पर यह अनुमान किया है कि कवाद्राचाय का वास्तविक मूत्र नाम या तो कृष्ण होगा या सयासाश्रम का कोई ऐसा नाम होगा जिसका मुख्य अंग 'कृष्ण' होगा। डा० राघवन के इस कथन से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि तामसकर जी द्वारा लिखित अर्थ ठीक नहीं है। अतः यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नारायण भट्ट कवीद्राचाय का मूल नाम नहीं था।

श्रीमान तामसकरजी न अपने लेख में निष्कण रूप में यह लिखा है कि 'हमारा ऐसा मत है कि कवीद्राचाय का मूल नाम नारायण था, पिता का नाम गोविन्द था,

- १ कवीद्र चन्द्रोदय—सम्पादक शर्मा और पाठकर, छंद सख्या १२३
- २ नारायण भट्ट नामक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण का समय सन् १५१३ ई० से १५८० ई० तक था। इहान काशी में विश्वेश्वर मन्दिर बनवाया था। सम्पूर्ण भारतवर्ष के विद्वान इहाँ आदर-सम्मान दते थे। विद्वत्ता एवं दयालुता के कारण इहाँ जगत गुरु की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये अत्यन्त उपकारी व्यक्ति थे। इनके शिष्यों में ब्रह्ममन्त्र सरस्वती और नारायण सरस्वती प्रसिद्ध हैं। (भारतवर्षीय मध्ययुगीन चरित्रकीर्ण सिद्धेश्वर गार्गी चिन्ताम, सन् १९३७ ई०, पृ ४८९-४९०)
- ३ 'Kavindracharya Saraswati' Acarya Pushpanjali (D R. Bandarkar, Com Vol) Page 160, Dr Raghavan bases his argument on stanza from Kavindre Chandrodaya No 123

सयासाश्रम का नाम परमानंद था और इहोने ही शिवभारत नामक शिवाजी का चरित्र सस्कृत भाषा में लिखा।^१ यह तो स्पष्ट हो चुका है कि कवीद्राचाय सरस्वती का मूल नाम नारायण भट्ट न था। अब रहा प्रश्न पिता के तथा सयासाश्रम के नामा का। उन्होंने अपने निष्कण रूप में अभिव्यक्त मत की पुष्टि में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है। कवीद्राचाय के किसी ग्रंथ में अथवा तत्कालीन पंडिता तथा कविया द्वारा रचित उनके लिए अभिनंदन ग्रंथों में भी इस बात का उल्लेख तक नहीं मिलता कि कवीद्र सरस्वती के पिता का नाम गोविंद था और सयासाश्रम का नाम परमानंद था।

कवीद्राचाय सरस्वती कृत कवीद्र कल्पलता नामक हिन्दी ग्रंथ में कवि ने स्वयं अपना परिचय देते हुए स्पष्ट लिखा है—

पहले गोदातीर निवासी ।
पाछ आइ बसे हूँ काशी ॥
सब विषयनि ते भये उदास ।
बालदश मे लयो सयास ॥^२

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवीद्राचाय सरस्वती को जीवन की प्रारम्भावस्था ही में विरक्ति हुई थी जिसके फलस्वरूप उन्होंने सयास ग्रहण किया। यदि श्रीमान् तामसकरजी की बात मान ली जाय तो जीवन की प्रारम्भावस्था में सयासाश्रम का 'परमानंद' नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई होगी। सयासी व्यक्ति सयास ग्रहण करने के पश्चात् केवल उसी नाम का प्रयोग करते हैं जो नाम सयासाश्रम में स्वीकार किया जाता है। यदि परमानंद कवीद्राचाय सरस्वती का सयासाश्रम का नाम था तो उम नाम के स्थान पर उन्होंने परम्परा के विरुद्ध कवीद्राचाय सरस्वती नाम को ही क्यों ग्रहण किया? कवीद्राचाय के समस्त ग्रंथों में कहीं भी तो 'परमानंद' नाम का उल्लेख होना चाहिए था परन्तु वह भी नहीं मिलता।

काशी प्रयाग जैसे हिंदू तीर्थ क्षेत्रों को शाहजहा द्वारा वरमुक्त करानेवाले कवीद्राचाय सरस्वती के वाय से प्रभावित होकर समकालीन दिग्गज पंडिता एवं कवियों ने सस्कृत, मराठी और हिंदी में जो प्रशस्ति काव्य लिखे हैं उन में कवीद्राचाय सरस्वती के मूल नाम से लेकर सभी उपाधियों का परिचय लिया गया है परन्तु उम

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी श्रावण आश्विन स० २००५, पृष्ठ ५३, अङ्क २

२ कवीद्र कल्पलता (हस्तलिखित प्रति), भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना

३ 'कवीद्र चन्द्रोदय' में सस्कृत और मराठी के प्रशस्ति काव्य हैं जो 'गर्मा तथा पाटकर के सम्पादन में ओरिएण्टल बुक एजेंसी पूना से सन १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ है। 'कवीद्र चन्द्रिका' हिंदी प्रशस्तिकव्य है जो अप्रकाशित है और इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर में प्राप्त है।

परमानंद' नाम का कहीं भी उल्लेख तक नहीं है। जन कवींद्राचार्य सरस्वती का 'यामाश्रम' का नाम 'परमानंद' मानना काल्पनिक एवं निराधार ही है। नृसिंह सरस्वती, नारायण सरस्वती, माधव सरस्वती, दामोदर सरस्वती आदि श्रेष्ठ तथा वेदशास्त्रज्ञ सयासियों के नाम देखकर अनुमान होता है कि कवींद्राचार्य सरस्वती नाम उन्होंने सयास दीक्षा के समय लिया होगा और परम्परा के अनुसार इसी नाम से वे सिद्ध हुए। कवींद्राचार्य सरस्वती स्वयं वेदशास्त्र के ज्ञाता और सयामी थे और उन्होंने शाहजहा के दरबार में 'ऋग्वेद की' यास्या सुनाई थी।^१

इसके अनिश्चित कवींद्राचार्य सरस्वती और कवींद्र परमानंद के अभिन्न न होने के कई प्रमाण दिए जा सकते हैं। कवींद्र सरस्वती का सस्कृत तथा हिंदी पर समान अधिकार था। उन्होंने अनेक सम्वृत ग्रंथों के साथ 'कवींद्र कल्पलता', 'योगवासिष्ठसार' आदि हिंदी ग्रंथों का भी प्रणयन किया है। कवींद्र परमानंद के 'शिवभारत' तथा 'परमानंदवाच' (अशावनरण) नामक दो सस्कृत ग्रंथ ही मिलते हैं। उनके द्वारा रचित कोई हिंदी ग्रंथ अब तक न प्रकाश में आया है न इस बात का कहीं उल्लेख ही पाया जाता है। दोनों के ग्रंथों में प्राप्त पुष्पिकाएँ भी भिन्न हैं। 'कल्पलता' में कवींद्राचार्य सरस्वती ने लिखा है—

इतिश्री सवविद्यानिधान कवींद्राचार्य सरस्वती विरचितायां
कवींद्र कल्पलतायाम साहिजहा विषयक भाषा कवित्वामि ॥^२

जहाँगीर की प्रशंसा में लिखित इनके 'जगद्विजय छंद', नामक सस्कृत ग्रंथ में इस प्रकार पुष्पिका मिलती है—

श्री सव विद्यानिधान कवींद्राचार्य सरस्वतीना
लघुजगद्विजय छंद पुस्तकम् । शुभमस्तु ॥^३

कवींद्र परमानंद की 'शिवभारत' में प्राप्त पुष्पिका इससे सवया भिन्न है—

इत्यनुपुराणे सूयवश कवींद्रपरमानंद प्रकाशिताया
गतसाहस्र्या सहिता या कुमार प्रभवो नाम प्रथमोऽध्याय ॥^४

उपयुक्त पुष्पिकाया में स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की शक्तियों, उपाधियों तथा नामों में भिन्नता है दोनों को पढ़कर निश्चय हो जाता है कि दोनों दो भिन्न व्यक्ति थे।

- १ हिंदी साहित्य का बहूत इतिहास, पृष्ठभाग—सम्पादन डा० नगेंद्र, पृ० ५
- २ कवींद्र कल्पलता (हस्तलिखित प्रति), माण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
- ३ Jagatvijaya Chhandas by Kavindraacharya Saraswati Editor Dr C Kunhan Raja Head of the Dept of Sanskrit, University of Madras 1945 A D
- ४ शिवभारत—सम्पाक स० म० दिवेकर (शके १८४९), पृ० १२

कवीद्राघाय सरस्वती का अभिर्वाग काग जटोतीर तथा साहूकही व शिन्नी
 मन्दार में इन्गीत हुआ था। सम्भवतः सन् १६२२ ई० में सन् १६२८ ई० तक
 मगल साहूकही की प्रवृत्ति तक ने मुगल दरबार में ही था। 'शिवभारत' में परमा
 नद ने गिवात्री के जीवन की प्रशंसा का इलाका विस्तार किया है कि पढ़कर ज्ञात
 जाता है कि परमानन्द सरस्वती की गिवात्री के सम्बन्ध में बहुत काल तक रह चुके हैं।
 'शिवभारत' में परमानन्द ने विवरण का बगल सूत्रमा से किया है। वाच्यवस्था
 में मकर गिवात्री के चरित्र का बगल उदाहरण किया गया है। उन्होंने कई स्थानों पर
 मुक्त में सम्मिलित योजनाओं की प्रशंसा भी गिवात्री है। स्पष्ट काल तथा घटनाओं
 का इलाका सूत्र बगल उदाहरण के लिए कृते सम्भव है जिसने अपने जीवन का
 अभिर्वाग काल मुगल दरबार में बिताया। इनके अनिर्वाग दोनों की बगल दली
 में महान् अन्तर दृष्टिगोचर होता है। परमानन्द द्वारा रचित 'शिवभारत' में जहाँ
 स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक घटनाओं का सूत्र बगल पाया जाता है, वहाँ कवीद्राघाय
 के प्रयोगों में इस प्रवृत्ति का अभाव गिवात्री देता है। जहाँ परमानन्द की दली
 आरम्भनिष्ठ (विषयीगत) है वहाँ कवीद्राघाय सरस्वती की दली वस्तुनिष्ठ (विषय
 गत) है। कवीद्राघाय का ध्रुपद के प्रति विशेष आकर्षण था। परमानन्द के संबंध
 में यह बात नहीं पायी जाती। दोनों का वाच्यविषय तथा नामकरण की पद्धति में
 भी भिन्नता है। जहाँ परमानन्द के विषय ऐतिहासिक हैं, वहाँ कवीद्राघाय सरस्वती
 के विषय ऐतिहासिक, पौराणिक और दार्शनिक हैं। परमानन्द ने अपने प्रयोगों के नाम
 'शिवभारत', 'अभावतरण' रखे हैं तो कवीद्राघाय सरस्वती ने अपने प्रयोगों के नाम
 'कवीद्राघाय कल्पलता', 'कवीद्राघाय कल्पद्रुम', जगद्विजय छन्द 'योगवासिष्ठसार आदि'
 रखे हैं। कवीद्राघाय सरस्वती का कविताकाल सन १६२२ से १६६० तक है और
 'शिवभारत' के रचयिता परमानन्द का कविताकाल सन १६६४ के पश्चात है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सब विद्यानिधान कवीद्राघाय सरस्वती
 और कवीद्राघाय परमानन्द इन दोनों में कवीद्राघाय उपाधि के अतिरिक्त ऐसा कोई साम्य
 नहीं मिलता जिससे दोनों की अभिन्नता सिद्ध हो सके। अतः यह निश्चय हो जाता
 है कि कवीद्राघाय सरस्वती और कवीद्राघाय परमानन्द एक व्यक्ति के दो नाम नहीं थे
 अतः दोनों भिन्न व्यक्ति थे।

११ | हिन्दी साहित्य का प्रथम अभि- नदन ग्रन्थ—'कवीन्द्र-चन्द्रिका'

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में भारत में जो श्रेष्ठ एवं दिग्गज आचार्य बरि हुए उनमें कवीद्राचार्य सरस्वती का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे अखिल भारतीय कीर्ति के महाराष्ट्रीय विद्वान् थें। मुगल सम्राट ग़ाहजहाँ के दरबार में इन्हें विशेष गौरव प्राप्त हुआ था। संस्कृत तथा हिंदी भाषाओं में उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इतने बड़े प्रतिभा संपन्न तथा प्रसिद्ध आचार्य का परिचय बहुत कम लोगों को है। उनके बहुत से ग्रन्थ अप्राप्य होने से समस्त विद्वानों ने भी कवीद्राचार्य सरस्वती के संबंध में अधिक नहीं लिखा। हिंदी के प्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में एक हिंदी रचनाकार के नाते इनका उल्लेख तक नहीं मिलता। शुक्ल जी के परवर्ती हिंदी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार इनके संबंध में मौन ही दिखायी देते हैं। ठाकुर शिवसिंह,^१ डा० प्रियदास^२ तथा मिश्रबघुआ ने^३ अपने ग्रन्थों में कवीद्राचार्य सरस्वती के संबंध में कुछ सूचनाएँ अवश्य दी हैं परन्तु वे अत्यंत संक्षिप्त एवं अपूर्ण हैं। अतएव कवीद्राचार्य जस प्रकाश पंडित, श्रेष्ठ साहित्यकार तथा प्रसिद्ध सांस्कृतिक नेता के संबंध में विशेष अनुसंधान कर उनके जीवन चरित्र, असाधारण व्यक्तित्व एवं काव्य कृतियों पर यथावत प्रकाश डालना अत्यावश्यक है।

मुगल सम्राट ग़ाहजहाँ के शासन-काल में हिंदुओं के तीर्थ-स्थानों पर विनाशपूर्ण काशी और प्रयाग में यात्रियों से अमानुषिक रीति से यात्रा कर बमूल किया जाता था। हिंदू जनता के लिए यह बात अत्यंत घणास्पद एवं अपमानजनक थी। मुसलमान शासकों द्वारा लगाय गया इन अत्यायमों तक एवं बर्बरक यात्रा-कर को हटाने का

१ शिवसिंह सरोज—पवित्रपत्रा ७६

२ दि माडन वर्नाइयुलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान, पवित्रपत्रा १५१

३ मिश्रबघु विनोद द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण), पृ० ४५

लिए अनेक लोग ने प्रयत्न किये। अनेक बार प्राथनापत्र भजे गये परंतु यात्रा कर न हट सका। अन्त में काशी के विद्वानों एवं पंडितों ने शाहजहा के पास एक प्रतिनिधि भेज दिया। उस समय काशी में पूर्णेंद्र सरस्वती ब्रह्मेंद्र सरस्वती, अप्पय दीक्षित विश्वनाथ पचानन, भट्टाचार्य जैसे प्रसिद्ध पंडितों के होते हुए भी इस प्रतिनिधि भेजने का नेतृत्व कवीद्राचार्य सरस्वती को ही दिया गया। कवीद्राचार्य का दिल्ली दरबार से संपर्क प्रभावी व्यक्तित्व मोहित करने वाला वक्तृत्व मधुर भाषिता, संस्कृत तथा हिंदी भाषाओं पर प्रभुत्व तथा हिंदू धर्म के प्रति उनकी असीम श्रद्धा आदि गुण विशेष से ही काशीस्थ पंडितों ने कवीद्राचार्य सरस्वती को प्रतिनिधि भेजने के नेता के रूप में चुना था।

नियोजित कार्यक्रम के अनुसार प्रतिनिधि भेजने को लेकर कवीद्राचार्य सरस्वती आगरे के किले में बादशाह शाहजहा के दरबार 'दीवान ए आम' में उपस्थित हुए। उस समय दरबार में इराक, इरान, बलख, बंदकसान आदि देशों के राजदूत भी उपस्थित थे।^१ कवीद्राचार्य सरस्वती ने अपने मुग्धकारी वक्तृत्व से यात्रा कर से पीड़ित हिंदू जनता की दुखगाथा का वर्णन ऐसे प्रभावकारी एवं कर्णापूण शब्दों में किया कि उसे सुनकर दरबार के विदेशी राजदूत तो विस्मयचकित हुए ही और प्रत्यक्ष शाहजहा तथा दाराशिकोह की आंखों में भी आंसू भर आये। कवीद्राचार्य जैसे प्रसिद्ध विद्वान के मुख से हिंदू यात्रियों पर किये जाने वाले जत्याचार अत्याचार आदि का वर्णन सुनकर शाहजहा तथा दाराशिकोह दोनों के हृदय में दया उत्पन्न हुई और परिणाम स्वरूप उन्होंने तत्काल यात्रा कर रद्द किये जाने की घोषणा की और प्रतिनिधि भेजने के नेता कवीद्राचार्य सरस्वती का विशेष सम्मान किया। कवीद्राचार्य की वक्तृत्व शाली, बुद्धिमत्ता विद्या की सभी शाखाओं पर उनका अधिकार एवं अलौकिक व्यक्तित्व आदि बातों से प्रभावित होकर शाहजहाँ ने उन्हें श्री सवविद्यानिधान पदवी से विभूषित किया। इसके साथ ही उन्हें दो सहस्र रूपयों की वार्षिक वृत्ति भी दे दी। इसी समय से कवीद्राचार्य का शाहजहा के दरबार में प्रवेश हुआ। दाराशिकोह ने तो कवीद्राचार्य को अपना गुरु ही मान लिया था।

यह घटना भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। समस्त हिंदू जनता इस विषय से हर्षोत्तम हो उठी। जिस यात्रा कर को हटाने में बड़े बड़े राजा उमराव भी असमर्थ हुए प्रत्यक्ष काशीपति भी असमर्थ रहे उस अत्यायमूलक एवं अपमानित यात्रा-कर को कवीद्राचार्य सरस्वती ने बुद्धि बत से मुक्त किया। यह देवकी विद्वज्जगत में जतीव प्रसन्नता हुई। कवीद्राचार्य सरस्वती के प्रति तत्कालीन भारत के समस्त विद्वानों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हुए उनका अभिनंदन किया जा कवीद्र चंद्रोदय तथा कवीद्र चंद्रिका नामक ग्रंथों के रूप में उपलब्ध है। कवीद्र चंद्रोदय में मुख्यतः संस्कृत श्लोक ही हैं। उसमें मराठी श्लोक भी मिलते हैं परंतु

अत्यन्त मात्रा में। 'कवीन्द्र चंद्रिका' में केवल हिंदी पद्यों का ही संग्रह है। 'कवीन्द्र चंद्रोदय' तो प्रकाशित हुआ है परंतु हिंदी अभिनदन ग्रन्थ 'कवीन्द्र चंद्रिका' अब तक अप्रकाशित ही रहा। इसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति बीकानेर में सुरक्षित है।

'कवीन्द्र चंद्रिका' में प्राप्त अभिनदन पदों के रचयिताओं की संख्या चालीस के आसपास है, जिनमें से बत्तीस 'यक्षियों' के नाम मिलते हैं। शेष अज्ञात कवियों के लिए 'कस्यापि' कह दिया गया है। अभिनदन करने वाले व्यक्ति तत्कालीन प्रसिद्ध एवं दिग्गज पंडित थे। पात आचार्यों तथा कवियों के नाम इस प्रकार हैं—

१ सुखदेव कवि २ नदलाल कवि, ३ भीष कवि, ४ पंडितराज,
५ रामचंद्र कवि ६ कविराज ७ धर्मेश्वर ८ रघुनाथ कवि, ९ हरिराम,
१० विद्वभर मयिल ११ शंकर उपाध्याय, १२ भैरव कवि १३ भीतापति
त्रिपाठी १४ मगद कवि, १५ गोपाल त्रिपाठी, १६ विश्वनाथ, १७ जीवन कवि
१८ घनश्याम, १९ ब्रजभूपत कवि २० लच्छीराम, २१ चिनामणि, २२ देवराम,
२३ कुलमणि, २४ त्वरित कविराज, २५ गाविंद भट्ट, २६ जयराम कवि, २७
बन्नाधर २८ गोपीनाथ, २९ रामकवि, ३० यादवराय, ३१ जगतराय तथा अय
नौ जनाम कवि।

'कवीन्द्र चंद्रिका' वास्तव में कवीन्द्राचार्य की कीर्ति चंद्रिका ही है। इसमें कवीन्द्राचार्य सरस्वती के 'यक्षित्व' के विभिन्न पहलुओं के सहजता से दर्शन हो जाते हैं। 'कवीन्द्र चंद्रिका' के निम्नलिखित छंदों में हिंदुआ पर लगाये गये यात्रा कर की भयकरता, उसका हटान में इसके पूर्व किये गये प्रयत्न, बुद्धिबल से इस कठिन कार्य में कवीन्द्र द्वारा प्राप्त सफलता आदि का वर्णन है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती के प्रति जनता की भावना विशेष दर्शनीय है—

(१) ऐसो महाकार मारी भयानक
साहिजहान प्रयाग गहो है ॥
चक्रिको चक्र भिसूली को शूल
सुहायतें ब्रज को ब्रज ठहो है ॥
सारसुती कवीन्द्र मुनींद्र उर्वेद्र
मनों अवतार लहो है ॥
मेदि दयो कर दूरि भयो डर
भूपर ये जसु फलि रह्यो है ॥

(२) चारो आश्रम श्रम करिक अनेक थक
तौह साहिजहान जू के मन में न आयो है ॥
अपबल, तपबल बुद्धिबल, विद्याबल,
जानि परकाज दरवार कह धायो है ॥
कहै सुखदेव सुरलोक नरनामलोक
जगत विदित पुम पुज असु पायो है ॥

लिए अनेक लोगो ने प्रयत्न किये। अनेक बार प्राध्यापक भजे गये परन्तु यात्रा-कर न हट गया। अन्त में काशी के विद्वानों एव पंडितों ने शाहजहाँ के पास एक प्रतिनिधि भेजा। उस समय काशी में पूर्णेंद्र सरस्वती, ब्रह्मेंद्र सरस्वती, अप्पय दीक्षित विश्वनाथ पंचानन, भट्टाचार्य जैसे प्रसिद्ध पंडितों के होने हुए भी इस प्रतिनिधि भेजने का नेतृत्व कवीद्राचार्य सरस्वती को ही दिया गया। कवीद्राचार्य का दिल्ली दरबार से संपर्क प्रभावी व्यक्तित्व, मोहिन करने वाला बनृत्व मधुर भाषिता, संस्कृत तथा हिंदी भाषाओं पर प्रभुत्व तथा हिंदू धर्म के प्रति उनकी असीम श्रद्धा आदि गुण विशेष से ही काशीस्थ पंडितों ने कवीद्राचार्य सरस्वती को प्रतिनिधि मन्त्र के नेता के रूप में चुना था।

नियोजित कायस्थ के अनुसार प्रतिनिधि मंडल का लकर कवीद्राचार्य सरस्वती आगरे के किले में बादशाह शाहजहाँ के दरबार 'दोबान ए-आम' में उपस्थित हुए। उस समय दरबार में इराक, इरान, यलग, बदख्शान आदि देशों के राजदूत भी उपस्थित थे। कवीद्राचार्य सरस्वती ने अपने मुख्तारी बनृत्व से यात्रा कर से पीड़ित हिंदू जनता की दुःखगाथा का वर्णन ऐसे प्रभावकारी एवं करुणापूर्ण शब्दों में किया कि उसे सुनकर दरबार के विदेशी राजदूत तो त्रिस्मयचकित हुए ही और प्रत्यक्ष शाहजहाँ तथा दाराशिकोह को आँखों में भी आँसू भर आये। कवीद्राचार्य जैसे प्रसिद्ध विद्वान के मुख से हिंदू यात्रियों पर किये जाने वाले अत्याचार अत्याय आदि का करुण वर्णन सुनकर शाहजहाँ तथा दाराशिकोह दोनों के हृदय में दया उत्पन्न हुई और परिणाम स्वरूप उन्होंने तत्काल यात्रा-कर रद्द किये जाने की घोषणा की और प्रतिनिधि मंडल के नेता कवीद्राचार्य सरस्वती का विशेष सम्मान किया। कवीद्राचार्य की वक्तव्य शैली, बुद्धिमत्ता, विद्या की सभी शाखाओं पर उनका अधिकार एवं अलौकिक व्यक्तित्व आदि बातों से प्रभावित होकर शाहजहाँ ने उन्हें श्री सवविद्यानिधान पदवी से विभूषित किया। इसके साथ ही उन्हें दो सहस्र रूपयों की वार्षिक वृत्ति भी दे दी। इसी समय से कवीद्राचार्य का शाहजहाँ के दरबार में प्रवेश हुआ। दाराशिकोह ने तो कवीद्राचार्य को अपना गुरु ही मान लिया था।

यह घटना भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। संभवतः हिंदू जनता इस विषय से हर्षोत्फुल्ल हो उठी। जिस यात्रा कर को हटाने में बड़े बड़े राजा उमराव भी असफल हुए प्रथम काशीपति भी असमर्थ रहे उस अत्यायमूलक एवं अपमानित यात्रा-कर को कवीद्राचार्य सरस्वती ने बुद्धि बल से मुक्त किया। यह देखकर विद्वज्जगत में अताव प्रसन्नता हुई। कवीद्राचार्य सरस्वती के प्रति तत्कालीन भारत के समस्त विद्वानों ने अपनी भावनाओं का व्यक्त करत हुए उनका अभिनंदन किया जो कवीद्र चंद्रोदय तथा कवीद्र चंद्रिका नामक ग्रंथों के रूप में उपलब्ध है। कवीद्र चंद्रोदय में मुख्यतः संस्कृत श्लोक ही हैं। उसमें मराठी श्लोक भी मिलते हैं परन्तु

अत्यल्प मात्रा में। 'कवीन्द्र चंद्रिका' में केवल हिंदी पद्यों का ही संप्रह है। 'कवीन्द्र चंद्रोदय' तो प्रकाशित हुआ है परंतु हिंदी अभिनदन ग्रन्थ 'कवीन्द्र चंद्रिका' अब तक अप्रकाशित ही रहा। इसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति श्रीकानेर में सुरक्षित है।

'कवीन्द्र चंद्रिका' में प्राप्त अभिनदन पदा के रचयिताओं की संख्या चाबीस के आसपास है जिनमें से बत्तीस 'यकितिया के नाम मिलते हैं। शेष अज्ञात कवियों के लिए 'कस्यापि' कह दिया गया है। अभिनदन करने वाले व्यक्ति तत्त्वानीन प्रसिद्ध एवं दिग्गज पंडित थे। ज्ञात आचार्यों तथा कवियों के नाम इस प्रकार हैं—

१ सुखदेव कवि, २ नदलाल कवि, ३ भीष कवि, ४ पंडितराज, ५ रामचंद्र कवि ६ कविराज, ७ धर्मदेवर, ८ रघुनाथ कवि, ९ हरिराम, १० विश्वभर मैथिल ११ शंकर ज्ञाध्याय, १२ भरव कवि १३ सीतापति त्रिपाठी, १४ मगद कवि, १५ गोपाल त्रिपाठी, १६ विश्वाथ, १७ जीवन कवि १८ घनश्याम १९ ब्रजभूषण कवि, २० लच्छौराम, २१ चित्तामणि, २२ देवराम, २३ कुलमणि, २४ स्वरित कविराज, २५ गाविंद मट्ट, २६ जयराम कवि, २७ कवीधर २८ गापीनाथ, २९ रामकवि, ३० यादवराय, ३१ जगताराम तथा अन्य नौ अनाम कवि।

'कवीन्द्र चंद्रिका वास्तव में कवीन्द्राचार्य की कौन चंद्रिका ही है। इसमें कवीन्द्राचार्य सरस्वती के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के सहजता में दर्शन हो जाते हैं। कवीन्द्र चंद्रिका के निम्नलिखित छंदों में हिंदुओं-पर लगाये गये यात्रा कर की भयकरता, उसको टटाने में इसके पूर्व किये गये प्रयत्न, बुद्धिबल से इन कठिन काय में कवीन्द्र द्वारा प्राप्त सफलता आदि का वर्णन है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती के प्रति जनता की भावना विराप दर्शनीय है—

(१) ऐसी महाकार भारी भयानक
साहिजहान प्रयाग गहो है ॥
चक्रिको घक्र त्रिसुली का गुल
सुहायते घजि को ब्रज ठहो है ॥
सारसुली कवीन्द्र मुनोंद्र उर्वेद्र
मनों अबतार लहो है ॥
मेदि दयो कर दूरि मयो डर
भूपर में जसु फलि रहो है ॥

(२) चारो आथम थम करिक अनेक थक
तौह साहिजहाँ जू के मन मे न आया है ॥
जपबल, तपबल बुद्धिबल, विद्याबल
जानि परकाज दरवार कह धायो है ॥
कहै सुखदेव सुरलोक नरनागलोक
जगत विदित पुण्य पुज जसु पायो है ॥

जौन कर कासी यो १ कासीपति हूँ पे छूटयो
तो कर कासी को कवींद्र जू छुडायो है ॥

- (३) जेते राना राजा राई हिंदू साथ उमराई
बाहू पे बहो न जाइ साहि तेजु छायो है ॥
तीरथ प्रयाग कर कासी सी करी निडर
परसो कर अकर करसो छुडायो है ॥
जगजी विपति नासी सब की कला प्रगासी
देवता किये सुबासी सिद्ध सुख पायो है ॥

इन छंदो म यात्रा-कर की मुक्ति से जनता म जो प्रसन्नता हुई उसकी कल्पना की जा सकती है। साथ ही-साथ इस बात का भी पता लगता है कि कवीद्राचार्य सरस्वती द्वारा किया गया यह काम कृतना महत्त्वपूर्ण था। हिंदू समाज क लिए अपमानित एव घणित कर का मोचन करने वाले कवीद्र उसकी दृष्टि म रावण का नाश करने वाले श्रीराम, बली को पाताल म गाडन वाले वामन कौरवो की सभा म द्रौपदी की लज्जा रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण गजेंद्र की मुक्ति करन वाले श्री विष्णु क समान धर्म रक्षक प्रतीत हुए। देखिए—

- (१) ओही है कवींद्र जिन राम हूँ रावण मारयो
वामन सत्प धरि बलि भूप ज छेरे ॥
ओही है कवींद्र जिन द्रौपदी की लाज राखि
गजकी गरज गजराज काज जे करे ॥
सत सुख करिबे को भूमिभार धरिबे को,
ओहि है कवींद्र औनि आई औतेरे ॥

- (२) परमेश्वर के से प्रभाव प्रसिद्ध
सदा धरम प्रतिपाल करया ॥
पाप के चूरन है परिपूरन
तूरन सेवक सिद्ध सजया ॥
दुजन नासि अधम विनासि क
गो दुज तीरथ धर्म रखया ॥
काहउ तो सो कवींद्र भयो
कलि की कवि की फिरी अत उचया ॥

- (३) सत्यजुग त्रेता जुग द्वापर मे भयो नहीं,
जसे जसि एक यह कलि मे कवींद्र हुए ॥
साहिब सरस जाके दरस दरिद्र जात
कचन बरस विश्वनाथ कवि होइए ॥
उदित उदार सिरदार दान दयानिधि
धरम धरधर पुरदर से इए ॥

विश्वनाथ कवि मुक्ताफला सी फटिक सी
जग में जुहाई सम जोशियति है भली ।
वेनी अरु कासी कारनाट लौं छुडाई कर
अकर कविद्र इन्द्र कीयो है महाबली ॥

(३) फली रहे जस जायो अहान दसो
दसो दसि देसनि है छिती छाए ॥
पूरब पच्छिम दच्छिन को धुरि
उत्तर को नर नारी अहाए ॥

इन छंदों से पात होता है कि कवीद्राचाय सरस्वती की ख्याति कहीं-कहीं तक फली हुई थी। कवीद्र चंद्रिका में कवीद्राचाय की कीर्तिलता का अनेक उत्कृष्ट छंदों में वर्णन मिलता है। इसमें कवीद्राचाय सरस्वती के जीवन चरित विषयक सामग्री भी प्राप्त होती है। कवीद्र चंद्रिका के आरम्भ ही में जो छंद हैं वे इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं—

(१) कासी और प्रयाग की कर की पकर मिटाइ
सब ही को सब सुल दिये थी कवींद्र जग आइ ॥
सकल देसके कविनि मिलि कौनै कवित्त अपार ।
थी कवींद्र कीरति करन तिन में लीने सार ॥

× × ×

(२) पहले गोदातीर निवासी । पाछे आइ बसे श्रीकासी ॥
ऋग्वेदी असुलायन साया । तिन में प्रथ भयो है भाया ॥
सब विषयनि सो भये उदास । बालपना में लयो सयास ॥
उनि सब विद्या पढ़ी पढ़ाई । विद्यानिधि सुकवींद्र गुसाई ॥

प्रथम उद्धरण में कवीद्र चंद्रिका के उद्देश्य का कथन है। द्वितीय उद्धरण में उनके जीवन विषयक कुछ कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि वे महाराष्ट्रात्गत गोदावरी नदी के तीरस्थ किसी ग्राम अथवा नगर के वासी थे। बाद में उन्होंने वाराणसी में निवासस्थान बनाया। वे ऋग्वेदी अश्वलायन शाखा के महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और उन्होंने हिंदी भाषा में भी प्रथम रचना की है। बाल्यावस्था ही में उन्हें साप्ताहिक विषयों से विरक्ति होने से उन्होंने सयास ग्रहण किया था। उन्होंने सभी प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया था। कवीद्राचाय सरस्वती द्वारा रचित अथय ग्रंथों में भी इसकी पुष्टि होती है।

'कवींद्र चंद्रिका' अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। एक तो अभिनन्दन ग्रंथों की माला में अपने ढंग का यह प्रथम ग्रंथ है। इसमें यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी महान् व्यक्ति के लिए अभिनन्दन ग्रंथ बनाने की पद्धति भारत में सत्रहवीं शताब्दी में उस समय प्रचलित थी जिस समय भारत में संस्कृत तथा हिंदी के विद्वान् अपेक्षी गंगा प्रणाली से बोम्बे दूर थे। दूसरी बात यह है कि इसमें ऐसे अनेक अज्ञान कवि प्रकाश में आ गये हैं जिनके नाम तक हिंदी जगत् को मालूम नहीं हैं। तीसरी बात इनमें एम कवियों के छंद उपाहरणस्वरूप प्राप्त हुए हैं कि जिनके केवल नाम ही

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलते हैं। इन कवियों के समय निर्धारण की समस्या भी कुछ अग तक सरल हो सकती है। इनके अतिरिक्त इस ग्रथ में भारत के सामूहिक इतिहास की महत्वपूर्ण परन्तु विस्मृत घटना—हर विमोचन—के सम्बन्ध में भी कुछ विवरण मिल जाता है जो समकालीन प्रमाण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

‘कवींद्र चंद्रिका’ न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्व का ग्रथ है बल्कि साहित्यिक दृष्टि से भी है। इसमें कवित्त, संवैया, दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि छंदों का उत्कृष्ट प्रयोग है। इनमें कुछ छंदों का कारण है तो कुछ छंद काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट कौटिक के भी हैं जिनमें भाव-सौंदर्य और कला-सौंदर्य दोनों दर्शनीय हैं। काव्य में अलंकारों का उपयोग भी प्रमगानुकूल एवं सारगर्भित हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छंद देखिए—

कलि सलिता गभीर साहि हूठ महाप्राह
 प्राग गज गह्लो नयवाड एक धरी को ।
 ऐंचि खेचि धके सुखदेव प्रमु ध्यान कियो
 कवि इन्द्र धायो धवतार मानों हरी को ।
 चानुरी सुदरसन डारि छुटकाइ दियो
 पुय जसु लियो ऐसी दूजो महावरी को ।
 दिल्ली भरतार करतार को करे रोकर
 कर यो छुडायो ज्यों कर-करी को ॥

इसमें सागरूपक का उत्कृष्ट निर्वाह हुआ है। कली रूपी गभीर मरिचा में प्रयाग-रूपी गज माहि हूठरूपी महाप्राह से पीड़ित था जिसे कवींद्ररूपी हरी ने चानुरी-सुदान से मुक्त किया। इसमें कली प्रयाग, माहिहूठ, कवींद्र, चानुरी इन प्रस्तुतियों पर प्रमग सरिता, महाप्राह हरी सुदान इन अप्रस्तुतियों का आराध कर उनमें अभेदता दिखाया है। इस प्रकार कबीरशाखा की महनीयता दर्शाने के हेतु बाधे हुए निम्नलिखित रूपक का भी देखिए—

जगत सर नयो धम जल पूरि रह्यो
 तामे कमल कवींद्र सोहैं ।
 भक्ति पत्र ज्ञान बीज कोस
 जप विजलक सील रस मोहैं ।
 सबको बघन तीरथ मे तीरथ को बघन
 काटयो सोहू सुबास उपमा को है ।
 स्थाप राम बानी वरी कहे निरिनिदिन
 प्रफुल्लित याते जू हरि रवि सोहैं ॥

इस प्रकार ‘कवींद्र चंद्रिका’ में सर्वत्र हिन्दी पदा में भाव तथा अलंकारों के अतिरिक्त ब्रजभाषा का माधुर्य, रसात्मकता, नादमयता, उत्कृष्टविषय आदि काव्योचित गुण भी दृष्टिगोचर होते हैं। ब्रजभाषा की इस अनूठी एवं महत्वपूर्ण काव्य-कृति के अब तक अप्रकाशित ही रह जाने से हिन्दी के पाठकों को इसका यथोचित रस ग्रहण करने से वंचित हो रहना पड़ा था।

१२ | मराठी लोककवियों की हिन्दी रचनाएँ

महाराष्ट्र ने हिंदी भाषा की ओर सदैव आदर की दृष्टि से देखा है। यहाँ हिंदी को राजाश्रय तथा लोकाश्रय दोनों प्राप्त हुए। यहाँ व प्रसिद्ध सत ज्ञानदेवर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि ने स्वयस्कृति से संपूर्ण भारतभर का जनता तक अपने सदेश हिंदी पद रचना के माध्यम से पहुँचाने का प्रामाणिक प्रयत्न किया। जयराम चितामणि, भूपण, मतिराम, बबिकलस सीताराम महापात्र लोग मणि मिश्र आदि हिंदी कवियों को तत्कालीन महाराष्ट्र गमना न उठार राजाश्रय देकर हिंदी के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। इतना ही नहीं गिवाणी सभा की सजावर के शहाजी जैसे राजाओं ने स्वयं हिंदी भाषा में रचना कर हिंदी साहित्य समृद्धि में योगदान दिया। पेशवाओं के शासनकाल में तथा उनके पदचान भी रामजोशी, अनंत फदी, होना जी बाला, सगन भाऊ प्रभाकर परंगराम आदि महा राष्ट्रीय लोक कवियों ने मराठी के माध्यम से हिंदी भाषा में भी पवाडे तथा लावनिया की रचना की है। इस प्रकार अनुसंधान में प्राप्त उपलब्धियों से यह स्पष्ट दिखायी दे रहा है कि महाराष्ट्र की जनता ने हिंदी भाषा का कभी विरोध नहीं किया प्रत्युत इसे अंतर्जातीय भाषा के रूप में बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया।

महाराष्ट्र की लोककाव्य परम्परा

महाराष्ट्र की लोककाव्य परम्परा अत्यंत उज्ज्वल है। मराठी लोक साहित्य का साहित्यिक साहित्य भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत प्रमुख रूप से पवाडे लावनिया तथा तत्सम लोक गीतों का समावेश होता है। पवाडा अथवा पोवाडा महाराष्ट्र का प्रसिद्ध लोककवि है। अपनी शली तथा विषय वस्तु की दृष्टि से राजस्थानी चारणों की विन्दा वाली गली के समान तत्वा से पूर्ण होकर विगुद्ध वीरगति के रूप में सामान्यतः मान्य है। पवाडा एक तुल्युपाया वाद्य के सहयोग से उँची आवाज़ में गाया जाता है।

कोश के अनुसार पवाडा गीत का अर्थ है वीरों का पराक्रम विद्वानों की बुद्धि अथवा किसी की शक्ति, गुण शौचन के काव्यात्मक वर्णन प्रशस्ति स्तुति स्तोत्र। कहा जाता है कि यह गीत लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से मराठी भाषा में प्रयुक्त होता आ

रहा है। कुछ विद्वान 'पवाद' को 'प्रवाद' शब्द का अपभ्रष्ट रूप मानते हैं। 'प्रवाद' का अर्थ है जोर से कहना, जनरव किसी को दी जाने वाली सूचना या मिथ्यारोप। मराठी भाषा में प्रवाद शब्द का प्रचलन मिथ्यारोप के अर्थ में ही विशेष होता है, जब यह व्युत्पत्ति मेरी दृष्टि में समीचीन नहीं दोल पड़ती। महाराष्ट्रीय गानकोष के अनुसार पवाण प्राकृत शब्द है। श्रज में यही लोकशब्द 'पमारा', मालवा में 'पँवारा' और बुंदेलखंड में एक लंबी कहानी के लिए प्रचलित है। श्रज में पमारा सभी अवदान का (अच्छे काय, शुद्धाचरण) रूप में है। कहते हैं पँवारा या परमारो के प्रशस्ति गीत की ही संभवन पँवारे कहा जाता है। श्रज में जगदेव का पँवारा 'जयमल पते का पँवारा' तथा मालवा में 'कुवर सिंह का पँवारा' विशेष उल्लेखनीय लोकगीत माने जाते हैं।

लोक साहित्य का दूसरा प्रमुख गीत प्रकार है लावणी (लावनी)। यह मराठी का अपना विशेष वाक्य प्रकार माना जाता है। इसकी व्युत्पत्ति लापनिक, लापणिक, लवण लावण्य आदि शब्दों से बतायी जाती है परन्तु निश्चित निष्कर्ष अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। संगीतराग कल्पद्रुम के अनुसार 'लावणी यह एक उपराग है। यह देशी राग के अंतर्गत माना गया है। उदाहरणार्थ—लावनी भूपानी लावनी देशी, लावनी जगला, लावनी रेवता आदि। लावनिया में वैराग्य से लेकर शृंगार तक और प्रशस्ति से लेकर मूंग्य तक अनेक विषयों का बणन किया जाता है। मराठी लावनिया के साथ-साथ हिन्दी लावनिया की रचना शाहीरा ने की है। हिन्दी साहित्य में भी इसी तरह की लावनियाँ मिलती हैं। भारतेंदु काल में लावनीवाजों के दगल या स्पर्धाएँ उन्नी तरह होती या जेपे महाराष्ट्र में हुआ करती थी। स्वयं भारतेंदु ने भी लावणियों का रचनाएँ की हैं जो 'फूला का गुच्छा', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम प्रलाप' आदि ग्रंथों में संग्रहीत हैं। कुछ लावनिया 'रेखता' अर्थात् उदू प्रभावित ढंग की हैं।

तुझे कोई कावे में हाजिर कोई दर में अतलाता
मूले हैं सब अवल में बेशक इनके फक पडा ॥

—भारतदु

कुछ लावनिया प्रचलित श्रज भाषा में भी की हैं जस, 'माहि मोहि प्राण प्रिय कहे अनत अनुराग। प्रनापनादायण मिथ्य तो मराठी शाहीरा की तरह लावनीवाजों की संगति में रहने थे और लावनिया की रचना भी करते थे।

मराठी लोकसाहित्य के अन्तर्गत या तीसरा प्रकार लिया जाता है उसमें भजन, पद, भावद, ललित गोधल आदि प्रकार के लोक गीत समाविष्ट किए जाते हैं जो अक्सर डरू, तुलनुनिया के सहयोग से जनता में गाये जाते हैं।

लोक-काव्य का अंतरंग

लोक काव्य के रचयिता जनसाधारण के प्रतिनिधि होते हैं। उनमें से अधिकांश रचयिता अनिश्चित तथा संभ्यता में दूर रहने वाली जातियाँ में से होते हैं। अलंकृत

काव्य के रचयिताओं की भांति ये कवि काव्य शास्त्र के पाता भी नहीं रहते। इनका काव्य जन रजन के हेतु निर्मित हृदयोद्गार हैं। इसमें सहजता, स्वाभाविकता एवं सरलता रहनी है। इनके काव्य में भाव सौंदर्य की कमी नहीं है भले ही कला पक्ष प्रबल न रहा हो। मराठी लोककवियों की हिंदी रचनाओं में शृंगार के वर्णन का अतिरिक्त इतिहासपरक, सामाजिक, आध्यात्मिक रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। यहाँ उदाहरण के रूप में कुछ छंद प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनसे इन कवियों की हिंदी रचनाओं के भाव सौंदर्य, कला सौंदर्य तथा भाषा-सौंदर्य की कल्पना हो सके।

विप्रलम्भ शृंगार

मराठी लोक कवियों की रचनाओं में विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन अधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। सूर तथा मीरा के पदों में व्यक्त की गई वेदना का भाव सादृश्य कतिपय स्थला पर द्रष्टव्य है। प्रियतम के बिना जीवन भार-सा लगता है। हृदय में दुःख समा नहीं पाता। उसे व्यक्त करने के लिए योग्य सहृदय व्यक्ति तक नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में न खाना अच्छा लगता है न पीना। बहुत दिन हुए पर पिया नहीं आया। उस निर्मोही ने कुछ खबर तक नहीं भेजी। उसके विरह में नायिका उसी तरह तड़प रही है जैसे जल बिना मछली। अन्त में प्यारे को एक पत्र लिखाकर अपने गुनाहों को क्षमा कर देने की प्रार्थना करती है। बाला भयरु की इस नायिका का वर्णन मीरा के एक प्रतिष्ठित पद की स्मृति दिलाता है।

जाऊँ सखी कुई बमन बुलावूँ केर पतिया लिखो ।
गुना नहीं तखीर हमारा इतनी अर्जा लिखो ।
मैं समरन में सदा भजन में अपनी भेरे रखो ।
जल बीन जसो मछेली जसो मैं दरसन की भुकी पयासी ॥

विरह से पीड़ित नायिका अपनी विरहाग्नि पर पिया मिसन की आशा में जल का सदैव सिंचन करती आयी है। एक न एक दिन उसका प्रियतम अवश्य आयेगा इस मधुर कल्पना में वह सुख की साँस लेना चाहती है परन्तु कामदेव उसे सुख की नींद क्यों लेने देंगे ? व ता घर सधान का काय कर ही देते हैं और फिर विरहिणी नायिका की सुप्त कामवासना जागृत हो जाती है। उस अपने जीवन का स्मरण होना है। वह चार घड़ी रहने वाली यह क्षणभंगुर जवानी क्या कस जाने देगी ? इसी तरह साहीर प्रभाकर की एक काम पीड़ित विरहिणी नायिका अपनी अंतरंग सखी से कहती है—

जा सखी पीतम सावो घर वेग बुलावो ॥
नयन दोदार तूफानी । दो भवा कमानो ।
भरो भरपूर जवानी । मैं मई रो दीवानी ॥
साल की रीत पद्दानी । रखी होगी विरानी ।
ताकी चित्त क्षुत्तावो । जा सखी प्रीतम सावो ॥

बात सुनी सौकरन की । नई अगन तन की ।
ज्वानी धरी पन छन की । फिर नहीं भावन की ॥
अधरामिरत पिलावो । जा सखी पीतम लावो ॥”

—प्रभाव

सयोग श्रु गार वर्णन

अपने प्रियतम की आशा में नायिका बठी है । बहुत प्रतीक्षा करने पर भी प्रीतम नहीं आता । प्रतीक्षा करते-करते आँख लग जाती है । सपने में भी वह पिया मिलन का सुख अनुभव करती है । अत्यंत प्रसन्नता से और हँसी-बुझी से रात भर वे दोनों मीठी मीठी बातें करने रहते हैं । उसी क्षणों में पिया से आनिगन भी किया जाता है जिसमें नायिका की मानिया की माला टूट जाती है । बिखरे हुए मोतिया को चुनने के लिए ज्यो ही नायिका उठती है त्यो ही उस प्रीतम की अनुपस्थिति का वास्तविक गान हा जाता है और होनाजी का विरह से व्याकुल नायिका पिया पिया पुकारते हुए दरवाजे तक दौड़ती जाती है ।

सपने मे री तन की बहार पिह्या ने लूटी ।
मैंनी सग होकर नीपट गले सो लपटी ।
खूब हुई दोनों की बात रात को मोटी ।
मैं हँसी छुपी से अग पर उनके लेटी ।
इतने मे मातनमाल हमारी तुटी ।
मौती चूनी खातर चमक उठी ।
तद पास पिया नहीं देखी सुनी पलगडी ।
पिहू पिहू पुकारत दरवाजे लग दबडी ॥

—होनाजी वाला

नायक वर्णन

रात का समय है । चाँद की शीतल चाँदनी धरती पर छिटकी है । ऐसे सुन्दर वातावरण में नायक अपनी प्रिया से मिलने के लिए सज घड़ कर आना है । सिरपर सफेद सी पगडी सिरपंच की चमक, उसमें लगाये हीरो की शोभा, मुँह में बाँटा आदि बातें विनय द्रष्टय हैं । नायक को आगन में खड़ा देखने ही नायिका का मनमयूर गुशी से नाच उठता है । मिलने की तीव्र इच्छा होने पर भी वह अपने स्वभावानुसार मान करना चाहती है । होनाजी वाला की यह नायिका अपनी सखी से प्रियतम की ओर संकेत करती हुई कहती है—

चाँदना पडा था री चाँदना पडा था ।
अरी देखो सहेली महली आगन पुरख (पुरुष) ।
नीचे तर को बोण खडा फा । देख ॥
सफेद-सो सिर पर पगडी थी ।
सिर पंच को चमक बडी थी ।

हारे और हिरण्य्या (?) जड़ी थी ।

सात राखी में पिट्ट से बिघड़ी थी ।

—होनाजी बाला

शृंगारिक लावनिया के साथ साथ कुछ विनोदपूर्ण लावनियाँ भी मिलती हैं । अनंत पत्नी की एक विनोदपूर्ण लावनी देखिए जिसमें पति-पत्नी के भगडे का वणन बड़ी चतुराई से किया गया है । उम भगडे का देखने के लिए बड़ा भीड़ लगी है । लोग एक-दूसरे पर धराधब गिरत थ । पति अधिच वमाता नह । मारा दिन घर पर बँठ कर ही बिताता है । पत्नी चरसा चलाकर कुछ कमाई करती है और उम बिलाती है । लेकिन उसकी कमाई पर्याप्त न होने से कई बार रात के साले तक पड जाते हैं । इसी से तग आकर पत्नी अपने पति को आटे हाथो लती है । पत्नी की वह फटकार भला पति क्यों बरदान्त करे ? वह भी आवा म आकर उमम अपनी चीरता तथा महत्ता का वणन कर यह लिखाता है कि पत्नी की कमाई न के बराबर ही है । पति की तीखी व्यंग्य भरी बातों को सुनकर पत्नी भी शोध के मारे कुछ कह बठती है और पति को निरन्तर करती है । उदाहरण देखिए—

जोर कसम का कग्गा सुनो हाता लटते फिरते ते ।

बडा हजाबा एडा एक पर एक धवा धव गिरते ते ॥ टेव ॥

खाने पिये के तगगाई ये तो नाका दिन निकला ।

मारा पनो भला न किया भजपर एटा हागवरा ।

सारा घर दिन मुला एडू किय नहीं करता मुका (ब) सा ।

मय चरखे के कमाई पहा लाग तूभे खिलाऊ नडुलाता ॥

तू क्या कमाती फतर चुडल क्या करती हाय हाय ॥

एसे लग कर जुधा भाए एक बाल नहि रहने पाय ।

क्या पशम चरखे के कमाई हाम गिपाई हार गिसा खाय ।

दरर किय मारे तलवारा लोह खना खन तुटवा जाय ।

स विनोदपूर्ण लावनी में ग्राम्यता अवश्य है परन्तु इसमें विनोद के साथ साथ एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथ्य का भी परामश किया गया है । निठले तथा निकम्मे पति के प्रति कमाने वाली पत्नी की प्रतिनिया का भी संकेत देने का प्रयत्न किया गया है ।

कृष्ण विषयक लावनियाँ

शाहीरो की हिंदी लावनियाँ में कृष्ण विषयक शृंगार प्रधान लावनियाँ भी मिलती हैं जिसमें साहित्यिक शृंगार की भल्लक स्पष्ट दिखायी देती है । च दादर म यमुना के किनारे गोपिया का पानी भरने जाना क हैया की मधुर मुरती की आवाज सुनते ही आकृष्ट होना कृष्ण की गांधियों से छेड़छाड़ आदि बातों का समावेश कृष्ण विषयक सभी लावनियों में पाया जाता है । होनाजी की यह लावनी द्रष्टव्य है—

किने मुरली बजायो गररर गिरकी आयी रो ।

मुजे जल भरनेकू जाना ये हाक नहाक सताता काहा ।

मैंने एव बताया वहना, देख रे सास मेरी बहोरी ।
क्या किया मुझे तरा जान दे छोड पल्लोड मेरा ।

इतिहास विषयक रचनाएँ

इन शाहीरो की रचनाओ म कुछ ऐस भी हिंदी पावाडे प्राप्त होते है जिनका एनिहासिक दष्टि से बहुत ही महत्व माना जाना है । अनत पदी का एक पवाण इस दष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमे सवाई माधवराव पेगावा के शासन-काल मे नाना फणवीसका जिस तरह महत्व था यह बनावर तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का भी बान किया है । उदाहरण—

सवाई माधवराव सवाई सवाई डका बजाया ।
फडणवीस नाना की तारीफ अक्कलने तो गजब किया ।
बिन धार से राज्य चलाया ना किसे चक्कक झडी ।
कैक मुत्सदी चप गये बस मये नाना की तो अक्ल बडी ।
दिल्ली अटक लाहौर माहौर कर्नाटक घोच पुकार पडी ।
चारो तरफ तजेला निकला चद ऐसी फिरत बडी ।

—अनत फनी

समाजपरक रचनाएँ

शाहीरो की हिंदी रचनाओ मे कई स्थानो पर महाराष्ट्र समाज जीयत प्रति-
बिम्बित हुआ है । वही नायिका के अलकार वणन मे तो वही नायक की वंशभूषा मे
वही जिमी उत्तमव के वणन म तो वही जिमी स्थान विशेष के वणन मे, तत्कालीन
महाराष्ट्र क जन-जीवन के विविध पहनुओं के दगन होते हैं । होनानी की एक नायिका
विरवन होकर अपन अलकार बान मे देना चाहती है ।

चंद्रकोर शिसफुा ये भुमवेदार मचनी ।
मोहनमाला और हातसर पदव्या बगनी ।
बिचपेटघा जगोठघा जडाव जदोर हिरकनी ।
दे डाला सबकु सोता सोता तोला ।

एक लावनी म पूना शहर की समद्वि का वणन किया गया है—

पुना शहर निमोना श्रीमतराव पशवों का ।
बहार बडी यस्ती ती (घो) कि पारो अलम सुग (घ) र व्हाका ।
बगले दिवाणखाने घडा जोर बांधा धाका ।
नल कारजे हौद बनाये जागे जागे
चौकी भरे हौद बलकी तारीफ घडी हाय ।
जोगेसरी, बेलवाग, मुरलीधर तुलसी बाग सजेली ॥

अतिम पक्ति के सभी स्थल आज भी पूना शहर की समद्वि म गिनाये जात हैं ।

आध्यात्मिक रचनाएँ

इन कवियों ने लौकिक विषया क साथ साथ आध्यात्मिक विषया पर भी कुछ
रचनाएँ की हैं । इनकी अ-पाम विषयक हिंदी रचनाओ म नायबय, सूफी सप्रणय

अद्वैतवाद आदि का प्रभाव दिखायी देता है। 'कलगी-तुरा' ये दो शब्द विशेष अर्थ के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। 'कलगी' पक्ष में वे लोग रहते थे जो शक्ति के उपासक थे और 'तुरा' पक्ष में उन लोगों का समावेश होता था जो शिव की उपासना करते थे। होनाजी, परशुराम, राम जोशी व शाहीर तुरा पक्ष के तथा सगनभाऊ, हैरती, पट्टे वापुराव आदि शाहीर कलगी पक्ष के माने जाते हैं। प्रभाकर तथा अनंत फदी इन वादों से अलिप्त रहे थे। शाहीरों की आध्यात्मिक रचनाओं का विस्तृत विवरण देना इस सम्बन्ध में उचित न होगा। अतः प्राप्त हिंदी रचना के कुछ आध्यात्मिक उदाहरणों से कल्पना की जा सकेगी।

'लाली मरे लाल की बहने वाले कबीर की स्मृति लहरी सिद्राम की इस कविता से होती है—

लाली लाल धनी मतवाली छबीदार छबीली
लाली लाल मेरे बनमाली में तेरी लाली।

परशुराम की एक आध्यात्मिक लावनी विशेष उल्लेखनीय है। उसमें परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने के लिए जीवात्मा रूपी प्रियतमा अत्यंत उत्सुक है। प्रियतम का घर बहुत ही दूर है। उसे चिंता है कि वह प्रियतम के घर जल्दी पहुंच सकेगी या नहीं।

घर दूर पिहू का कभी पोचुगी सखी ।
नहीं जहान भर भों मेरे सरोख दुखी ।
तीन लाल सुनेरी महल पि का बना ।
नव दरवाजे पर काम किया रग मिना ॥

परशुराम की दूसरी आध्यात्मिक लावनी तो इससे भी अधिक प्रभावीत्पात्क है—

नयन चोर इस तनमो जी लागी ।
बैठ जी होना लठ बरागी ।
ऐसी जादू बुरी दिवानी टुक दशन देती जागी
इंद्र चंद्र किया जनम का रोगी ॥ घ ॥
किये सोल सिनगार गले में गज मोतन के हार लटके ।
सफेत अगिया उपरी बूटे जरी के गगन ग्याने सारे भुटके ।
जब किया ननो ने छत्रिली जहा बिजली आज तुट पडे ।
घट्ट सुरज दो बाजू उज्जाले करनफूल कानों में जडे ।
माजुक पतली कबर तेरी जोवन जसे गेंद चडे ।
खडी महल पर मुख म्लान तेरे देखन खातर रह्या अडे ॥ध ॥

हिंदी मराठी मिश्रित रचनाएँ

लोककवियों की हिंदी रचनाओं में कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें कहीं कहीं मराठी शब्द दिखायी देते हैं जिनका अहिंदी भाषी कविकी रचना में आना स्वाभाविक

है। लेकिन कुछ रचनाओं में एक पक्ति हिंदी तो दूसरी मराठी इस तरह का ऋम भी पाया जाता है। कही कही प्रथम पक्ति अर्थात् टेक मराठी तो सारी रचना हिंदी में लिखी जाती है। इस तरह का वैचित्र्य देखकर आश्चर्य अवश्य होता है। एक तो गाहीरो ने ऐसी रचनाशैली वैचित्र्य के रूप में की होगी, नहीं तो ऐसे समूह के सामने गायी होगी जहाँ कुछ लोग हिंदी और कुछ लोग मराठी जानते हों। निश्चित कारण बताना कठिन ही है। हिंदी मराठी मिश्रित यह रचना भावात्मक ऐक्य प्रस्थापित करने में अवश्य मदद देगी। एक शली विशेष के रूप में ऐसी रचना साहित्य में विश्वमान रहेगी।

लहरी सिद्राम की ऐसी ही हिंदी मराठी मिश्रित रचना देखिए—

हाय मेरे लालन कहीं गडे । आज मरन बाई ॥४॥
हाय रे भाल बिना दुनिया सारी । सुनी दिसे मजला ।
लगी जी प्रेम की कटियारी । ध्याकुल जीव भाला ।
पिहु पिहु में पुकारी । कठी प्राण उरला ।

इसी प्रकार शाहीर प्रभाकर की भी एक रचना द्रष्टव्य है—

लाव खजीर सिर काट धरु । धीर धरवत नाहीं ॥५०॥
दाग लगाके पिहु पाछे । मज टाकून गेला ।
यार कहो तुम तोबी । गुहा कधी त्याचा केला ॥
कोन जगा प्यारा किसी ने । गल घालून नेला ॥
वार कलिजे पार लगा । कशी घाचेन बाई ॥

राम जोशी ने ता इमसे भी विचित्र प्रकार की रचना की है। उनकी एक ऐसी लावनी मिली है जो मस्कृत, प्राकृत, कन्नड और हिंदी इन चारों भाषाओं के मिश्रण से बनी है। इससे उनका चारों भाषाओं पर कितना प्रभुत्व था यह सिद्ध हो जाता है। यह विचित्र शैली भी एक आकषण की वस्तु है—

भुँच मुँच चैलाधर मधुना । नदाच्या पोरा ।
हिडनिन तदिग मयाग । पिहुजन बहुत बुरा मेरा ॥
तिष्ठ तिष्ठ सखी । इतुकी रागाने कागे बोली ।
ना गोकुलपति निनम्याल, सखी सुनरी अलबेली ॥
त्व तु रमे मयाचिता । न की भाव धरु दुतरा ।
इष्ट मात निम्न केलु दिन्ना । सखी कपो उतर गया चेहरा ॥

—राम जोशी

लोककवियों की हिंदी भाषा का स्वरूप

मराठी लोककवियों की उपर्युक्त हिंदी कविताओं का भाषा की दृष्टि में विचार किया जाए तो सामान्यतः दो विभाग किये जा सकते हैं। एक विभाग उन रचनाओं का हो सकता है जिसमें दक्षिणी हिंदी का रूप दिवायी देता है। द्वितीय

विभाग का रचनाओं का है मराठी है त्रिभुव मराठी साहित्य की बहुधा सिद्धांतों पड़ती है। इन कवियों की अधिकांश रचनाओं की भाषा में लगभग वही रचनाएँ सिद्धांतों देती हैं जो दक्षिणी हिन्दी में पायी जाती हैं।

उत्तर भारत की बोलचाल में जहाँ एक ही शब्द में दो मुख्य ध्वनियाँ पायी जाती हैं अर्थात् म आती हैं, वहाँ दक्षिणी में पड़ती व स्थान में दस्य ध्वनि आ जाती है जैसे टूटी, टटा, टनी, टूँडा के स्थान पर तमना गुनी तथा पनी, धुंजा के रूप मिलते हैं।

स्पर्श राठी बोली में जहाँ शब्द के मध्य का दीप व्यंजन ह्रस्व हो गया है और प्रतिवार में पूर्ववर्ती स्वर दीप, वहाँ दक्षिणी हिन्दी में बहुधा व्यंजन दीप का पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व मया सोना घूना पीना के स्थान पर तमना गुना, घुना पिना के रूप मिलते हैं।

दक्षिणी हिन्दी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अप्रमाण में मिलती हैं यथा— दस्य विषयना कुछ पीछे समझना मुझे तुम्हें मिटाई पड़ना हाथ हाथी अधिना जान इन दो शब्दों के स्थान पर तमना देना पिगलना घुना पिच समझना मुज तुज मिटाई पड़ना हात हाती आदि शब्दों जैसे रूप मिलते हैं।

उपरोक्त दक्षिणी हिन्दी की लगभग सारा शब्दावली मराठी सोना कवियों की रचनाओं में पायी जाती है। व्याकरण की दृष्टि से भी इनकी हिन्दी रचना दक्षिणी हिन्दी के अधिक नजदीक सिद्धांतों देती हैं।

इन कवियों की हिन्दी रचनाओं में जहाँ इतर हकीकत मटर कम बरखा हाजा, बलजा मागुव जैसे अरबी फारसी शब्द मिलते हैं वहाँ ताको मोहि पनिया, पीनम मोनमाल, पिया भया भई वजरा आवनकी मोहे लवरियाँ जैसे ब्रज भाषा के शब्दों की भी कमी नहीं है। गाहीरो की मातभाषा मराठी होने से तलमलना सात नरक हिरकण्या तेरी सामु दिवाणखाना पाणी आवडना धुना बिचपेटया वनागना आदि मराठी शब्दों के तत्सम तदभव या विवृत रूप भी कम या अधिक प्रमाण में पाये जाते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कहीं कहीं भाषा तथा रचना की भी अनुद्धियाँ पायी जाती हैं। अधिकांश लोक कवि अल्पशिक्षित थे। वे बोलने की भाषा अधिक अच्छी जानते थे और साहित्यिक भाषा कम। उन्होंने अपनी मराठी रचनाओं में भी शुद्धता का खयाल नहीं किया तो हिन्दी की बात ही क्या?

महाराष्ट्रीय लोककवियों की हिन्दी कविता का खड़ी बोली के पूव रूप की दृष्टि से अत्यंत महत्व है। इससे डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी के मत की पुष्टि करते हुए कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा का विकास और उसमें साहित्य रचना का कार्य केवल उत्तर भारत में नहीं हुआ है बल्कि दक्षिण भारत की मुसलमानी रियासतों उनके नामक उनके दरबार के तथा अन्य साहित्यिकों की भाँति महाराष्ट्र का भी उसमें बहुत महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

इसा की सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र में साधु-सतों की एक बख्तर परंपरा सी दृष्टिगोचर होती है। महाराष्ट्र में 'सत' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। उत्तर भारत की परंपरा के अनुसार केवल 'निरगुनिया' को यहाँ सत ही नहीं माना जाता प्रत्युत सगुणोपामक भक्तों का भी उसमें समावेश रहता है। महाराष्ट्र के धर्म जीवन में अध्यात्मिक अधिष्ठान निर्माण करने का कार्य मराठी सता ही किया। उन समय की विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वय कर इन्होंने मराठी जनता में अध्यात्म निष्ठ मानवतावादी की एक उत्तम एवं प्रगतिशील विचार प्रणाली प्रतिष्ठित की।

महाराष्ट्र में समय समय पर बौद्ध जैन, लिंगायत, नाथ, महानुभाव, दत्त, समय वारकरी आदि विभिन्न धर्म पथों तथा संप्रदायों का प्रचार हुआ। इन संप्रदायों ने विगत स्थिति तथा समय में महा की जनता को प्रभावित ता किया परंतु अनेक कारणों से उक्त यह प्रभाव महाराष्ट्रीय जनता पर अत तक न रह सका। केवल वारकरी-संप्रदाय जैसे सर्व-व्यापक धर्म संप्रदाय का प्रभाव यहाँ की जनता में प्रभूत मात्रा में पाया जाता है और इसलिए उसे महाराष्ट्र का प्रतिनिधि धर्म-संप्रदाय माना जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि महाराष्ट्र में केवल वारकरी संप्रदाय का ही प्रचलन है। उदाहरणार्थ अथ धर्मपथा एक संप्रदायों का प्रचलन भी द्यूनाधिक मात्रा में अवश्य रहा। महाराष्ट्र में प्रचलित प्रमुख धर्म संप्रदाय ये हैं—(१) नाथ संप्रदाय, (२) महा-नुभाव संप्रदाय, (३) वारकरी संप्रदाय, (४) दत्त संप्रदाय, और (५) समय संप्रदाय।

नाथ संप्रदाय

भारत के अथ प्रान्ता की भांति महाराष्ट्र में भी नाथ संप्रदाय की सूत्र माय्या मिली थी। नानेश्वर की गुरुपरंपरा से यह निश्चित हो जाता है कि महाराष्ट्र में इस पथ का प्रचलन नानेश्वर के जयात ईमा की तेरहवीं शताब्दी के पूर्व से था परंतु इस संप्रदाय का वास्तविक संचार कब से प्रारंभ हुआ, इसके संबंध में विद्वानों में मत भिन्नता पाया जाती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी महाराष्ट्र में नाथ संप्रदाय

का संसारवात विग्रम की दसवां सातवें मात है ता डॉ० पितांबर दत्त बडव्याल^१ विग्रम की स्फारहृषीं घनाती । मराठी क प्रगिद अमुमधनजा श्री दर महाराष्ट्र म इस पथ की अविच्छिन्न परपरा का वास्तविक अथ गोरक्षनाथ के निम्न महिनी अथवा मनीनाथ की दो हैं ।^२

नाथ संप्रदाय के सोया की साधारणत नाथ, जोगी, दाना तथा मनपत्त कहा जाता है । नाथ शब्द के प्रपत्तन का स्पष्टीकरण डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तिरा है—'ना' का अर्थ है अनादि रण और 'थ' का अर्थ है (भुवनत्रय) स्थापित होना । इस प्रकार 'नाथ' मनसा स्पष्टाप यह अनादि धम है जा भुवनत्रय की स्थिति का कारण है । श्री गोरक्ष को इसी कारण से 'नाथ' कहा जाता है । फिर 'ना' शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म जो मोक्ष-दान म दस हैं, उनका ज्ञान कराना है और 'थ' का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करने वाला । चूंकि नाथ के आश्रयण से इस नाथ-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरुद्ध होती है इसलिए 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है^३ । इन्हें 'जोगी' इसलिए कहा जाता है कि ये लोग हठयोग की साधना करते हैं और 'दाना' इसलिए कहा जाता है कि ये कानों म भारी बूड़ल धारण करते हैं । इनके बान पटे हुए होते हैं इसलिए ये कनपट कहलाते हैं । महाराष्ट्र में इन्हें 'गोमावी' भी कहते हैं^४ ।

नाथ-संप्रदाय कई बातों में शैव मत का समर्थक था परंतु महाराष्ट्र म इस पथ के अनुयायियों ने शिव विष्णु' क ऐस्य पर ही अधिप बन लिया । परिणामस्वरूप यहाँ उत्तर भारत की तरह शैव और वैष्णव का संपर्क न क बराबर ही रहा । नाथ पंथियों ने शक्ति युक्त शिव स्वरूप को प्रमाण माना है । आत्मगुडि पर बल देने वाली यागसाधना, आत्मानुभूति पर विश्वास, दलितोद्धार की तीव्र इच्छा आदि बातों के कारण यह संप्रदाय यहाँ विशेष लोकप्रिय रहा परंतु आगे चलकर इस पथ के अनुयायियों ने लोकप्रियता के इन मुख्य कारणों की ओर ध्यान नहीं दिया । नाथ पंथियों ने बाह्याचार को इतना अधिक महत्व देना शुरू किया कि परिणामस्वरूप गुड योगसाधना, आत्मानुभूति आदि मुख्य बाना की ओर जनका निर्णय ध्यान न रह सका । इनमें सांप्रदायिक विकृति बढ़ जाने से अनेक दुराचार भी इनके द्वारा किये जाने लगे । इसका फल यह हुआ कि नाथपंथियों के प्रति यहाँ की जनता म श्रद्धा न रही । इसी समय महाराष्ट्र में 'वारकरी संप्रदाय' अधिक लोकप्रिय बन रहा था ।

१ गोरक्षबानी—संपादक डा० पीताम्बरदत्त बडव्याल (सन १९४२) भूमिका पृ० २०

२ श्री गुरु गोरक्षनाथ—रा० वि० डेरे (सन १९५६ ई०), पृ० १३८

३ नाथ संप्रदाय—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (सन १९५० ई०) पृ० ३

४ हिन्दी की मराठी सतों की देन—डा० विनयमोहन शर्मा (प्रथम संस्करण), पृ० ६०

डा० विनय मोहन शर्मा के मत में महाराष्ट्र में नाथ पथ के लोप हो जाने का कारण है इसका मूलतः ज्ञान मार्गी होता और 'विदु रक्षा पर अत्यधिक आग्रह करना'।^१ भागला वंश के शासनकाल में इस संप्रदाय का स्वतंत्र स्थान तो न रहा परंतु न्यूनधिक मात्रा में इसका प्रभाव यहाँ के धार्मिक जीवन पर अवश्य रहा था। महाराष्ट्र के महानुभाव, वारकरी, दत्त आदि संप्रदायों पर नाथपथ का प्रभाव न्यूनधिक मात्रा में स्पष्ट रूप में दिखायी देता है।

महानुभाव संप्रदाय

वज्रधर स्वामी द्वारा प्रवर्तित महानुभाव पथ प्रारम्भ में महाराष्ट्र की जनता में एक आकर्षण की वस्तु रहा। यह संप्रदाय केवल महाराष्ट्र ही में सीमित न रहकर उसके बाहर भी लोकप्रिय बना था। इसे महानुभाव के अतिरिक्त मानभाव, महात्मा, अच्युत, जयकृष्णी, भटमाग, परमाग आदि नामों से भी अभिहित किया जाता था।^२ महानुभावों ने कृष्णभक्ति को स्वीकार किया था। श्रीकृष्ण, द्वा रावती के चागदेव राजल, ऋद्धिपुर के गुडम राजल अर्थात् गोविंदप्रभु तथा चक्रधर—ये पांच कृष्णावतार माने जाते हैं। इनका शिष्य परम्परा बहुत ही बड़ी थी। जीवेवर भेज, भक्तियाग, सन्तान और अहिंसा ये चार सूत्र महानुभाव संप्रदाय की आधारशिला के रूप में माने जाते हैं परन्तु यह संप्रदाय महाराष्ट्र की जनता को अधिक समय तक प्रभावित न कर सका।

वास्तव में महानुभाव संप्रदाय को निष्ठावान तथा जानसपन अनुयायी प्रारम्भ से ही प्राप्त हुए थे और चाहने योग्य दिशा में प्रयत्न भी किये थे किंतु एकांतिक निवृत्तिवादी तथा कठिन आचार धर्म के कारण सामान्य जनता में उनके प्रति धृष्टता नहीं। वैदिक धर्मावलंबियों की कथकता तथा भोगलोलुपता का तीव्र प्रतिकार करते करते स्वयं यह संप्रदाय सत्यासत्ता और जीवन पराङ्मुखता की चरम सीमा पर पहुँच गया। अर्वादिता, वर्णाश्रमविरोध, मूर्तिपूजा को अमायता महत्तमिरी का आडम्बर, मंत्रियों का सत्यासत्ता काल गिले रंग के बस्त्रों की विचित्र वेपभूषा,^३ सामान्य जनता के लिए दुर्बोध सबल तथा सुन्दर जखी गुप्त लिपियों के प्रयोग आदि अनेक समाज विमुख बातों से महाराष्ट्र में यह संप्रदाय बहुत काल तक मायम रहा। एजनाथ तथा तुकाराम के अभंगों में इस पथ की भत्सना दिखायी देती है। सन १७८२ के लगभग श्री सवाई भाषकराव पेशवा ने 'विप्रव्यवहार निणय' द्वारा इस पथ को बहिष्कृत कर दिया था।^४

१ हिंदी की मराठी सतों की देन—डा० विनयमोहन शर्मा (प्रथम संस्करण) पृ० ६४

२ वही, पृ० ६५

३ प्राचीन मराठी वाङ्मयाचे स्वरूप—प्रा० गौरीजीकर (द्वितीय संस्करण), पृ० ८६

४ हिंदी की मराठी सतों की देन—डा० विनयमोहन शर्मा (प्र०स०), पृ० ६८

धारकरी संप्रदाय

धारकरी संप्रदाय अर्थात् भागवत धर्म का संदेश महाराष्ट्र के कोने-कोने में पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य सत नामदेव ने किया। इसीलिए उन्हें धारकरी-संप्रदाय के आद्य प्रचारक का सम्मान दिया जाता है। महाराष्ट्र सरस्वती के मन्दिर में पान देव ने जो ज्ञानदीप प्रज्वलित किया था उससे जलस्य ज्योनिया ज्योतित करने तथा समाज जीवन के अधकार का नाश कर उसे उज्ज्वलित करने की महत्वाकांक्षा सत नामदेव के मन में थी। पानेश्वर ने सामान्य जनता में नयी ध्येयदृष्टि निर्माण की परन्तु उनके जीवन में उस ध्येय को साकार बनाने के लिए अपनी सुप्त शक्ति का प्रत्यय होना अत्यावश्यक था। नामदेव ने अपनी अस्सी वर्षों की दीर्घ आयु में बड़ी ही निष्ठा तथा तपस्यव्रता से धारकरी-संप्रदाय का प्रचार किया और उसके द्वारा जन साधारण की सुप्त आकांक्षाओं को जागृत किया। भक्ति रस में रगे हुए इस संप्रदाय का दृष्टिकोण अत्यंत उत्तर एवं मानवतावादी था।

पंढरपुर में पानेश्वर कालपूर्व के जो चार शिलालेख उपलब्ध हुए हैं उनसे यह बात होती है कि धारकरी संप्रदाय महाराष्ट्र में प्राचीन काल से प्रचलित था।^१ फिर भी वास्तविक दृष्टि से इस पथ के सामाजिक कार्य का आरम्भ तेरहवीं शताब्दी के अंत में ही हुआ। सत नामदेव ने इस पथ को सुन्दर एवं जन-यापी बना दिया। मराठी में धारकरी शब्द का अर्थ है यात्रा। अतः धारकरी शब्द का सामान्य अर्थ रहा यात्रा करने वाला व्यक्ति। धार्मिक दृष्टि से उसे धारकरी कहते हैं जो पंढरपुर स्थित विठ्ठल की मूर्ति का उपासक है और आपाढ़ तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी का नियमित रूप में पंढरपुर की यात्रा कर विठ्ठल मूर्ति के दर्शन करता है। यह धर्म यात्रा आपाढ़-कार्तिक की शुक्ल पक्षीय एकादशी में अनिश्चित अर्थ महीना की एकादशी को भी की जा सकती है। पंढरपुर की यह धर्म-यात्रा धारकरी कहलाती है। अतः इस संप्रदाय को कुछ लोग धारकरी कहने लगे। इस संप्रदाय के भक्तगण पाहुरग की प्रिय तुलसा की माला भी धारण करते हैं इसी से कुछ लोग ने इसे 'मानकरी' भी कहना प्रारंभ किया।^२ इसी को विठ्ठल संप्रदाय तथा भागवत संप्रदाय भी कहते हैं।

यह संप्रदाय मूलतः वर्नाटकीय होगा और वहाँ से महाराष्ट्र में उसका प्रचलन हुआ होगा। इस मत की पुष्टि नामदेव तथा एकादश की निम्नलिखित अभंग रचना से हो जाती है।

(१) 'कानडा विठ्ठल पंढरीये — नामदेव

(२) तीर्थ कानडे देव कानडे । क्षेत्र कानडे पंढरीये — एकादश

विठ्ठल का विष्णु का कृष्णावनार का वारम्भ माना जाता है। महाराष्ट्र के सर्वों में कृष्ण के प्रायः वान और मयान्त्रि रूप को अपनाया है। उद्दान उत्तर का

१ पांच सत दवि—डा० १० गो० तुक्पुदे पृ० ७

२ हिंदी की मराठी सतों की देन—डा० दिनपमोहन गर्मा, पृ० ६९

भगवत संप्रदायी भक्ता की नाइ वृष्ण के, राधा और गोपी के शृंगार मूलक भक्ति रस का विशेष पान नहीं किया। इसीलिए पठरपुर में विठ्ठल (वृष्ण) की मूर्ति के निकट राधा रानी न हावर, घमपति रुक्मिणी देवी प्रतिष्ठित हैं और वह भी स्वतंत्र दूसरे मन्दिर में। इस पथ की एक विशेषता यह है कि वारकरी सत वृष्ण अर्थात् विठ्ठल के प्रति भक्ति रखते हुए भी अद्वैतवादी हैं। वे भव-वधन से छूटकर मोक्ष चाहते हैं— भगवान में एकाकार होना चाहते हैं।^१

नवधा भक्ति में से महाराष्ट्रीय वारकरियों ने 'श्रवण और कीर्तन' का पुरस्कार किया। गौरा कुंभार, सावता माली, चोला मेला, नरहरि सुनार, बका महार, जनाबाई, आदि विभिन्न वर्गों तथा जातियों के भक्तगणों ने इस संप्रदाय को बहुत ही लोकप्रिय बनाया। आज भी यह संप्रदाय महाराष्ट्र में सबसे अधिक प्रिय है।

दत्त संप्रदाय

वारकरी संप्रदाय के आद्य प्रचारक नामदेव के पश्चात् महाराष्ट्र की धार्मिक स्थिति तो अधिक ही विताजतक हो चुकी थी। इस समय ब्राह्मण वर्ग आचार की दृष्टि से शिक्षित हो रहा था। वर्णाश्रमाचित कल्याण का उद्देश्य विस्मरण हो गया था और धर्म विहित आचार भूलकर जीविका चलाने के लिए विविध व्यवसायों का अवलंब उठाने किया था। जिनके कारण अपने संपूर्ण धर्म पर आपत्ति आ चुकी थी उन्हीं पवनों की सेवा में ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धि तथा शरीर का लगा दिया था।^२ ब्राह्मणों की दक्षादेही में अन्य वर्गों तथा जातियों में भी इसी प्रवृत्ति का यूनाधिक माना में प्रसार हो चुका था। इसी परिस्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में महाराष्ट्र में दत्त-संप्रदाय का प्रवर्तन हुआ। बहुमनी राज्यपाल के उत्तरार्ध में श्रीपाद श्रीवल्लभ और श्री नरसिंह सरस्वती इन दो महापुरुषों ने दत्त संप्रदाय की स्थापना कर वैदिक धर्म की सनातन परंपरा का पुनरुज्जीवन किया। इन महान विभूतियों के पतन का समय सामान्यतः सन १३७८ से १४५८ ई० तक माना जाता है।

दत्त त्रिमूर्ति देवता हैं जिनमें ब्रह्मा विष्णु और महेश का समावेश है। साथ ही इनमें सत्व रज और तम इन तीन गुणों के एकत्र का दशा भी होता है। सूर्य शक्ति गणपति विष्णु और शंकर की पचासवें पूजा की परिपाटी शंकराचार्य ने जनता की मत्त विभिन्नता का अंत करने के लिए प्रारम्भ की थी। इसी भावना से त्रिमूर्ति देवता की सृष्टि की गयी प्रतीत होती है। इस पथ का जड़त दान है। ब्रह्म को निरामय नित्यानन्द तथा पान की आशा से जानकर कहा गया है। ब्रह्म की इच्छा शक्ति ही प्रकृति है और जीव ही मूल रूप से ब्रह्म है। भिन्न भिन्न देह धारण करने से भिन्न भिन्न दिव्यायी देता है। यह समस्त महेश के सबंध से उत्पन्न हुआ है इन्हीं

१ हिंदी को मराठी सता की देन—डा० चिन्मयमोहन गर्मा, प० ७६

२ दत्त संप्रदायाचा इतिहास—रा० चि० डेरे (सन १६५८ ई०), प० १७२

के सवध म रहता है और उही क सवध म उमवा 'लय हो जाता है।' गुरुचरित्र इस सप्रणय का प्रमाण ग्रथ माना जाता है जिसम आचार धम का विस्तृत व्याख्या का गयी है। सरस्वती गंगाधर दासोपत, एवनाथ, मुक्तेवर इसी सप्रदाय के थे। नरसिंह सरस्वती ने धर्मो रक्षति रक्षित तथा 'आचार परमो धम' जस सिद्धांत का महत्व समझाकर जनता म धम क प्रति आस्था निर्माण की।

'दत्तात्रेय' समवय का प्रतीक होने स इस सप्रदाय म जिस प्रकार गव और वैष्णव परंपराका का समवय हा चुका था उसी प्रकार हिंदू मुसलमाना क ममवय का भी प्रयत्न हुआ। इस प्रयत्न का मूलारभ श्री नरसिंह सरस्वती के चरित्र म मिलता है। उनके पश्चात् जनादन स्वामी और एवनाथ के समय दत्तापासना की पात्र भूमि पर हिंदू मुस्लिम समवय का प्रयत्न हुआ। जनादन स्वामी के गुरु चाण बोधले सूफी के कादरी उपपथ के ध और चाद बाघल का एक मुसलमान शिष्य शेख महम्मद मराठा भाषा म योग और भक्ति के विवरण ग्रथ लिखता था। जनादन स्वामी की दत्त भक्ति का प्रभाव मुसलमानों पर, मुस्लिम गासको पर भी रहा। उस समय सरकारा छुड़ा मुकवार के स्थान पर गुरुवार को दी जान लगी। माणिक प्रभु के मवत मन सप्रदाय मे मुसलमानों को सख्या अधिक थी परंतु समवय का यह प्रयत्न अनेक कारण स असफल रहा। मुसलमान इस सप्रणय की ओर आपिन होत थे उमका वाम्बवित कारण नत्व ज्ञान जयवा सप्रदाय क प्रति प्रभ न हाकर दत्तापासक सिद्ध पुरुषा क चमत्कार था।^१

नरसिंह सरस्वती के समय की महाराष्ट्र की धार्मिक स्थिति देखने टूण यह मानना पटना है कि उनका वरिष्ठ धम क पुनरुज्जावन का काय जत्यत प्रसन्नोय था। यद्यपि दत्त-सप्रदाय ने समवयामय भूमिका दी थी फिर भी उनके प्रमाणग्रथ गुरुचरित्र को पढ़ने से स्पष्ट हा जाता है कि वारकरी सप्रदाय की भक्ति इनका दष्टि योग विगान न था। उसने ब्राह्मण वग के उन्नयन का ओर ही अधिष्ठ ध्यान लिया था। पनस्वरूप जन साधारण क मन म वारकरी सप्रदाय की तरह इसके प्रति जाभायता निर्माण न हो सकी।^२

दत्त सप्रदाय की परंपरा म महाराष्ट्र क सुप्रसिद्ध सत एवनाथ का नाम भी गिनाया जाता है। यद्यपि वे गुरु परंपरा से दत्तपंथी ध किर ना ममवयकारा वारकरी सप्रदाय को ही इहान अधिष्ठ महत्व लिया था। एवनाथ क भक्ति म दत्त सप्रदाय वारकरी पथ तथा पठण की वरिष्ठ परंपरा का उत्तम समवय गिनायी दया है।^३ महाराष्ट्र क धार्मिक एक साम्कृतिक पुनरुत्थान क सवधप्रष्ट प्रतिनिधि क

१ हिंदी की मराठी सतों की दन—३१० विनयमोहन गर्भा प० ७६ ७८

२ दत्त सप्रदायाका इतिहास—२१० वि० दर पृ० १०४ १०५

३ सत षाड मयाची सागाजिक फलश्रुति—प्रा० गा० बा० सरदार, प० ११८

४ प्राचीन मराठी षाडमयाचे स्वरूप—प्रा० दू० थी० गोपालाकर पृ० १२०

रूप में एकनाथ की ओर दखा जाता है। स्त्रिरधना, सौजन्यता, समता, दयानुता, औदाय आदि गुण विशेष के साधक एकनाथ महाराज को दत्तसप्रदाय की विषमता तथा वृणाभिमान पमद न था। अतः दत्त सप्रदाय में पूणत समरस न होकर उहाने समदयनील वारकरी पथ का पुनगठन करने का काम प्रारम्भ किया। सत नामदेव के पश्चात् वारकरी सप्रदाय के काम की गति कुछ शिथिल हुई थी, उसमें एकनाथ तुकाराम जस उदारमतवादी महान व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होने में अधिक बल, चैतय, तथा स्थय उत्पन्न हुआ। वारकरी सप्रदाय के कारण महाराष्ट्र में दत्त सप्रदाय का प्रभाव यद्यपि अधिक न रहा तथापि 'यून्याधि' मात्रा में उसका प्रचलन रहा ही था। आज भी महाराष्ट्र में दत्तोपासन पाए जाते हैं।

समथ समप्रदाय

ईसा की सत्रहवा शताब्दी के मध्य में समथ रामदास ने 'समथ सप्रदाय' की स्थापना की। यह मुस्लिम साम्राज्यिकता के अतिरेक का बाल था। अपने 'परचक्र' निरूपण में समथ रामदास ने जनता की वारणिक स्थिति का बडा ही यथाय विन्न अंकित किया है। जनता अखड चिन्ता के प्रवाह में पडी हुई थी किसी को कोई भाग नहीं सूझता था। सत एकनाथ तथा तुकाराम ने महाराष्ट्र की जनता को उसकी दयनीय स्थिति का ज्ञान कराया था, और नयी आशा आकाशा का निमाण कर जन मानस में 'वचनतय' उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। इसी पार्श्वभूमि पर एकनाथ के द्वारा प्रतिपादित प्रपत्र परमाथ योप ही रामदास के वमयोग में परिणत हो गया।

समथ सप्रदाय में उपास्य दयता श्रीराम माने जाते हैं। वारकरी तथा ससथ सप्रदाय के तत्त्वज्ञान में विशेष अंतर नहीं दिखायी देना। दोनों सप्रदायों के मूल आधार भगवद्गीता, भागवत तथा योप वणिगठ—य तीन ग्रंथ हैं, परन्तु दोनों के आचारा में मात्र कुछ भेद है। रामदास के 'दासबोध' ग्रंथ का नित्य पाठ इस सप्रदाय के लोग करते हैं।^१ चाफर तथा सज्जनगड इनके प्रमुख तीर्थ क्षेत्र माने जाते हैं। इस सप्रदाय के प्रमाणग्रंथ 'दासबोध' में पूर्ववर्ती अय सनों की मानि अद्वैत का ही प्रतिपादन है। ससार में आत्मज्ञान ही सब विद्या का सार है। जीवात्मा परब्रह्म से अमिन है जा निगुण निरानार है। 'म रदृश्य का जानने का नाम ही आत्मज्ञान जयका अध्यात्म विद्या है। ब्रह्म एकचि अस्ति। परि तें बहुविन्न भासे' अथात् एक ही ब्रह्म भिन्न भिन्न रूप में भासमान होता है।

सपूण विश्व में परब्रह्म व्याप्त रहता है। परब्रह्म के सिवा भासमान होने का नाम रूप ही माया है। जीवात्मा के वस्तुत परमात्मा का स्वरूप हाथ पर भी माया

१ हिंदी को भराठी सत्ता की देन—डा० विनयमोहन गर्गा पृ० ७८

२ पांच सन्त कवि—डा० ग० गो० तुम्बुकर पृ० २६४

३ श्री समथ चरित्र—प्रा० न० २० पाटक (सम १६५१ ई०), पृ० २१०

के संबन्ध में रहता है और उन्हीं के संबन्ध में उमका 'सय' हो जाता है।^१ 'गुरुचरित्र' इस संप्रदाय का प्रमाण पत्र माना जाता है जिसमें आचार धर्म का विस्तृत व्याख्या की गयी है। सरस्वती भगवन्, दासोपत एवनाथ सुकन्दर इसी संप्रदाय के थे। नरसिंह सरस्वती ने 'धर्मो रक्षति रक्षित' तथा आचार परमो धर्म जैसे सिद्धांतों का महत्त्व समझाकर जनता में धर्म के प्रति आस्था निर्माण की।

'दत्तात्रेय सम्बन्ध' का प्रतीक होने से इस संप्रदाय में जिस प्रकार गुरु और वैष्णव परंपराओं का सम्बन्ध हो चुका था उसी प्रकार हिंदू मुसलमानों के सम्बन्ध का भी प्रयत्न हुआ। इस प्रयत्न का मूलारम्भ श्री नरसिंह सरस्वती के चरित्र में मिलता है। उनके पश्चात् जनादन स्वामी और एकनाथ के समय दत्तोपासना की पार्श्व भूमि पर हिंदू मुस्लिम सम्बन्ध का प्रयत्न हुआ। जनादन स्वामी के गुरु चाण् वाघल सूफी के कानूरी उपपथ के थे और चाण् वाघल का एक मुसलमान गिफ्त गैल महम्मद मराठा भाषा में योग और भक्ति के विवरण ग्रन्थ लिखता था। जनादन स्वामी की दत्त भक्ति का प्रभाव मुसलमानों पर मुस्लिम नामक पर भी रहा। उस समय सरकारी छूटा चुनवार के स्थान पर गुरुवार को दी जान लगी। माणिक प्रभु के सफल मत संप्रदाय में मुसलमानों की संस्था अधिक थी परन्तु सम्बन्ध का यह प्रयत्न अनेक कारणों से असफल रहा। मुसलमान इस संप्रदाय की ओर आपत्त हाव से उमका वास्तविक कारण तत्त्व ज्ञान जयवा संप्रदाय के प्रति प्रेम न होकर दत्तापासक सिद्ध पुण्या के चमत्कार था।^२

नरसिंह सरस्वती के समय की महाराष्ट्र की धार्मिक स्थिति दत्त द्वारा यह मानना पड़ता है कि उनका अति धर्म के पुनर्जावन का कार्य अत्यंत प्रामाणिक था। यद्यपि दत्त संप्रदाय ने सम्बन्धवात्मक भूमिका दी थी फिर भी उनके प्रामाणिक गुरुचरित्र को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वारकरी संप्रदाय की भांति इनका अष्टि कोण विनाश न था। उसने ब्राह्मण वर्ग के उनयन की ओर ही अधिक ध्यान दिया था। फलस्वरूप जन साधारण के मन में वारकरी संप्रदाय की तरह इसका प्रति आभोग्यता निर्माण न हो सकी।^३

दत्त संप्रदाय की परंपरा में महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सत एवनाथ का नाम नगिनाया जाता है। यद्यपि वे गुरु परंपरा से दत्तपथीय थे फिर भी सम्बन्धकार वारकरी संप्रदाय का ही महान अधिक महत्त्व दिया था। एवनाथ के व्यक्तित्व में दत्त संप्रदाय, वारकरी पथ तथा पठन का क्विं परंपरा ना उत्तम सम्बन्ध निर्मापी बना है।^४ महाराष्ट्र के धार्मिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि के

१ हिंदी की मराठी सन्तों की दत्त—डा० विनयमोहन गर्मा पृ० ७६ ७८

२ दत्त संप्रदायाचा इतिहास—रा० चि० डर पृ० १७४ १७५

३ सत वाङ्मयाची सामाजिक फलधुति—प्रा० गा० बा० सरदार पृ० ११८

४ प्राचीन मराठी वाङ्मयाच स्वरूप—प्रा० द० धी० गोणोलीकर, पृ० १२०

रूप में एकनाथ की ओर देखा जाता है। स्निग्धता, सौजन्यता, समता, दयालुता, औदार्य आदि गुण विशेष के साधक एकनाथ महाराज को दत्तसंप्रदाय की विषमता तथा वृणाभिमान पसंद न था। अतः दत्तसंप्रदाय में पूणतः समरस न होकर उहाँके सम-व्यंगील चारकरी पथ का पुनर्गठन करने का कार्य प्रारंभ किया। सत नामदेव के पश्चात् चारकरी संप्रदाय के कार्य की गति कुछ क्षिप्त हुई थी, उसमें एकनाथ तुकाराम जस उदारमतवादी महान व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होने से अधिक बल, चतय तथा स्थय उत्पन्न हुआ। चारकरी संप्रदाय के कारण महाराष्ट्र में दत्तसंप्रदाय का प्रभाव यद्यपि अधिक न रहा तथापि 'युनाधिक मात्रा में उसका प्रचलन रहा ही था। आज भी महाराष्ट्र में दत्तोपासक पाए जाते हैं।

समथ समप्रदाय

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में समथ रामदास ने 'समथ संप्रदाय' की स्थापना की। यह मुस्लिम साम्राज्यिकता के अतिरेक का काल था। अपने परचक्र निरूपण में समथ रामदास ने जनता की कारणिक स्थिति का बड़ा ही यथायचित्त अंकित किया है। जनता अखंड चिंता के प्रवाह में पड़ी हुई थी किसी को कोई मांग नहीं सूझता था।^१ सत एकनाथ तथा तुकाराम ने महाराष्ट्र की जनता को उसकी दयनीय स्थिति का ज्ञान कराया था, और नयी जाशा-आशा का निमाण कर जनमानस में उद्वेग उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। इसी पार्श्वभूमि पर एकनाथ के द्वारा प्रतिपादित प्रपञ्चपरमाथ याग ही रामदास के जन्मयोग में^२ परिणत हो गया।

समथ संप्रदाय के उपास्य देवना श्रीराम माने जाते हैं। चारकरी तथा समथ संप्रदाय के तत्त्वज्ञान में विशेष अंतर नहीं दिखायी देता। दाना संप्रदाय के मूल आधार भगवद्गीता भागवत तथा योग वसिष्ठ—य एतान् ग्रन्थं परन्तु दोना के आचारों में मात्र कुछ भेद है। रामदास के 'दामवाध ग्रन्थ का नियम पाठ इस संप्रदाय का जोष वस्तु है।^३ चाफन तथा सज्जनगड, इनके प्रमुख तीर्थ क्षेत्र माने जाते हैं। इस संप्रदाय का प्रमाण ग्रन्थ दासबोध में पूर्ववर्ती अथ सनो की भाँति अद्वैत का ही प्रतिपादन है। ससार में आत्मज्ञान ही सब विद्या का सार है। जीवात्मा परब्रह्म से अभिन्न है जो निगुण निर्गुण है। इस रहस्य को जानने का नाम ही आत्मज्ञान अथवा अध्यात्म विद्या है। ब्रह्म एकवि अस्ते। परित्तें बहुविध भासे अयात् एक ही ब्रह्म भिन्न भिन्न रूपां में भासमान होता है।

संपूर्ण विश्व में परब्रह्म व्याप्त रहता है। परब्रह्म के सिवा भासमान होने वाला नाम रूप ही माया है। जीवात्मा का वस्तुतः परमात्मा का स्वरूप हान पर ही माया

१ हिंदी की मराठी सत्ता की देन—डॉ० विनयमोहन गर्गा, पृ० ७८

२ पांच सत वधि—डॉ० श० गो० तुक्पुङ्ग प० २६४

३ श्री समथ चरित्र—प्रा० न० २० फाटक (सन १६५१ ई०), पृ० २१०

तथा अविद्या के कारण उसे आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता। इसलिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि द्वारा उपासना कर उसको प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इस तरह जीव ब्रह्म, माया, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नवधाभक्ति आदि का पूव परंपरागत अद्वैत तत्वज्ञान ही उठाने दासबोध के द्वारा बताया।^१ यद्यपि तत्त्वा की दृष्टि से उनमें अंतर नहीं दिखायी देता फिर भी सुबोध एवं सरल मराठी भाषा, सुगमता की दृष्टि, विस्तार पूर्वक तथा सोदाहरण विवेचन पद्धति आदि के कारण अगम्य, अतक्य तथा गूढ़ समझे जाने वाले तत्वज्ञान का प्रत्यय तथा आनंद सामान्य जनता भी समझ रामदास के दासबोध द्वारा ले सकी।

समय रामदास एक अद्वितीय महापुरुष थे। आठ वष की अवस्था में ही उन्होंने गृहत्याग किया था और बारह वष अध्ययन तथा तपश्चरण किया। उसके पश्चात् एक तप के रूप में संपूर्ण भारत वष की यात्रा की। उस यात्रा में दश-नाल स्थिति का उन्होंने सनकनास निरीक्षण किया था। और अपने जीवन ध्येय को निश्चित कर कृष्णा नदी के किनारे गारे नामक स्थान पर अपन संप्रदाय की स्थापना सन १६४४ में की। घनुधारी रामचंद्र तथा हनुमान की उपासना के माध्यम से महाराष्ट्र का बलापसना की दीक्षा दी। विभिन्न स्थानों पर मठा की स्थापना की। अपने असह्य शिष्या को संगठन के काम की उच्चि दिशाएँ समझा दी। परमाय का प्राप्त करने के लिए मानसिक कृतव्या की भूजने की आवश्यकता नहीं है, निष्क्रिय दवधान तथा उत्पत्तीनता के विशुद्ध प्रवृत्ति परव प्रयत्नवाद जनता में निर्माण करने का काम प्रारंभ किया। "हाव ब्रह्मांडाहुन जाऊ अथवा उत्कट, भय तेंचि घ्याव एमी प्रबल महत्वादांशाएँ गंगाजाली उतिया के साकार जनता पर सदैव किये गये। अत्याय, अत्याचार तथा अविद्वान के प्रति लोग के मन में घृणा का भाव पैदा किया। उद्धराती व्हावे उद्धर अयात गठ प्रति गाठयम जस मंत्रदाय में जनमानस में प्रतिकार की शक्ति उत्पन्न कर मज्जम, साक्षार, सद्विवन स्वराज्य आदि के प्रति ममत्त्व की भावना जगायी। एमी काय के लिए समय रामदास 'महाराष्ट्र धर्म गान' का प्रयोग करते थे।

समय-संप्रदाय महाराष्ट्र में बारहरी संप्रदाय की भांति बहुत ही लोकप्रिय रहा। महाराष्ट्र में रामनामी-मठा का संस्थापक है। जयगम स्वामी रमनाथम्बाधी केन्द्र स्वामी तथा आत्मभूति इन चार महानुभावों ने इस संप्रदाय को सुन्दर रूप प्रभावा करने में समय रामदास का मन्थान किया था। शीतल रामदास सहित इन चारों गिरीशों के मित्राकर दास परासन की सेवा दी गयी थी। महाराष्ट्र के जीवन में एक दृष्टि में इस संप्रदाय का बहुत ही महत्व माना जाता है। रामदास के नेतृत्व में सन्तति इसी संप्रदाय के माध्यम में उस समय की जनता में सारनाति, ब्रह्मचर्य प्रवर्धनशक्ति तथा शक्तिवात् जति बानें निर्माण की गया और 'निव-समय'

के योग में मुस्लिम सामन काल के अधकारमय वातावरण को हटाकर स्वातन्त्र्य-मूलक दान महाराष्ट्र कर मका ।

रामदास स्वामी के पश्चात् इस संप्रदाय का प्रभाव विलोप न रहा । उनके कई वारण बताय जाते हैं । समय रामदास की भाँति नेतृत्व करने वाला नेता भविष्यत् में इसे नहीं मिला । अथ संप्रदाय की तरह इसमें भी मूल सिद्धान्तों की अपेक्षा आचारा का महत्त्व बढ़ने लगा । उत्सव प्रियता बढ़ने लगी । पिप्या म आपस म कई बार एकमत न होता था । स्वातन्त्र्य प्राप्ति होने से १८वीं शताब्दी में वातावरण में भी परिवर्तन हुआ था । संभवतः इहा कारणों से समय संप्रदाय भविष्यत् में प्रभावी न रहा होगा ।

विध्वंसन में स्पष्ट हो जाता है कि महाराष्ट्र में समय की आवश्यकतानुसार अनेक संप्रदायों का निर्माण हुआ । प्रत्येक संप्रदाय के सम्स्थापक ने अपने असाधारण, अलौकिक व्यक्तित्व में तत्कालीन जनता को प्रभावित किया जिससे महाराष्ट्र की जनता पर अखण्डित रूप से धर्म के संस्कार पनपते रहे । यद्यपि इनमें से अधिकांश संप्रदायों का प्रसार प्रभाव आगे चलकर नहीं भी रहा फिर भी यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उनसे संस्कार तथा परंपराएँ नष्ट न हुई थीं । दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी रही कि महाराष्ट्र के अधिकांश संप्रदायों के सत्ता न धार्मिक धर्म के आचार विचार की स्वतंत्रता का आग्रह किया है । वण व्यवस्था के भीतर रहकर आत्मज्ञान की प्राप्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया । उनका 'जडन भक्ति' में सिक्न है ।

१४ | रीतिकालीन मराठी साहित्य

शिवाजी से पूर्व अर्थात् बहमनी शासनकाल में यात्रिककालीन मराठी भाषा का शुद्ध स्वरूप मिट सा रहा था। एक ओर शासनकलाओं की फारसी भाषा की जबरदस्ती हो रही थी तो दूसरी ओर प्राचीन परंपरा के अभिमानियों ने गीर्वाण भारती संस्कृत का दुराग्रह करना प्रारंभ किया था। इस्लाम का आक्रमण एक अभूत पूर्व घटना थी। उससे न केवल महाराष्ट्र का राजकीय स्वातंत्र्य ही नष्ट हुआ अपितु धर्म संस्कृति तथा मराठी भाषा पर भी विपत्ति आई। परतंत्रता में स्थानीय भाषा की जिनकी दयनीय स्थिति हो सकती है यह देखन के लिए सप्तर के इतिहास में अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। यह सत्य है कि विजित लोगों की भाषा विजेताओं की भाषा के अत्यधिक प्रभाव के कारण नष्ट प्रायः हो जाती है। सन् १३१८ से १५२६ ई० तक मराठी भाषा भी इसका अनुभव कर रही थी। फारसी शब्दों तथा प्रयोगों का प्रभाव जब तक मराठी भाषा पर हो रहा था तब तक उसके अन्त स्वरूप को उतना भय न था परन्तु जब सम्बन्ध सूचक, समुच्चयबोधन अथवा, विभक्ति प्रत्ययों आदि तथा फारसी के उच्चारणों का मराठी भाषा में समावेश होने लगा तब घिटा उत्पन्न होने लगी।

तीन सौ वर्षों के सप्तर के कारण शिवाजीकाल के पूर्वार्ध में मराठी भाषा लगभग फारसी में बनी हुई दिखायी देती है। उसकी मूल प्रकृति के चिह्न तब दिखायी न दते थे।^१ अतः मराठी भाषा के अस्तित्व के बारे में भी आशंका होने लगी परन्तु सत्रहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में जो राज्यशांति हुई उससे यह सब कुछ बच न सका। इतिहासाचार्य राजवाड़े का कथन है कि यदि यह राज्यशांति न हो पाती तो मराठी उड़ू या फारसी बन जाती। महाराष्ट्र की तरह उत्तर भारत में मुस्लिम शासनकाल के प्रारंभ से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक कभी भी शांति न होने के कारण ही हिन्दी भाषा का रूपांतर उड़ू में हुआ। हिन्दी पर उड़ू या फारसी का प्रभाव जमान ही लगा था कि इतने में मराठी की राज्यशांति ने मुसलमानों से सत्ता संस्कृति और भाषा इन सभी को

घरना द िया, जिसे भारत की सभी भाषाएँ बचनमुक्त हुई । यदि आज तर उत्तर भारत म मुसलमाना का राज्य रहा होता तो सिंधी, पंजाबी, हिंदी, मारवाडी, बंगला, गुजराती, मयिली, उडिया आदि भाषाओं की अत्यंत दयनीय अवस्था हो गई होती ।^१ अत इम दृष्टि स मराठी की राज्यक्रांति महत्वपूर्ण ही रही ।

मराठी भाषा का विकास

छत्रपति शिवाजी महाराज के नेतृत्व म जो राज्यक्रांति हुई उससे स्वयं और स्वयं के साथ-साथ स्वभाषा को भी सुरक्षण मिला । गीर्वाण चाणी समृद्ध के प्रति पूण आदर रखते हुए भी यहाँ के साथ सता ने मराठी भाषा का पुरस्कार किया । उनकी दृष्टि विनाल एव उदार थी । समाज को प्रबोधन देने वाला अमूल्य ज्ञान भंडार के एसी भाषा म रखना नहीं चाहत थे जिसे इने पिये लोग ही जानत हो । अत जन साधारण की सहज, सुलभ मराठी भाषा मे उस ज्ञान भंडार को उछाल देने का प्रयत्न उद्दान किया । सत ज्ञानेश्वर ने बड़े ही आत्मविश्वास के साथ श्रीमद्भगवद्गीता पर आधारित 'ज्ञानेश्वरी' जैसे अमूल्य मराठी ग्रंथ का प्रणयन कर ससृष्ट पंडितो का अभिमान नष्ट किया । समृद्ध भाषा का प्रभुत्व नष्ट कर प्राकृत भाषा म ग्रंथ रचना करने का प्रवृत्ति न केवल महाराष्ट्र म ही सिखायी देती है बल्कि संपूर्ण भारत भर म इसका प्रचलन सिखाया देता है ।

महाराष्ट्र म मुकुंदराज ज्ञानेश्वर, नामदेव एवनाथ आदि सता न समृद्ध भाषा के गुरु ज्ञान भंडार का जनसाधारण के हिताय मराठी म प्रवाहित करने की जिस प्रयत्नाय परम्परा का निमाण किया उसी को जाते चलकर तुकाराम, रामदास, चामन पंति, मुक्तेश्वर श्राधर, मारापत आदि सता तथा कवियों न गतिमान शिवा जिससे मराठी साहित्य को समृद्ध होने म सहायता मिली । इसी प्रकार उत्तर भारत म भी दबीर, मुरदास, तुलसीदास आदि सता न समृद्ध के रूपजल को हिंदी के 'बहते नीर' मे प्रवाहित किया और यही परम्परा भविष्यत म भी जारी रही । यही परम्परा भारत की विभिन्न भाषाओं म भी दिवायी देती है । शिवज्वाल म मराठी भाषा तथा साहित्य का राजाश्रय प्राप्त होने से उसके विकास म एक प्रकार की गति सी आ गयी ।

✓मातभाषा मराठी के प्रति भी इन राजाओं म पूण आदर तथा प्रेम था । स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराज ने रघुनाथपत हणमते का आना देकर 'राजव्यवहार काग' निमाण कराकर मराठी भाषा को समृद्ध किया । इससे नित्य व्यवहार मे अरबी फारसी शब्दो को जो बहुलता थी वह नष्ट हुई और उसके स्थान पर मराठी शब्दो का उपयोग किया जान लगा । एक बात विशेष द्रष्टव्य है कि इसमे कुछ समृद्धोद्भव हिंदी शब्दो का भी समावेश था ।^२ पेशवा मजमुआदार, वाकियानवीस शुहाबीम दबीर,

१ ऐतिहासिक प्रस्तावना, भाग १—वि०का० राजवाडे (सन १९२८ ई०), पृ० ४१३

२ शिवचरित्र प्रदीप—द० वि० आपटे और स० म० दिवेकर (सन १९०५ ई०), पृ० १७६

सर ए नौबत, सदर और मुहत्सिब बाजी उल कुजात इन फारसी नामों के स्थान पर नमश मुख्यप्रधान, अमाय मंत्री सचिव, मुमत सेनापति, दानाध्यक्ष या पन्तिराव तथा यायाधीश जैसे संस्कृत या तत्सम मराठी शब्दों का प्रचलन राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में गुरू किया गया था।^१

छत्रपति शिवाजी महाराज के समय मराठी भाषा को अरबी फारसी के प्रभाव से मुक्त कर उसका निजी रूप देने का जो प्रयत्न प्रारम्भ हुआ वह शाहू महाराज के समय तक चला। छत्रपति शाहू महाराज का प्रारम्भिक जीवन मुगलों का कैद में बीता और अंत में उन्हीं की कृपा से उनकी मुक्ति हुई। अंत में मुगलों के प्रति उनके मन में द्वेष न था। पेशवाजी ने लगातार उत्तर में अभियान शुरू कर मराठा साम्राज्य बढ़ाना शुरू किया था। उस समय उन्हें सुविधा के लिए कई बार हिंदी उर्दू शब्दों का उपयोग करना पड़ता था। भाषा की शुद्धता पर ध्यान देना उन्हें उतना आवश्यक न लगा। मराठी पंडित कवियों की भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ तथा सामान्य जनता के लिए दुर्गोच सी हानि लगी थी। परिणाम यह हुआ कि जनसाधारण को इस दुर्गोच भाषा के प्रति आकर्षण न रहा और बहमनी राज्य में जिस तरह अरबी फारसी शब्दों की बहुलता थी उसी तरह शाहीरा की लाबतियों पोवाडों तथा दरबारों भाषा में फिर से वह दिखायी देने लगा।^२ अथ भाषाओं के गढ़ा का समाविष्ट कर मराठा भाषा एक दृष्टि से अधिक संपन्न तथा समृद्ध हो गयी।

मराठी साहित्य की बभ्रवशाली परंपरा

यादव साम्राज्य के पतन के पश्चात् सत्त एकनाथ के समय तक का काल लख मराठी साहित्य का तमोयुग माना जाता है।^३ स्वान्यापहरण और तमूलक राजनीतिक परिवर्तन जैसे आधिभौतिक संकट के साथ ही साथ दूसरी एक आधिदिविक विपत्ति महाराष्ट्र के सामने लड़ी हुई। यह विपत्ति थी चौदहवीं शताब्दी के अंत का दुर्गादेवी का भयानक अकाल। दुर्भाग्य से बारह वर्षों तक इस अकाल की जड़पा महाराष्ट्र की जनता पर रही। इस काल में समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी।^४ ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी चामा मत्स्य जयस्वामी नामपाठाक, बहिरा, जतवन्, भानुदाम, सरस्वती गंगाधर इत्यादि कवियों ने जो ग्रंथ रचनाएँ कीं वे मराठी मनास्त्रिका मत्स्य जयना दिखान के लिए पर्याप्त हैं।^५ मराठी साहित्य की स्थिति तथा स्वयं एकनाथ

१ शिवाजी—सर यदुनाथ सरकार पृ० १६३

२ मराठी भाषा उद्गम व विकास—पृ० ५१० कुलकर्णी (सन १९५७ ई०) प० २३५

३ मराठी वाङ्मयानिस्तोत्र जिह्गमाबलोचन—प्रा० रा० श्री० चोग (सन १९५६ ई०) प० ८०

४ मराठी भाषा उद्गम व विकास—पृ० ५१० कुलकर्णी पृ० २०७

५ महाराष्ट्र इतिहास दगन—रा० चि० डेरे और मा० दा० सर पृ० ५२

दासोपत के समय प्राप्त हुआ। ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पूनाथ की खटित परम्परा एकनाथ बाल स पुत्र प्रारंभ हुई।

एकनाथ के पूर्व मराठी साहित्य में शात, भक्ति तथा वास्तव्य इन तीन रसा में ही अधिकांश रूप में अभिव्यक्ति पायी जाती थी परन्तु एकनाथ ने शृंगार, वीर, वरुण हास्य इन लौकिक रसों का अपने कथात्मक एवं जनपदीय काव्यों में परिपोष कर मराठी काव्य की एकान्ती प्रवृत्ति नष्ट की। कथा ग्रन्थों के रूपको के माध्यम से अध्यात्म विषयक विचारों का भी उन्होंने समन्वय किया। एकनाथ द्वारा दिग्दर्शित साहित्य की इस नयी दिशा से अनेक साहित्यकार प्रभावित हुए। 'ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में महान तथा श्रेष्ठ कवियों की जो बमबशाली परम्परा मराठी साहित्य में मिलती है उनके वास्तविक सूत्रधार युग प्रवर्तक साहित्यिक सत एकनाथ ही थे।'

साहित्य की विभिन्न शैलियाँ

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लगभग दो सौ वर्षों का यह कालखण्ड मराठी साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का माना जाता है। भांगला शासन का समय भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। इस काल खण्ड के साहित्य में भौतिक उत्थप का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। मराठी साहित्यकारों ने अपनी बहुमुल्य प्रतिभा से साहित्य की विभिन्न शक्तियों का प्रयोग कर साहित्य का समुन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न किया। इस काल के साहित्य को प्रमुख रूप में टीका वाङ्मय कथा-काव्य, चरित्र काव्य, गीति काव्य, प्रबंध-काव्य पञ्चिका व गालीरी काव्य तथा गद्य साहित्य इन विधाओं में विभाजित किया जा सकता है। विस्तार भय के कारण प्रत्येक विधा का अतिसम्पिप्त परिचय ही दिया जा रहा है।

टीका वाङ्मय—साहित्य की विभिन्न शक्तियों के प्रचलन तथा परंपरा का विकास इसी काल खण्ड में दिखायी देता है। पालित्यपूर्ण टीका वाङ्मय की प्राचीन परंपरा ज्ञानेश्वर, दामोदर, निवृत्त्याण रामानन्दभक्त, शामाराध्य, रघुनाथ भोतरकर आदि कवियों द्वारा पोषित हुई उसका परमोत्कर्ष दामन पञ्चिका 'यथाथ दीपिका' में दिखायी देता है। प्राचीन टीका ग्रन्थों की त्रुटियों ध्यान में रखकर श्रीमदभगवद्गीता के अर्थ की यथायथा 'तता' के सामन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उन्होंने २२२६६ ओविया जस छाना में प्रचंड ग्रन्थ का प्रणयन किया।^१ गीता के केवल सान सौ श्लोकों के आधार

१ प्राचीन मराठी वाङ्मय का स्वरूप—प्रा० ह० श्री० गेनालीकर (सन १९६२ ई०), पृ० १३६

२ मराठी साहित्याची रूपरेखा—डा० धि० पा० वाडेकर (सन १९५२ पृ०), पृ० १३५

पर लगभग याइस हजार ओविषा म विरगिता 'यथाय दापिता' जम विद्वत्ताप्रचुर टोका काव्य म कवि का आस्त्राप्ययन म्मनि पुराणादि का ध्यामग तन्गुदुचुडि, मतविपयक आत्मविदवाग, स्पष्ट तथा निभय वृत्ति आदि क यथाय दगन हान हैं। वामनपण्डित के काव्य म विविधता, विपुलता तथा विरग्धना पर्याप्त मात्रा म पायी जाती है। वेदांत विषयन पुराण आस्थानपरक तथा अनुवाग्नि—इस प्रकार उनके समग्र ग्रथो का विभाजन किया जायगा। अस्थान-काव्य की परपरानो अपनी वनात्मक निवेदन पद्धति से इन्होंने विगोप लोकप्रिय बनाया था।

कथा काव्य—कथा-काव्य या आस्थान काव्य की गौली का प्रारम्भ यद्यपि एकनाथ के 'रामिणी स्वयंवर' से माना जाता है फिर भी उसका चरम विकास रघुनाथ पंडित नामक कवि के 'दमयती स्वयंवर' में देया जा सकता है। केवल 'नल-दमयती नामक एक ही काव्य ग्रंथ के बल पर रघुनाथ पंडित आस्थान-काव्य परंपरा म अमरता पा गय। उनके नाम पर 'गजेंद्र मोघ' तथा 'रामदास स्तोत्र' इन दो अन्य काव्या का भी उत्पन्न मिलता है परंतु काव्य की दृष्टि म क रचनाएँ विगोप नहीं हैं। मगाराष्ट्र के आबात बडा के मुग्य स 'नल दमयती के 'त्रोत्र आज भी सहजता से मुखरित हान हैं। 'सन सया के दोहरे के समान यह काव्य छोटा होने पर भी रसिको क हृदय पर 'गभीर घाव अवग्य करता है। उहोने इस काव्य को जोवी जैसे साधारण छत्र म न लिखकर गादू लखिनीडिन वसतनितका गिखरिणी मालिनी द्रुतविलम्बित अस अनेक गेय यत्ता म त्रिलो।' समग्र काव्य मे सस्वृत गात्र भडार का प्रयाग कम ही किया गया है। शृंगार तथा कृष्ण जस लोकिक रसों का परिपोप करने क लिए नल दमयती के समान मानवी प्रेम कथा को चुनने मे कवि की चतुरता कल्पनाशक्ति तथा मौलिकता त्रिवाइ देती है।

इस आस्थान-काव्य प्रणाली मे मुक्तेश्वर कवि न कला गुणा की दृष्टि से श्रेष्ठत्व निमाण किया तथा कथा काव्य की विपुल रचना तथा आकषक निवेदन पद्धति के द्वारा कथा-काव्य की प्रणाली को लोकप्रिय बनाने का श्रेय वामनपंडित को दिया जाता है। अत एक दृष्टि से एकनाथ मुक्तेश्वर तथा वामन ये तीनों इस प्रणाली के प्रणेता माने जाते हैं। फिर भी इस परंपरा का वास्तविक उत्कष रघुनाथ सामराज नागग विटठन तथा आनन्तनय जादि पंडित कविया ने ही किया।

चरित्र काव्य—केवल 'सत चरित्र' क लेखन म एक निष्ठा से संपूर्ण जीवन यतीत कर भक्ति विजय, सत लीलामत भक्तलीलामत तथा सतविजय (अपूर्ण) जैसे चार चरित्र ग्रथा का प्रणयन महिपति ने किया। उहोने मन १७६२ स १७८६ ई० के बीच म इन चरित्र ग्रथो का निमाण कर मराठी साहित्य के चरित्र वाङ्मय को समद्ध किया।

'मत् चरित्र' लखन की परंपरा मराठी साहित्य म मच्चिदानंदबाबा, नामदेव इत्यादि के समय म मिलता है तथाकि उनके चरित्र नाव्य म एवाध दूमरे सता के ही चरित्र पाय गान हैं। मच्चिदानंद बाबा ने चानेश्वर का चरित्र लिखा था। नामदेव के 'तीर्थावलीख अभंग म चानेश्वर तथा उनके वधुआ के चरित्र देने जा सकते हैं। बाजीराव प्रथम के आश्रित कवि निरञ्जन माधव ने विविध साहित्य निमित्त के साथ चानेश्वर विजय' जैसे चरित्र ग्रंथ का भी प्रणयन किया। परन्तु एक ही ग्रंथ म अनेक सता के चरित्र एकत्रित करने की स्फूर्ति मराठी कवियों को नाभाजी के 'भवतपाल' नामक हिंदी काव्य मे ही मिली जिसम चानेश्वर नामदेव आदि इन मराठी सता तथा महाराष्ट्रीयैतर अनेक सता के चरित्रों की सामान्य रूप रेखा है।

नाभाजी के गिण्य प्रियादास ने (शक १६३५) सत् चरित्र पर 'भक्तिरस बोधिनी' नामक हिंदी ग्रंथ लिखा। इन दोनों ग्रंथों से उद्धवचिदम्बन दासोद्विगवर, महिपति बुवा आदि को प्रेरणा मिली। महिपति के ग्रंथों म भी इसी मत की पुष्टि मिलती है। 'भक्तिरसबोधिनी' इस हिंदी ग्रंथ की मराठी टीका भगवण्ड बुवा नामक कवि ने लिखी जो 'भक्तिप्रभास' इस नाम से प्रसिद्ध है। महिपति क पश्चात् सन १७६८ के आनयाम भीमश्यामी का 'भक्तनीलामन' तथा सन १८२४ के आसपास राजाराम प्रसादी की 'भक्तिमजिरी' च दो ग्रंथ विनोप उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त मत चरित्रों म 'भक्ति मजिरी' इस चरित्र ग्रंथ का स्थान उच्च कोटि मे माना जाता है।

गीतिकाव्य—गीत काव्य के अतगन कवियों की अभगवाणी तथा पद-रचना का समावग हो जाता है। अभग रचना का परंपरा का तुकाराम की अभग वाणी म चरमोक्त्य हुआ, वह भी इसी काल मे। एरुनाथ दामोपन, रमावल्लभदास, मधुमुनि, जमनराय विवन्नि केसरी आदि कवियों की पदरचनाओं म आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति का विलास दिवायी दना है। कीमलकान्त पदावती के माधुय के कारण भी वे अधिक लोक प्रिय बन हैं। तुकाराम की अभग परंपरा को उही के शिष्य निलोबा पिपलनेरकर तथा बहिंगा बाई न अपनी रचना की सरमता, उत्कटता तथा मधुर भाषा से अधिक ही लोकप्रिय किया।

सन एकनाथ द्वारा पुरस्कृत लोक साहित्य^२ क अनुकूल वातावरण भी इसी काल म (विनायक पतावाइ के उत्तरकाल मे) निर्माण हुआ। परिवर्तित साहित्य प्रवृत्तियों का दग्गन पगवावालीन पदरचनाकारों म मिल जाता है जिसकी चचा आगे होगी।

प्रथम काव्य—बहिरा पिसा जातवेध, विष्णुनासनामा कृष्णदास मुम्बल कृष्ण यानवल्की, मुक्तेश्वर आदि कवियों द्वारा सुगपन बनी हुई प्रबध्नायक काव्य गीतों का चरमविद्गु उत्तर पेशवाइ काल मे मारोपत कवि द्वारा निमित्त 'आषाभारत' माना जाता

१ मराठी साहित्याची रूपरेखा—डा० वि० पा० दाडेकर, पृ० १५५

२ पाच सत् कवि—डा० ग० गो० तुक्पुक, पृ० २६० (१९६२)

है। यह महाकाव्य समग्र हजार पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है। इस महाकाव्य का मधुर रचना की देखने पर ऐसा लगता है कि मोरोपत ने अपनी इस वाक कथा का नाम, विष अलंकारों में सजावर रमिका का उसका सालकृत कथागत ही कर लिया है।^१ यह महाकाव्य मोरोपत की समग्र काव्य रचना में श्रेष्ठ माना जाता है। मारापत की कवित्व शक्ति व संपूर्ण गुणों का विलास इसमें पाया जाता है। 'आर्याभारत विविध रसों का सागर है। उसमें मूषाभिपिन्न रस मात्र बीर रस ही है।'^२ मोरोपत कवि का काव्य-सागर अत्यंत विशाल तथा गहरा है। सन १७५२ से लेकर सन १७६३ तक के ४१-४२ वर्षों का काल उन्होंने प्रचंड प्रथ निमित्त में व्यतीत किया। इस दाघ कालावधि में उन्होंने विविध विषया तथा विविध शैलियों में काव्य रचना की। उनके कवन प्रकाशित काव्य मयूहों की पद सख्या ही लगभग साठ हजार तक है।^३ अप्रकाशित रचनाएँ तो और भी कितनी होंगी यह बहना नहीं जा सकता।

नामदेवादि मणिकविया में पाया जाने वाली ईश्वर वृषा विषयक उक्तता एतनाथ में दिखायी देने वाला गन्धर्वात्म्य की कस्तूर्य पूर्ति का समाधान, चामुण्डा पंडिता का पाण्डित्य निरञ्जनमाधवादिनों का रचना चानुप दासापतादिकों की प्रचण्डता गति पूनकालीन किसी भी अनुवादका ने अधिक प्रामाणिकता, महिपति के समान अगवच्छरित्र गायन में सामानीत रचि आदि अनक वशिष्टया का समाय मोरोपत में हुआ है।^४

पंडित कवि और काव्य—चामुण्डा पंडित से लेकर मोरोपत तक के सभी पंडित कवियों की काव्य निमित्त कलाविनाम तथा पाण्डित्य प्रमाण व हेतु स ही हुई। उनका काव्य को पंडित काव्य अथवा पत काव्य कहा जाता है। उनका काव्य रचना उत्कृत नहीं। वह आत्मनिष्ठ न हाकर विषयनिष्ठ थी। महाकाव्य सद्गुण प्रवधात्मक प्रमाण शाली ही उन्हें विशेष प्रिय थी। उपास्य दवता के चरित्र व विवाह युद्ध रतिशाला या रामश्रीडा जैसे लौकिक प्रसंगों को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया था जिसमें लौकिक रता का उनके काव्य में महत्व मित। आकषरता तथा वैचित्र्य निमित्त व निष्ठा उन्होंने मसृज व अंतर वक्तों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया। स्वयं काल कति का वषण कर तत्कालीन समाजभावों को अपने काव्य में प्रतिबिम्बित किया। जति गयोनि, कलाविषयान शृंगार का अनिरक बीनमता, भाषा में श्रास्य तथा अणु प्रयोग आदि दोष उनकी रचनाओं में दिखायी देते हैं। फिर भी वन कविपद, जनता

१ महाराष्ट्र सारस्वत—दि० त० ना० प० ६४

२ प्राचान मराठी वाड मयाचे स्थण्य—प्रा० प० धा० गणालाकर, प० २७४

३ मोरोपत चरित्र—स० त० पाणारर (प्रथम संस्करण) प० १६०

४ मराठी वाड मयाचा परामण्य—प्रा० ग० ना० निरतर (सन् १९४६ ई०)

प्राचुर्य, नादमाधुर्य, वणन कीर्तन, रचना सौष्ठव आदि विशेषताएँ भी इस 'पत काव्य' में दिखायी देती हैं। एक दृष्टि से इन बातों से मराठी का वस्तुनिष्ठ काव्य भ्रमण ही हुआ। उनकी भाषा संस्कृतप्रधान रहने से सामान्य जनता के लिए दुर्बोध-सी रही।

शाहिरी काव्य—मराठा शासनकाल के उत्तर खंड में शाहिरी काव्य समझावस्था में पाया जाता है। यद्यपि इसकी परंपरा महाराष्ट्र में प्राचीन काल में दिखायी देती है फिर भी यह साहित्य उस समय उतना प्रभावी न रहा होगा, जितना पेशवाइ के उत्तर काल में लोकप्रिय था। मभवत पंडिता के काव्य की प्रतिरिया के रूप में ही शाहिरी काव्य जैसे लोक गीतों की प्रणाली का आकषण जनता में रहा होगा। अनेक विद्वान इसी काव्य प्रणाली को 'महाराष्ट्र का वास्तविक साहित्य' भी मानते हैं। इस मन की अति शयक्ति का अशछोडने पर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि 'शाहिरी काव्य' में मराठी जनमानस को अभिन्यतन करने में पर्याप्त सफलता पायी है। छत्रपति शिवाजी महाराज ने मराठी शाहिरी को आश्रय देकर इस परंपरा को प्रोत्साहित किया। इस परंपरा को छत्रपति शाहू महाराज ने शाहिरी को भूमि वर्णना, हाथी, घोड़े आदि पुरस्कार^१ देकर अधिक गतिमान किया। बाजीराव द्वितीय तथा छत्रपति प्रतापसिंह भामन के समय शाहिरी को राजाश्रय तथा लोकाश्रय दोनों प्राप्त होने से शाहिरी काव्य प्रणाली परलविन तथा पुष्पित हुई।

इस काव्य में मुख्यतः दो प्रकार की शलिया समाविष्ट की जाती हैं। एक है पोवाडा और दूसरी है लावणी। पोवाडा विषयगत होता है तो लावणी विषयगत। पोवाडा वीरसंपूण है तो लावणी शृंगाररस प्रधान है। पोवाडों की तुलना में लावनिया की मय्या अर्थाधिक है। मराठी शाही के उत्त्वकाल के समय प्रारंभ में शाहिरी काव्य प्रणाली में जीवन का नया आशय व्यक्त किया। पोवाडा तथा लावनिया के माध्यम से मराठों का जन जीवन मुखरित हुआ।

सन कविया की तरह लगभग सभी शाहिरी ने मराठी के साथ साथ हिंदी में भी काव्य रचना की है। शाहिरी कविया में रामजोशी जैसे संस्कृत पंडिता से लेकर सगनभाऊ जैसे मुसलमानों का भी समावेश था। अनंतफदी होनाजीवाला, परशुराम, प्रभाकर, बालामयस रामजोशी सगनभाऊ गगुहेरती आदि समाज के विभिन्न स्तरों के शाहिरी ने जानपद या लोकगीतों की इस प्रणाली का उत्त्वप किया।

गद्य साहित्य

इतिहास को व्यक्त करने वाला व्यवस्थित गद्य साहित्य भी मराठी में शिवाजी बालोत्तर युग में ही निर्मित हुआ। इसके पूर्व भी मराठी साहित्य में यद्यत्त गद्य लेखन हुआ परंतु वह अव्यवस्थित एवं अपरिभाजित था। अपवादस्वरूप महात्माका का गद्य मराठी साहित्य के आद्य काल में ही लिखा गया था परंतु गुप्त सांकेतिक लिपि

की मजूपा में बढ होन स उसका अस्तित्व न ब धरावर ही था । गिवाजा काय क तथा तदुत्तर काल के राजनीतिक अथवा सामर्थीय पत्र व्यवहारा तथा बगरा म मराठी क गद्य का साहित्यिक स्वरूप गिवायी दना है । अरबी भाषा के 'बतर' इग ग' क घम विपय्य से 'बतर घ' की निर्मिति हुई हापी । गभासदी बगर (सू १६६७) लडोबल्लाल चिटणवीस का गिवदिग्विजय (गन १७१८) सन १८२६ म सदाजाराय गायकवाडी की आशा से लिगा हुआ 'श्री गिवाजी प्रताप वाकनीम-वृत ६१ कवमा बतर, मल्हारराववृत सप्तप्रकारणात्मक गिवचरित्र, तजावर क वनीश्वर मरि म प्राप्त गिलालेख के रूप म भागनगचरित्र गोवि लडेगववृत गारूमहाराज का बतर, चित्रगुण की पानिरनची बतर तथा वृष्णाजी गामराव की भाऊसाहेवाची बतर आदि म गद्य साहित्य मिलना है ।

भाऊसाहेवाची बतर' बतरवाट मय का सवधेष्ट नभूना माना जाता है । उम में लेखक ने व्यक्ति दान का उत्तम प्रयत्न किया है । प्रसगा क यणन म अनावयन विस्तार इसम नही है प्रत्युत नप मुल तथा प्रभावकारी ग न म उनका चित्रण किया है । इसम सुभाविता तथा समपक उपमाआ का भी प्रयोग उचित स्थाना पर किया गया है । फारसी तथा संस्कृत का याजना से भाषा म ओन्नगुण निमाण करने का प्रयत्न भी दिखाई देता है । भाषा प्रवाहमयी एव प्रौढ है । यद्यपि बीच बाच म अनिगपाकित अनिरजिता भाषागवित्य, तथा कहा कही ग्राम्यता भी गितायी दता है तथापि समकालीन पद्य साहित्य की तुजना म बगर कार की अभिगचि अधिक मुशितिन पौड तथा सयमगीत दिखायी दता है ।^१

भाषा तथा इतिहास दोना दष्टिया से बतर साहित्य की अपेक्षा एतिहासिक पत्र व्यवहार अधिक महत्वपूण है । पिछने ५० ६० वर्षों म अनुसंधान कताशा क परिश्रम से यह पत्र व्यवहार पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध हो चुका है जिनम स ताम स चालीस हजार पत्र प्रनागित हा चुके हैं । अप्रनागित पत्रों की सत्या नी कम नही है । मराठा शासक सरदार तथा राजनीतिन यनित पत्र लेखन की कला म प्रवीण रहते थे । उनके आश्रय म अनेक बुद्धिमान कल्पक व्यवहार चतुर तथा प्रसगावधाना पत्र लेखक रहते थे ।^२ पद्य की तुजना म इस गद्य साहित्य म मराठी भाषा पर फारसी उतू ग' का वाहुल्य सहज ही परिलक्षित होता है । कभी कभी तो तत्कालीन पत्रा म प्राप्त ५० ६० प्रतिगत फारसी उदू का दलकर सीमातीत आश्चय हान लगता है । यह प्रभाव या तो एन शली विनोप के रूप म अनायी गयी विगप प्रणाली क कारण होगा या महाराष्टतर प्रातो की जनता को यहा के इतिहास से अब त करान

१ मराठी वाड मयाभिरुचीच विहगमावलोकन—प्रा० रा० श्री० जोग प० १८६

२ प्राचीन मराठ वाड मयाचे स्वरूप—प्रा० ह० श्री० गेणोलीकर प० ३६३

के हेतु उद्देश्यपूर्वक नियोजित हिंदी उर्दू के शब्दा का परिणाम हो सकता है। इनमें म कुछ पत्र तो हिंदी भाषा में भी लिखे हुए मिलते हैं।

विवचन से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन मराठी साहित्य सभी दृष्टियों से सपन एवं समय था। सत कवि एकनाथ द्वारा प्रेरित साहित्य की विविध शक्तियों तथा परंपराओं को परवर्ती मराठी साहित्यकारों ने चरम सीमा पर पहुँचाया। जब से मराठी को राजाश्रय मिला और वह महाराष्ट्र की राजभाषा बनी तब से मराठी साहित्य के विकास को एक विशेष गति प्राप्त हुई। सत, पंडित कवि शाहिर, चीटणधीम बखर नवीस आदि के द्वारा इसका साहित्य विपुल एवं विविधांगपूर्ण हो गया। इसमें ललित साहित्य के साथ ललिततरंग साहित्य की भी निर्मिति हुई। तत्कालीन मराठी साहित्य में मार्मिकता के साथ मौलिकता, पांडित्य के साथ प्रतिभा, सामर्थ्य के साथ सौंदर्य उपदेश के साथ आनंद आदि बानें स्वाभाविक रूप में दृष्टिगोचर होती हैं।

१५ | मराठी साहित्य की प्रमुख कवयित्रियाँ

स्त्री और पुरुष दोनों के पारस्परिक सहयोग से ही जीवन परिपूर्ण हो पाता है। काव्य जीवन की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में स्वभाविकता, वास्तविकता, लक्ष्मी का सङ्गी है जो उसमें जीवन के दोनों अंग स्त्री पुरुष समाविष्ट हो जायें। मराठी काव्य का आठ सौ वर्षों की परम्परा देने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक काल ईसा की तेरहवीं शताब्दी से लेकर आज तक मराठी काव्य के विकास में यहाँ की महिलाओं ने सनातन सहायक दिया है। चन्द्रसे रामदास तन (तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक) के कालखण्ड में कवयित्रियाँ नहीं मिलती। उन्नीसवीं शताब्दी से अवच्छेद परम्परा का यह सङ्ग पुनः प्रारम्भ हो जाता है। इन परिमित पृष्ठों में मराठी का प्रत्येक कवयित्री के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना संभव न होने के कारण उनमें से कुछ प्रमुख कवयित्रियाँ का सामान्य परिचय मात्र दिया जा रहा है।

महाबाइसा (महारा) मराठी की आदि कवयित्री मानी जाती हैं। महानुभाव साङ्गाम के प्रवक्ता चन्द्रसे स्वामी इनके गुरु थे। यह अपने काल में अत्यन्त सिद्धिप्री समझी जाती थी। इनके उपलब्ध मराठी काव्य में धवल 'मान की रुचिमणी स्वयंवर तथा गमनाद ओसा' विशेष उल्लेखनीय हैं। महाराईगा एन सरल स्वभाव का भारी महिला थी। सम्भवतः यही कारण होगा कि उनका काव्य में साधारण स्त्री की स्वभावगत विशेषता दृष्टिगोचर होती है। गतिशीलता एवं प्रवाहमयता में कारण उनका समस्त काव्य विशेष लावण्यपूर्ण है। भाषा साधी साधी एवं अत्यन्त सरल होने में चित्तानुरूप प्रसंग के वर्णन में स्वभाविकता निर्माण करने की क्षमता रगती है। मराठी साहित्य में कथा-काव्य का सूत्रपाल इन्हीं से माना जाता है। समय रूपत काव्य होने से वक्तव्य, रचना में अमंगल पुनर्प्राप्ति, आदि कुछ दोष इनके काव्य में अवश्य मिलते हैं परन्तु कवन इन्हीं के कारण इनकी महत्ता निम्न प्रकार कम नहीं हो सकती। उन्होंने 'वक्त' के द्वारा मराठी का एक नया छन्द का भेद का है। 'वक्त' यह छन्द कुछ सीमा में मराठी के अन्तर्गत की जाती है। इसमें गण, मात्रा

अथवा अक्षर सख्या का बंधन नहीं रहता। संभव है कि महदाईसा के अर्थ भी वाक्य-प्रय होगे जो अब तक अज्ञात ही हैं। इन्होंने मराठी के साथ हिंदी में भी रचना की है। इनके द्वारा रचित निम्नांकित पद डा० विनयमोहन शर्मा ने प्रकाशित किया है—

नगर द्वार हो भिच्छा करो हो,
बापुरे मेरी अवस्था लो।
जिहां जाबो तिहा आप सरिखा
कोड न करी मोरी चिंता लो।
हाट चौहाटा पड रहूँ हो।
माग पच घर भिच्छा
बापुड लोग मेरी अवस्था कोऊ
न करी मेरी चिंता लो।

महदाईसा की गुरुभक्ति विशेष प्रसिद्ध है। इनकी हिंदी भाषा में खड़ी बोली और ब्रज का मिश्रण है। अभिव्यक्ति में सहजता, भाषा में प्रासादिकता एवं वर्णरस की छाया से इनकी रचना अधिक आकर्षक बनी है। यदि इनके और भी हिंदी पद उपलब्ध हो सकें तो अधिक अच्छा होगा।

महदाईसा के पश्चात् विशेष उल्लेखनीय कवयित्री हैं—मुक्ताबाई। नानेश्वरी के रचयिता तथा मराठी साहित्य मंदिर की बुनियाद डालने वाले सुप्रसिद्ध सप्त नानेश्वरी की यह सबसे छोटी बहन थी। उपलब्ध प्रमाणा से इनका जन्म शके १२०१ और मृत्यु काल शके १२१६ मिलता है। अपने भाइयों के मरण यह भी असाधारण बुद्धिमती थी। विरागी वृत्ति के कारण इन्होंने आज्ञा कौमार्य व्रत का पालन किया था। अठारह वर्ष की अवस्था ही में इन्हें इस संसार से सदा के लिए विदा होना पड़ा। परंतु अलौकिक प्रतिभा एवं तजस्वी बुद्धि चातुर्व्य के कारण इतना-सी उम्र में ही इतना अनेक अंश पर, कल्याण पत्रिका, हरिपाठ ताटीचे अंश आदि काव्यों की रचना की है। मुक्ताबाई की रचना में माधुय गुण विशेष द्रष्टव्य है। यद्यपि आत्मबोध एक काव्य का प्रमुख विषय था, फिर भी मानवी जीवन के अनेक अनुभवा तथा दया, शमा, शान्ति आदि सदगुणों पर भी इन्होंने समय समय पर स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं। उनकी आध्यात्मिक विचार धारा नानेश्वरी के समान ही थी। स्त्री जीवन की मदुना, अनुभवा की कठिनता, स्पष्टोक्ति एवं भावना की उत्कटता आदि बातें इनके काव्य में विशेष रूप से परिलक्षित हैं। इनकी बहुत ही कम रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। उक्त रचना को देखकर अनुमान होता है कि इनकी और भी रचनाएँ अवश्य रहा होंगी जो काल कवलिप्त हुई होगी। महदाईसा की भांति इनकी भी हिंदी रचनाएँ प्राप्त होनी हैं—

घाह बाह साहब जी सदगुरु लाल गुसाई जी
साल बिच मा उडला काला ओड पोठ सों काला।

पीत उमनी भ्रमर गोंफा रस भूलन घाला ।
सदगुरु घेले दोनों बरारर एक दस्त या नाइ ।
एन ते एक दान पाये महाराज गुतावाई ।

मुप्रसिद्ध सन नामदेव की दासी जनाबाई ने भी अपनी भावनाया को वाचक माध्यम से व्यक्त किया है। नामदेव जैसे सन के सपक से जनाबाई के मन में भी विठठल के विषय में भक्ति आविभूत हुई। परमात्मा के नाम सतीतन में नत्लीन हाने में इन्हें अनाव जानद की अनुभूति होने लगी। इन्होंने नामदेव का कीतन कई बार सुना था इनतिण पौराणिक कथाओं का पान इन्हें अनायास ही प्राप्त हुआ था। परमात्मा का गुणगान करना मानो उनका स्वभाव बन चुका था। यह विठठल को ही माता के रूप में देखती थी। जनाबाई के उपलक्ष्य स्फुट अभंगों से स्पष्ट सिद्धांश देता है कि य पांडुरंग की एकनिष्ठ सेविका थी। हृदय में उत्पन्न प्रत्येक कल्पना अपने जीव परमात्मा की परस्पर श्रद्धा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की नवीन कला का प्रारंभ जनाबाई ने ही किया।

जनाबाई का समस्त वाच्य भगवत्प्रम से प्लावित है। अथात्म, भगवत्भक्ति, नाम महिमा पौराणिक आख्यान आदि जनाबाई की कविता के प्रमुख विषय हैं। इनकी रचना में स्त्री सुनभ मनुना, वारुण्य, हृदय की आद्रता आदि बातें सहज रूप में पायी जाती हैं। स्फुट अभंग के अनिरिक्त भक्तिरस पूण कुछ कथा-काव्य भी इन्होंने रचे हैं, जिनमें शालिपाक दुर्वास भोजन नामक वाच्य उत्कृष्ट कोटि का माना जाता है। मन का भोलापन, वाणी का स्नेह तथा भाषा का सारल्य इनकी रचनाओं में सबन पाया जाता है। तुकाराम के पश्चात् महाराष्ट्र में जनाबाई के ही अभंग विशेष लोकप्रिय हैं। किंवदन्ती है कि नामदेव के शतकोटि अभंगों में साठे बारह काटि अभंग जनाबाई के थे। परंतु जनाबाई के नाम पर मिलन वाले अभंगों की संख्या ०० से अधिक नहीं है जिनमें से कई अभंग प्रक्षिप्त भी माने जाते हैं। सन १३५० की आपात कृष्ण १३ को जनाबाई समाधिस्थ हुई। इनके एक अभंग से जान होता है कि एहिक जीवन की समस्त वामनाओं की पूर्ति का समाधान इन्हें अंतिम समय मिला था—

माझे मनी ज जें होते । तें तें दिघले अनते ॥
देह नेऊनी देही बेलें । शाति देऊनि भी पण नेलें ॥
मूल दिले हे क्रोधा चे । ठाणे केले विवेकाचें ।
निजपदीं दिला ठाव । जनी म्हणे दाता देव ।

चारदरी संप्रदाय के श्रेष्ठ भक्त तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई का नाम महाराष्ट्र की कवयित्रियों में विशेष उल्लेखनीय है। इनके पति का नाम रत्ताकर पाठक था। उनके वंश में शाक्ता की उपासना हाती थी। इनके अभंगों से प्रतीत होता है कि इनका शोभाय अधिक समय तक न रहा होगा। यद्यप्यवस्था में स्वभावतः इनकी वक्ति अध्यात्म की ओर उमुख हुई। कहा जाता है कि स्वप्न में इन्हें सदगुरु तुकाराम के दान हुए और उही की कृपा से बहिणाबाई में कवित्व शक्ति अकुरित हुई।

बहिणाबाई की अधिकांश रचना स्फुट रूप में प्रामाण्य होती है। इनकी गायिका में पुनर्मिलाकर ८८ अंश हैं जिनमें २३ आत्मचरित्र पर और ३५ निवाग विषयक हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति चरित्र ग्रन्थ विडम्बन, गन, सङ्गुष ब्राह्मणत्रय, पतिप्रना घम, पुनर्जन्म, प्रवृत्ति निवृत्ति आदि विभिन्न विषय पर इनके लगभग ६०० अंश हैं। प्रासादिकता, निस्पृहता, सरलता इनके काव्य के विशेष गुण माने जाते हैं। इन्होंने मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी काव्य रचना का है कबीर की उल्टवामी की भाँति इनके अमूर्त रमपूर्ण छंद प्रसिद्ध हैं—

अजय वात सुनाई भाई ।

गन्ध पक्ष हिरावे काणा समी घरन चुराई ।

ये सूरज की धीरे धीरे सोवे चबरकू भाग जलावे

राहु के गिर हो भोगी कटा रे अमृत ले भर जावे

पुबेर सोवे घाके ब्राह्म हनुमान नीर मगावे

वसे सयाह भुटा है निदा की वात सुनावे ।

समोदर ताहों चीरत कसा साधु मागन दान

बहिणी कहे जन निदक है रे यामो साँघ न मान ॥

बहिणाबाई ने अपन भावा को व्यक्त करते समय काव्य चयन की ओर उतना ध्यान नही दिया जितना देना आवश्यक था। इनकी हिन्दी मराठी दोनों रचनाओं में एक दाप पाया जाता है। इसके बावजूद भी इनका समस्त काव्य अपनी विशेषता रखता है और उनकी रसात्मकता में किसी प्रकार की हानि नहीं हुई है। इनकी मृत्यु उनके १-२० में मानी जाती है।

समय-संप्रदाय के प्रवर्तक मध्य रामदास स्वामी की प्रमुख शिष्या श्री बेणाबाई। इनका भी बहुत सी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इन्हें बाल्यावस्था ही में वैधव्य प्राप्त हुआ था। यह स्वभाव में शांत एवं विरामा कृति की था। रामदास का शिष्यत्व स्वीकार करने समय बेणाबाई का विराम मधुराल तथा मने के रिश्तेदारों ने किया था। परन्तु इन्होंने अपनी मनाकृति को निदधल ही रखा। बेणाबाई के प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम है 'सोदा स्वयम्'। रामायण के इस प्रसंग पर यद्यपि पूर्ववर्ती कवियों ने रचना की थी तथापि मध्य प्रथम ओदीकृत रचना इन्हीं की मानी जाती है। इस ग्रंथ में १५६ जोशियाँ पायी जाती हैं।

माता स्वयम्बर' के अतिरिक्त 'कौन' और 'गम पुद्द सदा' नामक दो स्फुट काव्य भी इन्होंने रच है। कौन का अर्थ है राजा से प्रज्ञा को मिलने वाला अभय-गत्र। रावण का नाग करने के पश्चात् जब प्रभु रामचंद्र राजा विश्वामित्र हुए तब प्रजा न उनके पास जा माता की उमका वपन कौल काव्य में है। राम पुद्द सदा में ४४ श्लोक हैं। बेणाबाई के काव्य पर इनके गुरु रामदास के काव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। छंद नास्त्र तथा व्याकरण के नियमों का वचन यद्यपि इन्होंने नहीं माना है फिर

भी इनकी कविता में रचना चातुर्य, कल्पना विलास एवं वर्णन शली आदि का सौंदर्य निबाध ही रहा है। स्वानुभव और दृढ भक्ति इनके काव्य की आधारशिला हैं।

इस कालखण्ड में इनके अतिरिक्त 'काहोपाशा, प्रेमाबाई, बयाबाई आदि कवयित्रिया के नाम भी उल्लेखनीय हैं। सभी की कविता का विषय भक्तिप्रधान हुआ। स्त्री मुलभ स्वभावानुसार नित्य जीवन के घात प्रतिघात, सुख दुःख, आशा निराशा आदि का निरूपण भी इन्होंने बड़ी कुशलता से काव्य द्वारा कराया है। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में हकी हुई कवयित्रियों की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी से पुनः प्रारम्भ हुई। आधुनिक काव्य की अभिव्यजना गली में युगानुसार परिवर्तन दिखाई देता है। अंग्रेजी शासन-काल में आंग्ल साहित्य के अध्ययन का अवसर यहाँ की सुशिक्षित जनता को मिला। देश में सामाजिक 'धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में क्रांतिक आन्दोलन गुरु हुआ था। इन सभी का प्रत्यक्षप्रत्यक्ष परिणाम स्वाभाविक रीति से मराठी काव्य पर भी हुआ। प्राचीन काव्य के अध्यात्म, भक्ति, नीति बोध आदि प्रमुख विषयों के स्थान पर लौकिक, ऐहिक निसर्ग विषयक विषयों का समावेश भी होने लगा। प्रतिदिन के निवृत्तवर्ती विषयों का व्यक्तिकरण काव्य में लिखाई देने लगा। आत्मानुभूति आत्माभिप्रेक्ति की भावना कविता में विशेष रूप से पाई जाने लगी। आदि न कविमता पारतन्त्र्य के स्थान पर बहुवचन समता स्वतन्त्र्य की स्थापना करने की तीव्र भावना काव्य द्वारा भी व्यक्त होने लगी। महिलाओं के रङ्गित बचन एवं गानों के दुःखों को भी वाणी मिलने लगी।

व्यक्ति स्वातन्त्र्य के अनुसार प्रेम विषयक स्वातन्त्र्य की माँग आधुनिक कविता में हान लगी। आत्म निवेदनपरक प्रेम काव्य का निर्मित होने लगा। यही कविता में प्रेम का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मुक्त रूप में किया जाना लगा। यामना मर प्रेम के स्थान पर उपास, गूढ़ मानसिक एवं बौद्धिक प्रेम का चित्रण काय में हान लगा। मराठी काव्य के अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों में परिवर्तन हान लगा। आधुनिक काल में साहित्य के विविध अंगों के विकास में महिनाशा न मजनात्मक महत्वाकांक्षी था। काव्य के क्षेत्र में भी अनेक महिलाओं ने रचनात्मक एवं प्रगतिशील कार्य किया। इस काल की प्रमुख कवयित्रियों में सम्मीबाई टिलक बहिनानाई चौधरी मन्नामन रानडे पद्मा गोत्र, सजीवना मराठ, इन्द्रि सन गाना गानक आदि कवयित्रिया के नाम विना उल्लेखनीय हैं।

सम्मीबाई टिलक में अर्वाचान मराठी कविता का वास्तविक प्रारम्भ माना जाता है। इनका काव्यकाल मस्कारगोल ब्राह्मण परिवार में व्यतीत हुआ। ग्यारहवें वर्ष की अवस्था में कवि २० टिकरु के साथ इनका विवाह हुआ। टिलक के अन्तर्गत स्वभाव के कारण इन्हें अपने जीवन में गिरगता एवं गति गायक हा मित्री हागा। मर १८६५ में टिलक का ईसाई धर्म का स्वीकार करना सम्मीबाई जमी हिन्दूता को अगुम तथा दुःख सगता था। एनी ग्पिनि में भा इन्होंने बड़े धीरे धीरे का साथ काम

किया। उस असह्य परिस्थिति में ही इनके काव्य का जन्म हुआ। राष्ट्रीय अध्यात्मपरक, सामाजिक, सद्बोधपरक, भक्तिपरक, आदि विविध विषयों पर इन्होंने काव्य रचना की। वात्सल्य रमण गीतों की रचना भी इन्होंने की है।

इनकी प्रथम कविता का जन्म सन १८६८ ई० में हुआ। इनकी स्फुट कविताओं का एक संग्रह सन १९५१ में तैयार किया गया जिसका नाम 'भरली घागर' है। अपने पति रे० टिलक के अपूर्ण काव्य 'प्रिस्तायन' को इन्होंने पूरा किया। इनके काव्य में भक्ति, करुण और वात्सल्य इन रसों की त्रिवेणी अत्रायण गति से बहती है। इनके काव्य में गेयता का गुण भी है। यद्यपि इनके द्वारा लिखित बालगीतों में अथवा आध्यात्मिक गीतों में कलात्मकता एवं स्वाभाविकता का अभाव सा नजर आता है फिर भी समस्त काव्य में दृष्टिगोचर होने वाली प्रतिभा, प्रसाद गुण, विनय एवं सूक्ष्म विनोद आदि के कारण इनका काव्य अपना विशेष महत्त्व रखता है। कुछ कविताओं में सामाजिक समस्याओं को रखकर इन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त किया है। लक्ष्मीबाई ने मराठी कविता को एक नया माग दिया। उसी माग के खून जाने से लक्ष्मी तनया लक्ष्मीबाई वेहरे शारदाबाई पराजपे हिराबाई पेढणेकर गान्नाबाई फणसे, मनोरमाबाई रानडे, आदि कवयित्रियाँ ने काव्य क्षेत्र में पदापण किया। इसीलिए लक्ष्मीबाई टिलक से आधुनिक मराठी कविता का सूत्रपात माना जाता है।

लक्ष्मीबाई टिलक के पश्चात् बालखडकी दृष्टि से बहिणाबाई चौधरी का नाम विचारणीय है। महाराष्ट्र में केशवसुत, कवि बी, विनायक तावे गडकरी जैसे प्रतिभा संपन्न कवि जिन्हें समय अपनी काव्य प्रतिभा से जनता को जागृष्ट कर रहे थे उसी समय बहिणाबाई चौधरी की कविता का भी जन्म हुआ था, परन्तु दुर्भाग्य से वह कविता बहुत दिनों तक अज्ञात रूप में ही रही। सन १९५१ ई० में इनके पुत्र सोपानदेव चौधरी ने आचार्य अत्रे द्वारा इसे मराठी जनता के सम्मुख रखा। इस कविता में बहिणाबाई की अपूर्व प्रतिभा के दर्शन सहज ही हो जाते हैं। बहिणाबाई एक सीधी सादी वृषक महिला थी। जलगाव नामक शहर में वह अपने परिवार का जीवन वाटिका में रम चुकी थी। ग्रामीण वातावरण में रहकर बहिणाबाई जैसी एक अशिक्षित महिला का काव्य में प्राप्त काव्य गुण शिक्षिता का भी प्रेरणा दत्त हैं। इनके काव्य में नौसंगीतों का भक्तिक दृष्टिगोचर होना है। दैनिक जीवन के विषयों को ही इन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया। इनके काव्य में स्वाभाविकता, सबकुछ दिखाई देती है।

सुशिक्षित न होने हुए भी इन्होंने अपने काव्य की उत्पत्ति के संबंध में जो कथन किया है वह आंग्ल कवि बडसवथ की काव्य को परिभाषा Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings से कितना माध्य रखता है—

अरे धरोटा धरोटा। तुझ्यातून पडे पीठी।

तस माझ गान। पोटातून येत होटो।

प्रसन्नचित्त शम्भुचरण भाषा की सुकुमारता, कल्पना की रमणीयता, आदि काव्यगुणा के अतिरिक्त इगका जीवन विषमक तत्त्वज्ञान भी विंगय उन्नेगनीय है। सत्तार म रहकर भी विरक्त एव अनागत कृति म देगने का मना का दुःखिता इतक काव्य म भी पाया जाता है। इग दुःखिकीण को इहाने निव्य जीवन म प्राप्त मन घुरे प्रसगा म से ही पाया था, उगक लिए इहाने वेगगान आदि का अध्ययन नग किया था। स्वाभुमय से ही इहानी जीवन का अर्थ सगाया। इमीनिय उनका जे वन विषयक तत्त्वज्ञान विंगय प्रभावगाली एव तय समावेगव आ है। इहाने गृहस्थी का गुग गुग का व्यापार कहा है जा कभी नग तो कभी उधार करना पटना है। मन और कीर्ति की मन्दिरासरा मे शृनगना सङ्गिता प्रामाणिकता आदि मानदाकिन गुणा को भूतने याल मनुष्य के प्रति कवयित्री का मन अत्यन्त विद्वान हो जाता है और यह स्पष्ट रूप से घूटनी है—

✓ मनिता मानता कधी दानी मनुष्य ।^१

इदिराबाई सत १ सन १६६६ स आग तक काव्य क मगन का काय अराकिन रूप म धानू रगा है। इनर प्रसिद्ध काव्यमग्रह हैं—गना, मगजन और मनी। अन्त आधुनिक कवयित्रीया की मीति इनर काव्य का भा प्रधान नियम प्रम ही है। परतु यह प्रेम विविधता म सुगञ्जित होकर मुग्ध एव रमिर कति से व्यनन हुआ है। रचना म सरलता आङ्कर हीनता के दगन होने हैं। रयय देग हुए और अनुभव किये हुए म्ना हृदय क मनोभावा को व्यवन करन का प्रामाणिक प्रयत्न दाक काव्य म दता जा सकता है। प्रसादगुण क वारण काव्य म सरलता मुगधता आ चुरी है। इतरा मग्य मे कही भी कृत्रिमता की गध तर गही आती।

विवाहोत्तर का न म प्रफुलित जीवनोद्यान म लिखित उन्नास युक्त प्रमगोना का भीति ही पतिनिघनोत्तर कास म लिखित गिरहजय गीत भी हृदय को प्रभावित किय बिना नही रहते। उगका प्रमुख कारण है विषय की भाषना के प्रति कवयित्री की एकरूपता, तमयना चाहे वह विषय सुख का हो या दुःख का इहाने किसी कदि का हेतुपूर्वक अनुसरण न करते हुए स्वतन्त्र विचारधारा का अनुसरण किया है। अन्त कविता के विचारो स कुछ विचार यदि साम्य रखते हैं तो वह समोग मान है। इदिराबाई की कविताभा ने सत्तार के यथाथ चित्र उपस्थित किय हैं जो कविता का लोकप्रियता के अनेक कारणो म एक हैं। अनावयक कृत्रिम अलकारो से शृगारित करना संभवत इदिराबाई को पसन्द नही था। स्वभावत रूपसपन वनिता को कृत्रिम अलकारो का आवश्यकता ही क्या है? किसी प्रसग विशेष पर यदि कुछ अलवार डाल जाते हैं ता सौदय की शोभा द्विगुणित हो सकती है। इदिराबाई की काव्यवध का देखने पर उसकी शालीन, सयमी वति, एव निरलकृता के प्रति सहज म आदर भाव ही प्रकट होना है।

१ हे मनुष्य, तू वास्तविक मनुष्य' कव होगा ?

सजीवनी मराठे की कविताओं में गीति तत्व की प्रधानता है। उनकी कविता प्रथम भावरूप में मन में जम लेती है और बाद में अभिव्यक्ति के समय शब्दरूप में। एक उत्तम काव्य गायिका के रूप में इनकी प्रसिद्धि है। काव्य के वातावरण एवं रम के अनुकूल स्वरा का उपयोग करके कविता का गायन करती हैं इसलिये काव्य के भाव अधिक प्राणवान बन जाते हैं। सत्कार राका छाया, भावपुष्प, चित्रा, आदि इनके विशेष प्रसिद्ध काव्यसंग्रह हैं। प्रेम और वात्सल्य इनकी कविताओं में विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त प्राथना, गीत, भजन, गौतन, प्रावृत्ति गीत, राष्ट्रीय गान तथा मंगल सस्वार विषयक कविताएँ भी इनकी रचनाओं में पायी जाती हैं। भाषा और रचना-कौशल दोनों दृष्टियों से इनकी कविता अत्यंत कलात्मक है। संगीतात्मकता तथा नादमाधुर्य कविता का बहिष्कृत है।

इन्होंने भावगीता के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के रागों के अनुकूल भी कुछ रचनाएँ की हैं। काव्यानुकूल विषया का चयन आवश्यकतानुसार भावना स्पष्ट तथा रचना कौशल की माक्षेपता इन गुणों से आधुनिक कवयित्रियाँ में सजीवनी मराठे का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। विषय तथा विचारों की मयादा कवयित्री न अपने काव्य में रखी है। इनकी अधिकांश कविता आत्मनिष्ठ स्वरूप की है। इनके लगभग संग्रह का यह माधुर्य एवं प्रगाढ़ गुणा का मन्त्र मिलन बन गया है। यह हाल ही में मराठी और हिन्दी विषय लेकर एम० ए० का परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण हुई है। भविष्य में मराठी कविता का इनमें बहुत आशा है।

सजीवनी मराठे की भाति पद्मा गोले का नाम भी विराय उल्लेखनीय है। नवयुग की स्त्री जीवन की विवेचना करने वाली इनकी कविताओं के संग्रह प्रीति पयावर और 'नीहार' चित्तविषयक एवं भावामिव्यक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। इन संग्रहों की लगभग आधी कविताएँ प्रेम विषयक हैं जिसका स्वरूप भावगीता की भाँति है। विषया का चर्चित्य, भावना का चर्चित्य, विचारों की प्रभावी सामर्थ्य आदि के कारण इनकी कविता में उज्ज्वल भविष्य की मानो सूचना ही प्राप्त होती है। प्रणयी जीवन के विविध चित्र इन्होंने उपस्थित किए हैं। यद्यपि इन्होंने प्रेम काव्य का ही प्राधान्य दिया है फिर भी विवेचिता यह है कि इन्होंने अधिकांश रचनाओं में कवन सफल प्रेम हा का चित्रण नहीं किया अपितु अमफन प्रेम का चित्रण भी किया है।

इनकी प्रेम भावना में कुछ प्रतिकारात्मक एवं अधिकांश सहानुभूति की वृत्ति के दान हा जाने हैं। प्रेम भावना के एक नवीन जग का चित्रण इनकी कविता में किया गया है। इनके काव्य के स्त्री पात्रों को पति की पूजा में अनीक सनाप एवं प्रमत्तता व्यक्त है परन्तु साथ ही साथ वे व्यक्ति स्वात्म्य भी चाहती हैं। पद्मा गान के वात्सल्य रसयुक्त गीत भी अप्रतिम हैं। 'अनितापा और मो माणूस' शीर्षक कविताओं में अत्यन्त स्पष्टाक्ति है। स्त्री को केवल उपभाग की वस्तु मानने वाले पुरुषों की बड़ी कलात्मकता से इन्होंने 'अनितापा' में सगर ली है। मो माणूस में कवयित्री न जादन की ओर बड़ी निर्भीकता से देखा है। सगर में दिवाया दन्वारा का स्वाय एवं

रू आदि का गुण विषय इहोंने किया है। इसी गमना कविता गनीना एव गहन गुण भाषा में विभूति है। तबराज की ओर द्वारा भूताय गिनायी दे रहा है फिर भी इसी गमना का आशय है। इसके काव्य में प्रगा और माधुय गुण की पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। 'सुगमगी' नामक कविता में इहोंने अपनी भूमि का स्पष्ट चित्र दृष्ट किया है—

सुगमगी भी नम्या सुगमगी
मानवने चा स्वयं करि धरनी
उच स्वराते स्वतप्रतेषो
गाहन उगयत मगत गाणी ।

मराठी की आधुनिक प्रमुख कवयित्रिया में सबसे बड़ी में कवयित्री गांता नेलके का नाम दिया जाता है। ये बर्द कलकत्ता के मद्रास प्राध्यापिका हैं। 'वर्षा और 'रूपगी' इनके प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। इहोंने अपने जीवन की सुगम सुगम अनुभूतियाँ को काव्य में माध्यम में व्यक्त किया है। एक स्थान पर स्वयं कवयित्री ने लिखा है कि मरी कविता मुझे इसलिए भाती है कि उगम विगिष्ट अनुभूतियाँ तथा विगिष्ट आरागात्रा के चित्र का अवन किया गया है। इनका काव्य दुःख सरल एव निरसस आत्माभिधक्ति से युक्त है। इसी कारण से यह जनसाधारण के लिए भी बोधगम्य हो चुकी है। प्रासादिकता काव्य सौष्ठव का प्रमुख अंग गुण इनकी कविता की आश्रयिका के रहस्य हैं। जिन मन का भावना को यथायोग्य रूप में गाना के माध्यम में व्यक्त करने में गानागई सिद्धहस्त हैं।

इनका जीवन विषय तत्कालीन समाज के मध्य में पाया जाता है। आगा निराशा की जासमिचीनी इनके काव्य में पायी जाती है। किसी प्रकार में की अनुदारता एव मकुचिना इनके जीवन विषय काव्य में नहीं मिलती। अपना मन व्योपक, विगाता मुन देने यही इनकी इच्छा है। इनकी कविताओं में रहस्यमय अथवा गूढ़ता नहीं है। इनकी प्रेमविषयक कविताओं में निराशा तथा वफ़ल्य का स्वर ही अधिक गिनायी देता है। गरीर सुख के बिना वास्तविक प्रेम की वृत्ति नहीं हो सकती। यह विचार जनेन बार इनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। पुराण के प्रेम भावों के चित्र भी इहोंने सफलता से चित्रित किये हैं। जीवन में निराशा आने पर भी गानागई ईश्वर श्रद्धा के आधार पर स्थिर रह पाती हैं। अथ कवयित्रियों की भाति वासत्य गीता या गिगुगीता में इहोंने सफलता नहीं मिली। इनका प्रकृति वर्णन विशेष उत्तमस्वनीय है। प्रकृति के कवन सुकुमार चित्रों का अवन करने के स्थान पर अपने सुख दुःख से समरम होने वाले प्राकृतिक गीत लिपना इहे विरोध पसन्द है। मराठी साहित्य को नम जोग भी आशाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई कवयित्रियाँ हैं जिहोंने अपनी प्रतिभा के अनुसार काव्य सजने के मराठी सारस्वत के उद्यान को सजाया है। इससे स्पष्ट हो जाता है

कि मराठी काव्य के विकास में पुरुषों के अतिरिक्त महिलाओं ने भी रचनात्मक सहयोग दिया जिससे जीवन के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्तियाँ हाँ पायीं। पहले ही स्त्री मन कविमन होना है, और जिन स्त्रियों में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का माहात्कार होता है उनके काव्य के सम्बन्ध में कहना ही क्या ? स्त्री जीवन के वास्तविक दर्शन मराठी कवयित्रियों के द्वारा अभिव्यक्त काव्य में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। जीवन क्षेत्र की भाँति साहित्य क्षेत्र में भी महिलाओं का यह योगदान अपना एक विशेष महत्त्व रखता है।

१६ | भक्तिकालीन हिन्दी-काव्य में मानवतात्मक ऐक्य

भारत एक विंगल एवं दृगिष्ट्यपूण देग है। रसम धम, पय जानि भाषा, प्रदग, प्रया राय पय जादि म भिन्नता हान हुए भी आनरिख अभिन्नता व दगन होते हैं। दस रहस्यमयी व्यवस्था का पष्ठाधार भारत का प्राचीन परम्परा एवं सब समावशर ससृति ही है। बिब के इतिहाम से पान होता है कि अनेक विकसित एव सम्पन्न ससृतिया को पन व गत म बिनीन हाना पन है। बुठ अपवादात्मन ससृतिया म भारतीय ससृति भा विंगप उलेसनीय ह भिसन गताऱिया म अपनी उग्वल परम्परा की रक्षा की ओर अपनी अलीकिक गति से सम्पूण विश्व म आरूपण उत्पन किया। उसवे इस गौरव का वास्तविक श्रय उन मनीषिया को दना चाहिए जिहने भारतीय ससृति की दान म मानवता की रक्षा की ओर अपने जीवन का वृनाथ बनाया। इन मनीषिया म भक्तिकालीन हिन्दी कविया का भी महत्वपूण स्थान रहा है।

प्राचीन काल से प्रचलित परम्परा अय दगा व समान नष्टप्राय न होन हुए आज भी भारत म सुरभित रूप म पाई जाती है। इससे भारतीय ससृति का उदात्त तथा मानवतावादी दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट हो जाता है। मानवता भारतीय ससृति की आत्मा है। मनुष्य म सत्प्रवृत्ति तथा दुष्प्रवृत्ति दोनों का अस्तित्व होता है। कभी कभी मनुष्य म स्वाथ का आरूपण इतना बढ जाता है कि वह सत्प्रवृत्तिया का आश्रय छोड देता है और काम, क्रोध मद मत्सर जादि पन्पुऱा के जाल म फन जाता है। यही प्रवृत्ति जन् यथि से समष्टि म प्रसारित होती है तब समाज तथा ससृति के पतन का भय बना रहता है। साम, दाम, दण्ड भद जादि म स किसा भी सम्पेचित्तर लसाय से यदि सम्प पर ही इल दुष्ट प्रवृत्तिया के दपन का प्रयत्न किया जाए तो समाज एवं ससृति का सरक्षण हो सकता ह। एसी स्थिति म धार्मिक द्वेष, जातीय भेद भाव, प्रातीय अभिमान इत्यादि दुष्प्रवृत्तिया को मूलत नष्ट कर उनम ऐक्य प्रस्थापित करने का आवश्यक तथा महत्वपूण बाय बुछ लागू का करना पडना है। भारत मे इस प्रकार व प्रयत्न की अलग परम्परा पाई जाती है। जब तब देग मे एसी स्थिति प्राप्त हुई थी तब-तब भारतीय सत् कविया न 'पर हित सरिस

धम नहीं भाई' का सजीवनी-मंत्र देकर भारत की जनता में भावनात्मक-ऐक्य प्रस्थापित कर उसे दृढ़ बनाने का कार्य किया।

सत्ता ने समाज की केवल निवृत्ति-भाग की शिक्षा दी जिससे समाज में विफलता तथा निराशा की भावना निर्मित हुई—यह सन्त काव्य की ओर देखने का एकांगी दृष्टिकोण है। परंतु विशाल दृष्टि से तत्कालीन परिस्थिति की पार्श्व भूमि पर सत्ता के कार्य का विचार करने से पता हो जाता है कि सन्त-कवियों ने समाज को निबल तथा उदासीन नहीं बनाया, अपितु निबल के बल राम की उपासना निखा कर समाज को विगृह्यलित होने से बचाया। सत्ता ने सम्भ्रान्त जनता को जीवन की नई दृष्टि देकर दुबल तथा अगिष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिहार कर 'रामराज्य' की स्थापना के लिए मुमग्नित किया। तत्कालीन परिस्थिति में भारत का सामाजिक नेतृत्व सत्ता ने ही किया था।

व्यापक अर्थ में 'सत्' शब्द सगुणोपासक तथा निगुणोपासक दोनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस लेख में भी सत् शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया गया है। मानवतावाद के श्रेष्ठ समर्थक महात्मा कबीर की वाणी में प्राप्त आत्म विश्वास, निर्भीकता, अत्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह, आठम्बर युक्त धार्मिक प्रयासों के निमूत्रन की भावना देखकर कौन कह सकेगा कि उन्होंने दुबल, जगरित तथा सम्भ्रान्त समाज को मजबूत तथा मशक्त नहीं बनाया? गोस्वामी तुलसीदास के सुप्रसिद्ध महानायक 'रामचरित मानस' में एक श्रेष्ठ लोचरक्षक, आदश मयादा पालक, महान राष्ट्रनायक के रूप में जो श्री रामचंद्र जी का चरित्र प्रस्तुत किया है उस देखकर जीवन विषयक नवीन दृष्टि प्राप्त हो जाती है। महाकवि मूरदास जी ने अपनी सरस और मधुर वाणी के माध्यम से कृष्ण भक्ति का जो प्रचार किया वह इतना प्रबल था कि इस कृष्ण प्रेम के सूत्र में विविध धर्मीय तथा विविध श्रेणी की भारतीय जनता पिरोई गई थी। मध्ययुग का यह आंदोलन आसितु हिमाचल प्रभारित हुआ था। इस युग में अनेक छोटे छोटे वैचारिक प्रवाहों का मिलन होने से भारत का राष्ट्रीय तथा जातीय जीवन उज्ज्वलित हो चुका था जिसके पनस्वरूप मानवधर्म और भारतीय सभ्यता की रक्षा हो गई।

भक्तिवालीन हिंदी काव्य का सूत्रम तथा गहराई से अध्ययन करने पर पता हो जाता है कि सत् कवियों ने भी समाजवाद के लगभग सभी सिद्धांतों का समर्थन किया है। आधुनिक युग में उत्पन्न किसी 'वाद का सत्-वाद पर आरोप करना उनके प्रति अत्याय करना है। अब यदि इतना कहा जाय तो अनुचित न होगा कि मानवता प्रेम जागत करने तथा मनुष्यों की सुख शान्ति के लिए समाजवाद के द्वारा आज जो प्रयत्न किए जा रहे हैं उसी प्रकार मनुष्यों की ममता के प्रयत्न भन्ति और अध्यात्म के माध्यम से भारतीय सत्-कवियों ने किया थे।

कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि सत्-कवियों ने अत्यंत स्पष्ट रीति से सामाजिक समता की भावना जागृत करने का प्रयत्न किया। जाति भेद, वर्ण भेद

ही नहीं, परन्तु धर्म भी उद्दामाच १ था । ईश्वरपामना के समान मवध्यापर क्षेत्र म सभी प्रकार के कृत्रिम भेदाभेद समूच १ष्ट कृता क अनन प्रपन अचन निष्ठा तथा सातत्य से उद्दिनि द्वि । गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि गुरुदास, मीराबाई आदि समुणोपागत सत कविया ने भगवद गीता जन श्रष्ट कृय का आदत समाज के समाने रसा और सादेन दिया कि अपना कृतव्य पालन करत हुए वण वपम्य तथा अच भेदाभेद को महत्त्व देता उचित नही है ।

सतः ने अपने उपदेगा म सत्य का पुरस्कार असत्य का परित्याग, अहिमा पानन परमाथ, स्वाध-र्याग, ईश्वर प्रेम आत्म-सतोप, दया उदारता आदि मानव धर्म क लिए पोषक बातों का सत्य समधन किया । समाज की सुव्यवस्था तथा जननि के लिए सत्य का पुरस्कार आवश्यक हा जाता है क्यकि यह सत्य है कि असत्य की बुनियाद पर सही कोई भी सामाजिक इमारत नाद्वत नही रह सकती । 'सत्यमव जयत' इस महान मिद्धान्त का रहस्य सत कविया ने अच्छी तरह से जान लिया था । सामाजिक विपमता को दूर करने के लिए उद्दिने सत्य का पुरस्कार किया । सम्भवत इमीलिए उद्दिने सत्य को ईश्वर का प्रति-स्वरूप मान लिया था । पापकृताग, आडम्पर प्रादिक असत्य पर आधारित सामाजिक प्रथाओं का उद्दिने विराध किया । धर्म के नाम पर अधर्म, 'याय क नाम पर अयाय और आचार के नाम पर अनाचार आदि का सत्वालीन समाज म प्रचलन दक्तर भविक्वालीन हिन्दी कविया न अपनी रचनाओं के माध्यम से उम्ने सत्य स्वरूप का अनावत कर जनता के मम्मुव रगने का महत्त्वपूण काय किया ।

इन कविया न समाज म समता प्रस्थापित करने की इच्छा स लगभग सभी कल्याणकारक उपाया का प्राग्माहन दिया । सभी सतों के उपदेगा का सार यही है कि हम मय मानव हैं । अत मानवधर्म का पालन करने म ही हमारी भलाई है । जाति भेद, धर्म भेद, वण भेद आदि जसी स्वार्थी एवं सकुचित्त वत्तिया स समाज दपित हा जाता है । उम्ने शुद्ध और निमल रखना हमारा कृतव्य है । सत्य प्रेम अहिमा, दया, आत्मसतोप, शोणाय आदि मानवता की पूजा के प्रमुख साधन है । परम्परागत प्रचलित हृदिया प्रथाए यदि कालानुरूप न होगी तो उनम परिष्कार करना अथवा परिवतन करना हमारा धर्म है । मदिर म जाकर जडमूर्ति की पूजा करने की अपेक्षा जीविन मनुष्य प्राणिया की पूजा करना श्रयस्कर है । मानवता की पूजा का महत्त्व समभाते हुए स त पलटुनास लिखते है—

हिन्दू पूज देवधरा, मुसलमान भसजोद ।

पस्टू पूज बोलता, जो लाय दीद बरदीद ॥

मध्ययुग म सत कविया न धर्म के माध्यम स मानवता की पादवभूमि पर नारतीय जनता म भावनात्मक ऐक्य निमाण करने का प्रशसनीय प्रयत्न किया । आज नी परिवर्तित काल के अनुसार धर्म के स्थान पर राष्ट्र के माध्यम स मानवता की पष्टभूमि पर भावनात्मक एकता निर्मित के प्रयत्ना का हाना आवश्यक है ।

संस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तर्गत उपालम शब्द की स्वीकृति 'सखी-कर्म' के अन्तर्गत रही है। सखा के चार कर्मों में इसकी गणना भी की गयी है और हिंदी का नायक नायिका भेद के कुछ आचार्यों ने भी इसको इसी रूप में स्वीकार किया है। नायक को उलाहना देकर उसकी नायिका के मनोनुकूल बनाता ही उपालम है। परंतु वाश्व शास्त्र की यह स्वीकृत परिभाषा काव्य की व्यापक अभिव्यक्ति को दृष्टि से अत्यंत सकुचित है। हिंदी भक्ति-काव्य में व्यापक रूप से और भीति काव्य में परंपरा के रूप में उपालम का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। इस काव्य में मानवीय हृदय का गहरी और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः उपालम हमारी विशेष भावस्थिति का परिणाम है जो बचल शृंगार की सीमाओं में नहीं बाधा जा सकता। इसकी मुख्य आधार है माहत्त्व की सह अनुभूति, गहरी आत्मोपमा और प्रेम। प्रेमी अपने प्रेम पात्र से अलग होकर विकल और विह्वल हो जाता है। उसकी मिलन की कठोर तीव्र होकर जब उम व्यक्त करती है तब ऐसी ही मन स्थिति में प्रेमी किसी महत्त्व सहचर या सहचारी को मान्यता देकर अपने प्रेमी को उपालम देता है।

शृंगार का वियोग पक्ष में उपालम सयोग की आकांक्षा से अनुगुणित रहता है। उम में प्रियका वियोगपूर्व प्रेम व्यापार उसकी निष्ठुरता के रूप में चित्रित किया जाता है पर उसके मूल में प्रेमिका की अपनी सुखद कल्पनाओं की स्मृति अतनिहित रहती है।^१ माय ही वियोग की परिस्थिति का दापारोपण प्रिय पर करके मिलन-कामना भी व्यक्त का जाता है। सयोग शृंगार का अन्तर्गत जो उपालम होता है वह मान का एक अंग मात्र होता है। उम में स्वाभाविक हृदय का घटना को अभिव्यक्त करने की उमनी गुणाङ्ग नहीं रहती जितनी वियोग-पक्ष में होती है। वियोग पक्ष में ही उपालम की कई स्थितियाँ होती हैं। बिरहजन्य दुःख के आवग में कभी कभी स्वयं नायिका स्वात रूप में प्रिय को उपालम देकर अपनी घटना को मुखरित करती है।

परन्तु इस उपालभ में वह स्नाभावित तमयना और आगा निरागा का स्थान नहीं रहता जो मदेग-काय के रूप में पाया जाता है। स्वगत रूप में अभियन्त उपालभ जब कभी प्रिय के सहचर का आश्रय पाता है तो वह जोर भां गहन एवं सुखर हो जाता है। हिंदी साहित्य में ऐसा उपालभ-काय विभिन्न रूपा में आज तक की रचनाओं में देखा जा सकता है। वस्तुतः हिंदी उपालभ-काय का भावामक अभि व्यक्ति का उच्छृष्ट रूप हिंदी व भक्ति काय में ही अधिक मात्रा में मिल सकता है। उमम गोपी राधा आदि क उपालभ के साथ ही कतिपय स्थलों पर योग के मान हृत्य का कोमल उपालभ भी मिल जाता है। भक्ता की वियाय भावना में वहां-वहां यह भाव मिलता है।

भक्ति-काय व अतगत कृष्ण काय ही एक ऐसा काय है निगम उपालभ काय की प्रकृति व अनुभूल चातावरण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सकता है। उमम भा कृष्ण व मधुरागमन का प्रसंग विशेष अनुभूल है। कृष्ण गातुता छोड़कर जब मधुरा चल जात हैं तब गोपियाँ, राधा, माप योग न ग्वाल बाल आदि सभा कृष्ण के वियाय में दुखी जोर व्यथित हो जाते हैं। कृष्ण के पुनरागमन का प्रारम्भ आगाएँ भी जब धीरे धीरे नष्ट हो जाती हैं तब उनकी प्राकुलता अधिक बसह्य हो उठती है और परिणामस्वरूप गोपिया की यही विरह वदना उपालभ के रूप में अभियन्त हो जाती है। ऐसी ही अवस्था में कृष्ण के सहचर उच्च गोपिया का कृष्ण का सदेश दान तथा समझाने के हेतु गोदुख में आते हैं। अपने प्रियतम के सहचर का पाकर उनकी विरह वेदना मानो मुखर हो उठती है और व सभी उद्धव को उपलक्ष्य कर कृष्ण का नाना प्रकार से उपालभ देती हैं।^१

भक्ति काल

भागवत में वर्णित इसी प्रसंग विशेष के आधार पर महाकवि सूरदास ने 'भ्रमरगीत' की परंपरा प्रस्थापित की जिसका विकास परवर्ती कृष्ण काव्य में दृष्टि गाचर होता है। कृष्ण काय में उपालभ काव्य तथा नमरगीत पत्रीय रूप में प्रयुक्त हुए हैं। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम अभिनव जयदेव विद्यापति की कोमलकात पदावली में राधा का कृष्ण के प्रति उद्देगपूण उपालभ पाया जाता है जिसमें राधा की यावनी द्वेलिन थिकलता का जावेग भा निहित है। परन्तु उपालभ काय का इस प्रणाली की परंपरा सूरदास ने ही स्थापित की। सूर की गोपिया के उपालभ की अभिव्यक्तिया भी दो प्रकार से पायी जाती है। पहली अभि व्यक्ति स्वगत रूप में पायी जाती है जिसमें कृष्ण के न आने पर उसकी निष्ठुरता आदि के विषय में व्यथित हृत्य की प्रतिक्रिया मात्र है। कृष्ण के सखा उद्धव जब गोपिया को प्रेमपथ व स्थान पर निगुणपथ को ग्रहण करने का सदेश देते हैं तब उनका विरह वेदना अधिक ही तीव्र

हानी है और फलस्वरूप उत्तर के रूप में उपासक व्यंग के साथ अभिव्यक्त तथा मुगर्त होजा है। उपासक के द्वितीय पक्ष की भावना को ही हिन्दी के परम्परागत कृष्ण-कवियों ने अपनी अनिश्चित तथा समझालीन परिस्थिति के अनुरूप व्यक्त करने का प्रयत्न किया। इस लक्ष्य में इसी परंपरा का मिहावलोकन मात्र हो सकेगा।

सूर सागर के मधुसूदन म प्राण नवनील मधुसूदन 'भ्रमरगीत' का हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान है। सूर ने अपने भाव जगत की पृष्ठभूमि पर अपनी प्रतिभा तथा कौशल की नूतनता से विरहभाव गोपियों की माननाया तथा मनोदशाओं के विविध चित्र खींचे हैं। 'भ्रमरगीत' का प्रारंभ भी अत्यन्त गार्हपत्य एव मनोवैज्ञानिक है। नाम के मर्म में जीवन की 'सावहारिक' घाता का मर्मज्ञ उद्भव न जान सकेंगे और भीषे युवती गोपिया से मिलकर संदेश दोगे ता साक्षात्कार की दृष्टि से वह अमंगल होगा तथा फलस्वरूप उनके उद्भव की पूर्ति भी न हो सकेगी, इसलिए प्रारंभ ही में कृष्ण उठे लोकाचार की रीति समझाने हुए कहते हैं—

पहले हरि परनाम न सो समाचार सब दीजो ।^१

इस प्रकार लोकाचार समझाने के पश्चात् वे अपना संदेश उद्भव से कह दते हैं। क्या वे वाद कृष्ण के विषय संदेश की भी योजना की गयी है जिससे गोपियों के हृदय में स्त्री मुनम ईप्सा की भावना का उदय होकर उनकी विरह व्यथा तीव्रतर हो जाती है। मधुरा की दिशा से आने वाले रथ का दायकर गोपिया की आशा अनुरित हो जाती है और जब रथ में आसी व्यक्ति के कृष्ण संदेश वष नया वस्त्र को देखा जाता है तब उठे निश्चय हो जाता है कि उनके प्रियतम कृष्ण ही आ रहे होंगे। परन्तु उद्भव के पहुंचते ही यह मुख-रवण नग-भा हो जाता है। कृष्ण न सही लेकिन कृष्ण सखा कृष्ण का संदेश ले आया है इस कल्पना में उनके अपना भग के दुःख को संवारा। अर्घ्य, जारनी, निनक, परित्रमा आदि से उद्भव का प्रेम पूरक सत्कार किया जाता है। नन्द के आगम में गयी हुई मभा में कृष्ण द्वारा प्रेषित पाती जब उद्भव देने है तब—

पाती बाँचि न आवई, रहे नयन जलपूरि ।

प्रेम देखी गोपिन को, ज्ञान गरब गयो दूरि ।^२

जैसी अवस्था हो जाती है। दो ही पत्रितया में कितना भाव अभि यक्त हो जाता है।

उनके बाद उद्भव कृष्ण-मर्मण मुनाते हैं—

सुनु गोपी हरि को संदेश ।

हरि समाधि अतरगत चित्तको प्रभुको यह उपदेश,

वे अविगत अविनामी पूरन घट घट रहे समाय ।

१ भ्रमरगीत सार—स० रामचन्द्र शुक्ल, पदसंख्या १

२ वही, पदसंख्या १३

तिहि निहचय क ध्यावहु ऐसे सुचित कमल मन लाय,
यह उपाय करि विरह तजोगी मिलै ब्रह्म तब आप ।^१

अपेक्षा के प्रतिकूल यह संदेश सुनकर गोपिया को सीमातीत आश्चय ही जाना है। उह विश्वास नहीं होता कि यह विचित्र संदेश कृष्ण का ही है। उनका मन सन्नमित होकर तब करने लग जाता है और अन्त में अनुमान करती है कि यदि सचमुच ही उद्धव कृष्ण का सदा लेकर आय हाग तो अवश्य ही उहाने कृष्ण संदेश का ठीक न सुना होगा। अत आत्मविश्वास क साथ बड़ी ही निर्भीकता से गोपिया उद्धव से कहती है—

उधो जाय बहुरि सुनि आयहु कह्यो हे नदकुमार ।
यह न होय उपदेश स्यामको कहत सगावत द्वार ॥
निगुन ज्योति कहीं उन पाइ सिखवत बार बार ।
काल्ह करत हुते हमरे अग अपने हाथ सिगार ॥^३

इसी बीच में कोई भ्रमर वहाँ आता है जिसे संबोधन कर उद्धव को तथा कृष्ण को अनेक उपालभ दिये जाते हैं, जो कटुता में मधुर और सीमा में व्यापक हैं। इन उपालभों में सभवत एकाग्र ही उपालभ का तरीका बचा होगा जिस स्त्रिया प्रयुक्त किया जाती है। इसी के द्वारा सगुणोपासना अर्थात् प्रेमपक्ष का मडन तथा निगुणोपासना अर्थात् नान पक्ष का खडन भा बड़ी कुशलता से कराया गया है। गोपिया के इन उपालभों के अंतगत कुशा के प्रति सूक्ष्म टाहभाव कृष्ण की भ्रमर वृत्ति उनका अपना विरह जय दुःख आदि का वणन योग तक बटाक्ष, उपहास आदि के द्वारा किया गया है। गोपिया के कुछ उपालभ द्रष्टव्य हैं।

स्याम सो काहे की पहचान ?

निमित्त निमित्त वह रूप न यह छवि रति कीज जेहि जान ।

× × ×

ऊषा हम अजानि मति भोरि

जानति हैं ते जोगकी बातें नागरि नवल कितोरो ।

× × ×

ऊधो ! ते कि चतुर पर पावन ?

जे नहि जान पीर पराइ है सवज कहावत ।

× × ×

काहको गोपीनाथ कहावत ?

तापनेकी पहचानि जाति क हमहि कलक सगावत ?

१ भ्रमरगीत-सार—स० रामचंद्र गुप्त, पदसंख्या १६८

२ वही पदसंख्या २१७

बट वं कुब्जा मनो कियो ।

सुनि सुनि समाचार ऊधो मो कपुव सिरात हियो ।

× × ×

ए अलि ! कहा जोगमे भीको ?

तजि रसरीति नदनदनकी, सिखवत निर्गुन फीको ?

× × ×

मधुकर स्याम हमारे चोर ।

मन हरि लियो माधुरी मूरति, चित नयन की कोर ।^१

‘भ्रमरगीत’ के अंतगत ऐसे कई उपालभ मिलते हैं, जो सूरदास की काव्य प्रतिभा तथा कौशल के परिचायक हैं। अन्न में नानपक्ष पर प्रेमपक्ष की विजय दिखा कर उद्धव का गव हरण किया है। भागवत के दशमस्कंध के एक अध्याय के कुछ ही छंदों से कल्पना तथा प्रेरणा लेकर महाकवि मूरदास न उसका जो काव्य वितान खाना किया उससे उनकी मौलिकता स्पष्टतः देखी जा सकती है। मूरदास के जोहरी थे, अतः काव्य वितान को सुभाषित करने के लिए प्रसंगानुकूल मधु या कठोर शब्दों का चयन उन्होंने किया जिससे उपालभ काव्य यजना तथा सक्षणा शक्तियों से अधिक सबल एवं परिपुष्ट किया गया।

सूरदास जी के पश्चात् उपालभ-काव्य की परम्परा में विशेष उल्लेखनीय खंड काव्य है अष्टछाप के कण्वकवि नददास का जो ‘भँवर-गीत’ नाम से प्रसिद्ध है। नददास के भँवर गीत के आरम्भ में किसी प्रकार की कोई वदना नहीं है और सूर के समान कण्व द्वारा उद्धव को भेजा भी नहीं जाता। सीधे ‘ऊधो को उपदेश सुनो ब्रज नागरी’ कहकर कवि अपना आचायत्व दिखाने में उत्सुक है। फिर भी स्त्रियों के स्वभावानुसार आरम्भ में गोपिया की रूप प्रशंसा कर अपने योग्य भूमिका तयार करने का चातुर्य नददास न दिखाया है। नददास के भँवर गीत का आधा विभाग गोपी उद्धव सवाद से पूरित है और शेष विभाग में गोपिया की विरहदशा वर्णित है। प्रथम विभाग उपालभ के लिए पोषण है। इनकी गोपियाँ सूर की गोपियाँ से अधिक बुद्धिमती हैं। अतः स्वभावतः उनके उपालभों में तक का मात्रा अधिक है। वे उद्धव की हर बात का उत्तर अत्यंत तक-पूण, बुद्धि-संगत एवं चतुराई से देती हैं—

जो मुख नाहित हूतो कहो किन माखन खायो

पायन बिन गो सग कहो बन बन को घायो^२ !

इसी तक वित्तक में स्मृति के आधिक्य से गोपियाँ कभी कभी ‘हा करुणामय नाच हो, केशव, कण्व, मुरारि, फाटि हियरी चली कहकर बहोना हो जाती हैं। इस

१ भ्रमरगीत सार—स० रामचंद्र शुक्ल पद सख्या ११६, २१६, ४५ ३६ २६ १४६

२ नददास कृत भँवरगीत—सपादक विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा पद सख्या १०

उपालभ में परवशता, दीनता, विनय और प्रेम आदि बातें इतनी उत्कट हैं कि स्वयं उद्भव भी इसके सामने हार जात है। गोपिया की मानसिक दशाओं का सूर की तरह स्वाभाविक वर्णन इसमें नहीं पाया जाता। 'भँवर गीत' में दार्शनिक पक्ष ही अधिक प्रज्वल है। गीता में प्रयुक्त ब्रजभाषा काटे हुए रत्नों के समान सुन्दर है परन्तु सूर की भाँति स्वाभाविक नहीं लगती। इसमें संगीतप्रियता एवं 'यगन्माली द्रष्टव्य' है।

भक्तिकाल में सूरदास, नददास के सिवा तुलसीदास, परमानन्द दास, रहीम खादि अन्य भक्त-कवियों ने अपनी कृष्ण विषयक रचनाओं में प्रसंग के रूप में भ्रमरगीत उपालभ कथा का प्रयोग किया है। ऐसी फुटकल रचनाओं में भी उपालभ काव्य की विभिन्न छटाएँ दिखायी देती हैं। कृष्ण गीतावली के अंतगत तुलसी ने भी इस प्रसंग को छेड़ दिया है। तुलसीदास के स्वभाव का प्रभाव गोपियों पर भी दिखायी देता है। तुलसी की गोपियाँ सयमशील, अधविश्वासी, मर्यादावादी पतिपरायणा गारियाँ, गभीरता की मूर्तियाँ हैं। ऐसी गोपियों के उपालभों में वह तीखापन, 'यजना तकवादिता कसे समव है?' इनके उद्भव भी बड़े स्यात हैं। कृष्णभक्त परमानन्ददास ने अपने 'परमानन्द सागर' में इसी प्रसंग को फुटकल पदा में व्यक्त किया है। इनकी गोपियाँ अत्यंत भाली भाली होत हुए भी कृष्ण प्रेम की दृढ़ता के कारण उद्भव की बाता को स्वीकार नहीं करती। वंदना, चिन्तन, मान आदि हृदय में होते हुए भी विरह-यया के भार से उनकी प्रवृत्ति अतमुषी हो गयी है। उनकी उन्नतियाँ में तुलसी की गभीरता है। रहीम ने अपनी फुटकल रचनाओं में गोपिया की विरह-यया एवं ममस्पर्शाँ एवं व्यापक वर्णन किया है। रहीम की गोपियाँ सहजमुग्धा हैं जो अपने प्रियतम कृष्ण को दोष नहीं देनी वरन स्वयं ही पछताती हैं कि हमने व्यय ही उनसे प्रेम किया —

घेर रह्यो दिन रतियाँ विरह यत्नाय ।

मोहन की बतियाँ ऊँची हाय ।^१

मुग्धावस्था के कारण ही व उद्भव का उपदेश नहीं मान सकतीं, अपितु वे कृष्ण के निष्कुर व्यवहार को समार के अनुकूल ही मानते हुए बहती हैं —

कहा काह से कहनो, सय जग साधि ।

कौन होत काहू के, कुपरी राति ॥^२

वरक जैसे छोटे छत्र में भी कितना व्यापक भाव पूरित है ! इनसे रहीम की मोलितना, महत्प्रयत्ना तथा मूर्खता के दान होने हैं।

रोतिवत्ता

भक्तिकाल में निम्न उपालभ-काव्य की परंपरा तथा भ्रमरगीत के प्रसंग रोतिवत्ता काव्य में भी देने का मकन है। रमनापक रमरासी, ग्वान, मन्तराम

१ रहीम रत्नावली—सपादक मायागुरु पात्रिक, पद संख्या ४७

२ यही पद सं० ८४

देव, पदमाकर दाम, धनानन्द, सेनापति आदि कवियों ने अपने अपने काव्य के अन्तगत इस प्रसंग विनोद का उल्लेख कर उपालम्ब-काव्य की परंपरा को प्रवाहित अवश्य किया है। मतिराम ने इस प्रसंग को अलंकारों के उदाहरण स्वरूप लिखा। फिर भी विनोदता यह रही है कि उसे भाव-सौंदर्य को क्षति नहीं पहुँची। वे पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य के रचयिताओं के समान सगुण निगुण के संधर्ष में नहीं पड़े। इसके संधर्ष में मतिराम ने गोपिया के मुख से तो इतना ही कहा कि हम तो—

पगो प्रेम नदलाल के, हमहि न भावत जोग।

मधुप, राज-पद पायकें भीख न मागत लोग ॥^१

इस उपालम्ब में कितना तीक्ष्णता, कितनी तीव्रता तथा मार्मिकता व्याप्त है। मतिराम के उपालम्ब बड़े ही सरस, हृदयस्पर्शी एवं मधुर हैं। मतिराम की भाँति महाकवि देव ने भी अमरगोचर विषयक स्वतंत्र रचना नहीं की। इन्होंने गोपियों की मानसिक अवस्था का अतीव सुंदर चित्रण किया है। तमयता एवं विरह की तीव्रता भी दर्शनीय है—

उद्वेग आये उद्वेग आये हरिको सदेस लाये,

सुनि गोपी गोप घाए, धीर न धरत है ॥^२

देव की गोपियों पर रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। वे एक ओर कामातुर भी हैं और दूसरी ओर विरह-ताप से विवश भी। अपने प्रियतम को प्रसन्न करने के लिए चाहे जिस भाग का अवलंब कराने को तैयार रहती हैं। फिर भी उपालम्ब देने में पटु दिखायी देती हैं। मूर के समान वे भी उद्वेग से कहती हैं कि हे उद्वेग तुम देर से आय हो अथवा हम प्रेम माग को छोड़कर जान माग ही ग्रहण करती। कुँआ को उहाने जो उपालम्ब दिया वह देखकर उनकी उपालम्ब-पटुता का सहा ही परिचय हो जाता है—

कूबरी सो अति सुधीउघु को

मिल्यो बरुदेव ज्यु स्याम सो सुधी।

इस तरह देव की गोपिया मरल अमिष्यवित्त की छोड़कर अत्यंत तिकन, कटु तथा मार्मिक व्यंग वाणावली का प्रयोग करती हैं। वही कही ऐसा प्रतीत होने लगता है कि माना वे उद्वेग का उपहास करने के लिए ही कटिबद्ध हैं और ध्वारे उद्वेग निवृत्त होने के कारण चुपचाप गड़े हैं। कुछ आलोचकों के मतानुसार रीतिकालीन उपालम्ब काव्य में सरसता की दृष्टि से देव ही श्रेष्ठ हैं। पद्माकर की गोपिया विरह से अत्यंत पीड़ित हैं। प्रकृति का उद्दीपन रूप देखकर उनकी विरहव्यथा अधिक ही बढ़ती है। इन्होंने मतिराम की तरह अलंकारों के उदाहरण स्वरूप काव्य रचना की।

१ मतिराम प्रयावली (सतसई)—सपादक कृष्णविहारी मिश्र, पद सख्या ५७०

२ देव सुधा—मिश्रवधु, पद-सख्या २२५

इनकी गोपियाँ भी बुद्धिमती हैं अतः उनके उपालम्भ म करारापन, तात्किकता आदि स्वाभाविक बातें आ जाती हैं। दास कवि ने भी उपालम्भ-काव्य प्रणाली का अनुसरण किया परन्तु उनके काव्य म बुद्धितत्व का प्राधाय, अलवारो का प्राच्युय आदि कारण नीरसता आ गयी है। धनानन्द ने भी अपने मुख्यतः काव्यों मे इस प्रसंग का यणन किया है। उनके उपालम्भ म मधुरता, मार्मिकता एव यानी का विलास दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार सेनापति, भिखारीदास आदि बहून-मे रीतिवालीन पयिषा न कम अधिक प्रमाण म उपालम्भ-काव्य लिखा है।

आधुनिक काल

आधुनिक काल म पाश्चात्य साहित्य के सपक से तथा अनेक यणानिक आविष्कारों से जनमानस की स्थिति म काफी अंतर हुआ। राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति बढ़ने लगी और जीवन से साहित्य का सपक अधिक होने से साहित्य का िनिज और भी विस्तृत हुआ। उपालम्भ परम्परा के काव्य का घरमोचण 'रत्नाकर' कवि के 'उदय गोक' म इसी काल में हुआ। जगन्नाथदास रत्नाकर को ब्रजभाषा के अंतिम कवि माना जाता है। एक दृष्टि से यह कथन उचित भी है क्योंकि उमर अन्तर यद्यपि ब्रजभाषा म यन-तन रचनाएँ हुई भी हों तो भी सड़ी बोली काव्य का हा प्रभाव अधिक रहा। उदय गोक म रत्नाकर जो न प्रारम्भ ही म गृष्ण विरह की यात्रना कर अब तक के अमरगोन परंपरा के काव्या की नुटिमो की मानो पूर्ति हा की है। उनकी गनों अभिनयात्मक एव कथोपकथन प्रपात होने से काव्य म सामांीग

विचित्र प्रकार की सरलता, स्वाभाविकता तथा स्त्रियोचित अल्पता की मनोरम मासुरा है^१ —

जग सपनो सो सब परत दिखायो तुम्हें ।
ताते तुम ऊँघी हम सोबत लखात हौं ।^२

× × ×
यह वह सिंधु नहिं सोखि जा अगस्त लियो,
ऊँघी यह गोपिनि के प्रेम को प्रवाह है ॥^३

मधुर भाषा, चित्रोपमा, अभिव्यञ्जना-सौष्ठव, बहुपता, मनोवैचानिकता आदि गुणों के कारण उद्धव शतक अत्यंत लोकप्रिय एवं श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। कविरामनाथ के पश्चात् इसी परंपरा के अन्तर्गत स्वतंत्र रचना हुई है सत्यनारायण 'कविरत्न' की अपने पूर्ववर्ती उपालभ काव्यों से सर्वथा भिन्न और नवीन, 'भ्रमरदूत'।

सत्यनारायण 'कविरत्न' ने परंपरागत उपालभ प्रणाली को अपनाते हुए भी गता तथा विचारा में पर्याप्त अन्तर रखा है। संभवतः राष्ट्रीय जागरण की साव-दशिक विचार धारा का वह प्रभाव होगा। इनके शीपक में पूर्व कवियों के अनुसार 'भ्रमर' तो है परंतु गीत के स्थान पर 'दूत' की योजना है। 'भ्रमरदूत' शीपक से कवि की विचार धारा की कल्पना नहीं आती। परंतु काव्य को पढ़ने पर कवि का उद्देश्य स्पष्ट होता है। व दावन में यशोदा का विलाप तथा दुःख देखकर भ्रमर कृष्ण के पास जाता है और कृष्ण विरह से हुई बन्दावन की दयनीय दशा का चित्र उपस्थित करता है जिसके माध्यम से कवि तत्कालीन परंपरागत भारत की दयनीय दशा की ओर सचेत धरना चाहता है। वर्तमान युग की राष्ट्रीय विचार धारा, देश प्रेम, नारी शिक्षा आदि का प्रतिबिम्ब 'भ्रमरदूत' में स्पष्ट है। इसमें गोपिया तथा उद्धव के बीच वार्ता-लाप नहीं है तथा सगुण निगुण की चर्चा भी नहीं है। कृष्ण के वात्सल्य रूप का ही अधिबोधन है। इसमें उपालभ के लिए गुंजाइश बसे कम ही है। यशोदा अपनी निरभरता पर पछता रही है—

पदी न अक्षर एक ग्यान सपने न पायो
दूध रही घाटत में, सबसे समय गमायो ।

इन दो स्वतंत्र रचनाओं के साथ-साथ वर्तमानकालीन अथवा कृष्ण विषयक काव्या में कम अधिबोध प्रमाण में इसी प्रसंग एवं परंपरा शैली का प्रयोग पाया जाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र हरिऔध मधिलीकरण गुप्त, अमनलाल चतुर्वेदी, सत्यनारायण पांडे, डा० रामनाथ गुप्त आदि कवियों ने नाम विधेय उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु की

१ उद्धव शतक (प्राक्करण) — रामनाथ गुप्त पृ० ३३

२ उद्धव शतक — रत्नाकर, पृ० ५०

३ वही, पृ० ६६

गोपियाँ एक ओर उद्धव की योग साधना को स्वीकार करना नहीं चाहती तो दूसरी ओर प्रियतम की आत्मा का उत्लघन भी करना नहीं चाहती ! व हृदय में दुःखजनक स्थिति उत्पन्न हो जाने से बड़ी ही व्याकुलता से कह उठती हैं—

हरि सग भोग कियो जा तनसों, तासो कसे जोग करे ?

जा गरीर हरि-सग लिपटानि, बाप कसे नरम धरे ?^१

एक ओर कृष्ण की आत्मा को निरोधाय करने के उद्देश्य से अनिच्छा से भी क्या न हो, वे उद्धव की बातें मानने को तैयार सी दिखायी देती हैं तो शीघ्र ही कृष्ण श्रीडा की मधुर स्मृति से व्याकुल होकर असहाय सी दीग पड़ती हैं। इन्होंने अन्त में उद्धव के द्वारा जो सदेग भेजा है वह बड़ा ही कारण एव ममस्पर्शी है। गोपियों के कृष्ण के प्रति जो उपात्तम है उनमें तिकता की मात्रा यदि कम है तो अस्वाभाविक ही क्या है ?

सही बोली व प्रथम महाकाव्य के रचयिता अयोध्यामिह उपाध्याय ने जन 'प्रिय प्रवास' नामक महाकाव्य के अंतगत उपात्तम काव्य का प्रयोग किया है। "जा गोपियाँ उद्धव का स्वागत करते हुए आपस में बातें करती हैं—

वह परम अनूठ कृष्ण को ले गया था।

अब यह शज आपा कौन सा रत्न लेने ॥^२

अप्रत्यय रीति से किया गया इस व्यंग्योक्तिपूर्ण उपात्तम में जितना गहरा भाव भरा है ! इनकी गोपियाँ के तक गुड मनोबनानिक एव दास्त्राय आधार पर किया गए गान होते हैं। गोपियाँ के विरह में आतता व्याकुलता एव तडपन तो है ही परंतु मूढ में सामाजिक कल्याण का भावना भी निहित है। राष्ट्रीय भावना का दर्शन यहाँ भी होता है। 'डापर' के अन्तगत गानों तथा उद्धव गणों में मधिसीकरण गुण के इस प्रयोग का अभिप्राय किया है। इनकी गोपियाँ जितनी भावुक तथा प्रेम विह्वल हैं उतनी ही बुद्धिचतुर एव मजबूत हैं। दुःख में निरादुःख एव पार्थिव तारियों का अन्त माध्यम में सुगठित किया गया है। मधिसीकरण जी का गोपियाँ के उत्तापना में व्यक्ता गति का उगम परिषय मित्रता है—

ज्ञानी हो तुम सिन्धु भाग्य तो अपना-अपना होता।

करना भी क्या कर न पाय यदि अचिरा थाता ॥

×

मायक भी मरथ है ताजियो उद्धव भा मरथ है।

जाय ! जमार मीन-कान हा भर है मरथ है ॥^३

१ भारतेंदु-प्रपाकनी भा० - (प्रमत्तशरी) पर मन्दा २५

२ प्रिय प्रवास मरम गण, पर १३२

३ डापर—मधिसीकरण गुण (बभुषवति) पृ० १८३ तथा -००

भागवत जैसे पौराणिक काव्य से लेकर आज तक के काव्य में उपालभ की यह प्रणाली प्रचलित रही है। साहित्य वृत्ति पर तत्कालीन परिस्थितियाँ का प्रभाव प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप में पड़ता है। अतः विभिन्न युगों में तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव उपालभ काव्य प्रणाली पर भी स्वभावतः हुआ। भक्तिकालीन काव्य में भावपत्र की प्रचुरता है तो रीतिवादी काव्य पर कलापक्ष की। आधुनिक युगीन काव्य में वैचारिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव परिलक्षित होता है। युग की प्रवृत्तियों के अनुसार उपालभ में अंतर अवश्य होना रहा। यद्यपि मूलतत्त्व में परिवर्तन तथा भ्रमरगीत की कथावस्तु एवं उपालभ की शैली का आकषण हिंदी कवियों में अवरदस्त था। इसीलिए आज तक के कवियों में उम शैली का प्रयोग करने का आकषण बना हुआ है।

१८ / काव्य की आत्मा भारतीय विचार-प्रवाह

भारतीय साहित्य शास्त्रिया ने काव्यशास्त्र का विवेचन करते हुए उसने विविध अंगोपांगों का विचार किया है। काव्य का अध्ययन करने के लिए काव्य की आत्मा को समझना अत्यावश्यक है। काव्य की आत्मा की जिज्ञासा से पहले हम उसके स्वरूप का निर्धारण करना आवश्यक होगा। गुरु और अर्थ दोनों का य के गरीर माने गए हैं। य दोनों अभिन्न हैं, एक के बिना दूसरे की सत्ता असंभव है। गरीर के बिना आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करना दशनाशास्त्रियों के लिए भले ही संभव हो परन्तु आत्मा के बिना शृंगार की आलवन-स्वरूपा साहित्य सावधमयी सलनाओं के बोधल कात कमनीय बलेवर भी हेय और त्याज्य हैं। आत्मा ही के कारण गरीर का महत्व है नहा ता निष्प्राण गरीर भले ही वह अनीय सुन्दर ही क्या न हो जिस काम का ? इसलिए भारतीय आचार्यों ने काव्य की आत्मा को विशेष रूप से अपनी मनीषा और समीप का विषय बनाया है।

वक्त्रम के दो पङ्ग होते हैं। प्रथम पङ्क है विषय विषय का अनुभव करना जिस आन्तरिक गुण होने से अनुभूति या भावप्राप्ति माना जाता है। दूसरा पङ्क है उग विषय विषय के अनुभव को सुचारु एवं सुस्पष्टस्थित रूप में अभिव्यक्त करना जिसे बाह्यगुण होने से अभिव्यक्ति या वक्त्रपङ्क माना जाता है। साधारणतः इन्हीं दो पङ्कों के आधार पर आचार्यों ने काव्य की आत्मा विषयों अपने मता का प्रतिपादन किया है। काव्य के विभिन्न अंगों में से ही जिसे एक पर बल देकर उगी को काव्य की आत्मा निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया। भरतमुनि ने सत्कर पञ्चरात्र जगन्नाथ तत्र सगभग दो हजार वर्षों के समय में इस विषय को लेकर मुख्यतः पाँच सङ्गणों के नाम विषय उल्लेखनीय रहे हैं। वे इस प्रकार हैं—

सङ्गणाय

प्रथम आवाप

१ अलङ्कार सङ्गणाय

दण्डा, भाग्य रङ्ग उन्मत्त भा-
आवाप-मु तत्र
यामत

२ वक्त्राणि सङ्गणाय

३ रात्रि सङ्गणाय

४ ध्वनि सप्रणय

आनन्दवधन

१ रस सप्रणय

भरतमुनि, विश्वनाथ

१ अलंकार सप्रदाय

इस सप्रणय के प्रवक्ता तथा समर्थक आचार्य भामहृ दण्डी, उद्भट, द्रष्ट आदि माने जाते हैं। रस सप्रणय के पहले विरोधी आचार्य भामहृ थे। उन्होंने अलंकार का ही काव्य की आत्मा मानते हुए कहा कि जिस प्रकार कोई नारी चाहे जितनी भी सुन्दर हो, यदि वह अलंकार विहीन है तो शोभा संपन्न नहीं हो सकती, उसी प्रकार काव्य में चाहे जितने भी गुण हों यदि उसमें अलंकारों की योजना नहीं है तो वह काव्य आह्लादकारी नहीं हो सकता—

न कातमपि निर्भूय विभाति घनिता मुखम् ।

आचार्य दण्डी ने भी अलंकारों को काव्य की शोभा के कारण बताते हुए कहा—

काव्यशोभाकरान् घर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।

चन्द्रानुकाकार आचार्य जयदेव ने तो यहाँ तक कहा कि जो आचार्य यह मानते हैं कि अलंकार ही काव्य हो सकता है तो वे यह क्या नहीं मानते कि अग्नि भी उष्णता रहित हो सकती है—

अग्नी करोति य काव्यम शब्दार्थविनलकृतौ ।

असौ न भयते कस्मादुष्णमनलकृतौ ।

अथवा उष्णतारहित अग्नि की जिस प्रकार कल्पना तक नहीं की जा सकती उसी प्रकार अलंकाररहित काव्य की कल्पना भी संभवनीय नहीं। उष्णता तो अग्नि का प्रधान धर्म है, उसी के कारण तो अग्नि की महत्ता मानी जाती है। यदि उष्णता ही न हो तो अग्नि की सत्ता का मूल्य ही क्या रहगा? उसी प्रकार अलंकार के कारण ही काव्य का महत्त्व है। यदि काव्य में अलंकार ही न हों तो काव्य की सत्ता ही क्या रहगा? रस सप्रदाय के समयक आचार्य विश्वनाथ ने भी अलंकार के महत्त्व को मानते हुए अलंकारों को रस के उत्कृष्ट विधायक माना है —

रसादीनुपकृतौऽलंकारास्तेऽगदादिष्वत ।

दण्डी के परवर्ती आचार्य उद्भट ने अलंकार सप्रदाय को अधिक समृद्ध बनाया। आचार्य द्रष्ट ने रमा का स्पष्ट रूप से अलंकारों की दासता से मुक्त करते हुए परस्पर विरोधी सिद्धान्तों को समन्वित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया।

हिंदी साहित्य के आचार्यों पर इस सप्रदाय का उतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। रीतिकाल के आचार्य केवलनाथ ने इस अलंकार सप्रदाय से प्रभावित होकर कविप्रिया जमे श्रवण का निर्माण किया। उन्होंने भी अलंकारवादी आचार्यों की तरह अलंकारों को काव्य की आत्मा मानते हुए कहा—

अदपि सुजाति सुलच्छनी, सुखरत्न सरस सुवत्त ।

भूषण विनु न विराजई कविता, वनिता, मित्र ॥

अलंकारों को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए भी इस संप्रदाय के अधिकांश आचार्यों ने रस की महत्ता को अस्वीकृत नहीं किया। उन्होंने रस का अन्तर्भाव रसवत अलंकारों में किया और रसवत, प्रिय उजस्विन तथा ममाहित इन चार अलंकारों में विधान किया। अलंकारों का महत्त्व स्वीकार करने हुए भी उन्हें मूल पदार्थ का स्थान नहीं दिया जा सकता। अलंकार साधन हो सकते हैं पर साध्य नहीं और अलंकार ही तो सब कुछ नहीं हो सकते। काव्य में अलंकार के समतुल्य से ही काव्य का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके लिए रस आदि का होना भी आवश्यक है। अलंकार संप्रदाय के पोषक आचार्य द्रष्टा ने भी काव्य में रस का होना अत्यंत आवश्यक मानते हुए कहा है—

तस्मात्तत्पतय्य यत्नेन महीयता रसयुक्तम् ।

इसलिए अलंकारों का काव्य में विगिष्ट स्थान होत हुए भी उन्हें काव्य की आत्मा मानना उचित न होगा।

२ वक्रोक्ति संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य कुतब हैं। यद्यपि कुतब ने पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी वक्रोक्ति का विवेचन किया था परन्तु आचार्य कुतब की भांति उन्होंने वक्रोक्ति का काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार न करते हुए अलंकारों के अन्तर्गत इसका समावेश किया था। अलंकार संप्रदाय के संस्थापक आचार्य भागह तथा दण्डी के मतानुसार वक्रोक्ति वचन उस विविध शैली का नाम है जो साधारण इतिवृत्त शैली से भिन्न हो। आचार्य कुतब ने वक्रोक्ति का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है—

सैवा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाष्यते ।

यानोऽस्या कथिता काव्य कोलकारोऽनयार्थिता ॥

आचार्य दण्डी ने बाह्यमय के दो भेद करते हुए कहा—

विभक्त द्विधा स्वभावोक्ति वक्रोक्तिश्चति वाच्यमयम् ।

रौप्य संप्रदाय के प्रवक्ता आचार्य वामन ने काव्य में वक्रोक्ति स्थान इस प्रकार स्वीकार किया है—

सात्त्विकानुशङ्गा वक्रोक्तिः ।

परन्तु आचार्य कुतब ने अन्य आचार्यों की तरह वक्रोक्ति को काव्य अलंकार नहीं माना प्रत्युत अत्यंत सफल और स्पष्ट भाषा में वक्रोक्ति का काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार करने हुए कहा—

वक्रोक्ति काव्यस्य जीवितम् ।

वक्रोक्ति की परिभाषा दत्त हुए आचार्य कुतब ने लिखा है कि प्रसिद्ध वचन से विभिन्न अभिधा अर्थात् वचन गला ही वक्रोक्ति है। यह क्या है? वदम्यपूण गता द्वारा उक्ति है। वदम्य का अर्थ है विदग्धता, कवि कम की गल उसका भंगिमा या शोभा, उसका द्वारा उक्ति। विचित्र अभिधा की वचन गली को ही वक्रोक्ति कहते हैं।

कु तक ने वक्रता के विराम वक्रता, पद-पूर्वाध वक्रता, पदपराध-वक्रता, वाक्य वक्रता प्रकरण वक्रता और प्रबध वक्रता आदि अनेक भेद किये हैं ।

एक बात विशेष द्रष्टव्य है कि वक्राक्ति को काव्य की आत्मा मानते हुए भी आचार्य कु तक द्वारा रस का उपक्षा नहीं की गयी । इ होने केवल रस को भी वक्राक्ति के साधन रूप में स्वीकार करते हुए आचार्य दड़ी आदि की भाँति रसवत् अलंकार के अलगत समाविष्ट करके रस का महत्त्व स्वीकार नहीं किया बल्कि रस को कवियों की वाणी का आधार माना है—

निरतर सोदगार गम सौंदर्य निमरा ।

गिर कधीना जीवित न क्यामात्राश्रिता ।

इस प्रकार स्पष्टतः ही आचार्य कु तक ने रस का महत्त्व स्वीकार किया है और वह भी पर्याप्त प्रबल शब्दों में । इसलिए वक्राक्ति को भी काव्य की आत्मा के रूप में स्पष्टतः नहीं स्वीकार किया जा सकता ।

३ रीति संप्रदाय

आचार्य वामन का रीति संप्रदाय के संस्थापक माना जाता है । अलंकार संप्रदाय के पश्चात् इस संप्रदाय की निर्मिति हुई । वामन ने रस और अलंकार के स्थान पर रीति की स्थापना करके रीति को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया—

रीतिरात्मा काव्यस्य ।

रीति का विवेचन करते हुए इ होने बताया कि विशिष्ट पद रचना का नाम रीति है—

विशिष्टा पदरचना रीति ।

और फिर विशिष्ट शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—

विशेषो गुणात्मा ।

अर्थात् रचना में माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों का समावेश ही उसकी विशेषता है और यही विशेषता रीति कहलाती है । संक्षेप में, वामन के अनुसार गुण-युक्त पद रचना ही काव्य की आत्मा है ।

इस संप्रदाय के आचार्यों ने विभिन्न रसों के उपयुक्त गुणों का निर्देश भी किया है । जम शृंगार रस के लिए माधुर्य तथा वीर रस के लिए ओज गुण उपयुक्त माना है । इस संप्रदाय में विशेषता गुणा की दो गयी है । काव्य गोभा के कारण धर्म गुण कहलाते हैं—

काव्य नामाया कतिरो धर्मा गुणा ।

इसलिए कतिपय आचार्य इस संप्रदाय की रीति संप्रदाय के स्थान पर गुण संप्रदाय कहना अधिक समीचीन मानते हैं । गुण और रीति दोनों ही अन्त में माध्यम नहीं रहते बल्कि भाषा के साधन बन जाते हैं । रीति का सत्रध गुणा से है और गुणा का सत्रध काव्य की आत्मा 'रस' से है । रीति को काव्य की आत्मा के रूप में

उपयुक्त संप्रदायों का सुलनात्मक विचार करने पर दिखायी देता है कि प्रायः प्रत्येक संप्रदाय ने अपने संप्रदाय को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसका समर्थन किया है। काव्य के बहिरंग और अंतरंग की दृष्टि से सूक्ष्मता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि अलंकार, रीति तथा वक्रोक्ति संप्रदाय काव्य के बहिरंग अर्थात् कलापत्र को प्रधानता देते हैं और ध्वनि तथा रस संप्रदाय काव्य के अंतरंग अर्थात् आत्मपत्र को प्राधान्य देते हैं। यह मान्य है कि शरीर के सौंदर्य की अपेक्षा आत्मा का अस्तित्व अनिवाच्य है। शरीर की विकारावस्था में आत्मा की प्राणवृत्ता खंडित नहीं होती, किंतु आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। इसलिए काव्य के बहिरंगवादी अलंकार रीति तथा वक्रोक्ति संप्रदाय काव्य की आत्मा का स्थान नहीं ले सकते। ध्वनि संप्रदाय को अनेक विद्वान् रस संप्रदाय का ही व्यावहारिक रूप मानकर उसे रस के अंतर्गत लेते हैं। रस संप्रदाय बहिरंग पक्ष को महत्त्व न देते हुए अंतरंग पक्ष को ही महत्त्व देता है। इसलिए अधिकांश 'विचारक' रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने तथा साहित्य के समीक्षो ने अपनी अपनी धाराणाभा व अनुस्यू 'साहित्य' को परिभाषाए बनायी हैं। किसीने उसे ज्ञान राशिका सभिन कोश कहा तो किसी न जीवन की आलोचना। किसीने प्रगतिशील गतिशील जीवन के लिपिबद्ध व्यक्तोकरण को 'साहित्य' माना तो किसी ने श्रेष्ठतम विचारो की उपयुक्ततम शब्दो म लिपिबद्ध अभिव्यक्त को। साहित्यकार के एक सामाजिक प्राणी होने स उसके प्राय सभी सस्कार समाज के बीच म ही होते हैं। अत वह अपने विचारों के सूत्र भी स्वभावन वही से प्राप्त कर लेता है। साहित्यकार सामाय व्यक्तिया से कही अधिक सवदनशील रहता है। उसे अपनी अनुभूतिया को व्यक्त किए बिना शांति नही मिलती। वह जिस परिस्थिति विशेष म पदा हाता है, सस्करण ग्रहण करता है, उसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप म उसकी कृतियो म प्रतिबिंबित होता रहता है। इसीसे कुछ विचारक साहित्य को समाज का प्रतिबिंब अथवा दपण मानते हैं। कुछ आलोचक उसे समाज का छायाचित्र भी मानना उचित समझते हैं। प्रतिबिंब या दपण की अपेक्षा छायाचित्र की उपमा अधिक समीचीन लगती है क्योंकि साहित्यकार अपनी साहित्यिक कृतियो मे समाज का चित्र ज्या-का-त्यो नही रखता बल्कि उसके परिष्कृत रूप का ही अकन करता है। कभी-कभी अपने असाधारण व्यक्तत्व स युग चेतना निर्माण करने वाले साहित्यकार भी होन रहत हैं।

साहित्य और समाज का अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों अयो-याथयी हैं। समाज के बिना साहित्य जीवित नही रह सकता और साहित्य के बिना समाज जनन नही बनता। वास्तविक स्थिति का दिग्दर्शन ही साहित्यकार का लक्ष्य नही होना उसे समाज-सुधारक की भूमिका भी करनी पडती है। इतिहास के पृष्ठो को उलट देने से यह जान होना है कि विभिन्न प्रातिया के प्रेरक भी किसी राष्ट्र के उत्कृष्ट साहित्य निर्माता ही रहत हैं। उत्तम साहित्यिक अपना कृतियो के माध्यम से सामाजिक राजनतिक परिस्थितिया म अपेक्षात परिवर्तन कराने म समय होता है। बीरगाथा काल म कितने ही हनोदसाहित बीरो को चारण कवियो के साहित्य ने स्मृति तथा विजय प्राप्त करा

दी थी। अनेक कवियों ने कृतव्य विमुक्त व्यक्तियों को कृतव्याभिमुख बना लिया था। तबेनी राणी के मोहपाग म बंधे जयपुर गरा की आंगूठो उमे कृतव्याभिमुख बागो का बाय कवि बिहारी क इम दोह न किया था—

नहि पराम नहि मधुर मधु, नहि विनास इहि बाल।

अलि कलिहो म घयो रह्यो, आगे कीन हनाल ॥ १

मधिलीगरण गुप्त द्वितीय-युग के एक अष्ट कवि माने जाते हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी साहित्य जगत में उनका आगमन हुआ। यह युग राष्ट्रीय चेतना का था। स्वामी दयानंद के सामाजिक समतामूलक धर्म के प्रचार ने उस प्रवृत्ति को और भी उभारा। १९०५ के बंग भंग आंदोलन ने राष्ट्रीय चेतना की बलिगांवाला म पुनर्जातका काम कर उस अधिक ही प्रज्वलित किया। उस ज्वाला की आभा में भारतीय समाज जीवन भी उज्वलित-सा हान लगा। राष्ट्रिय तथा सामाजिक क्षेत्रों में प्राति मुक्त विचार धाराएँ निर्माण होने लगी थी। इन जागरित वातावरण का प्रभाव मधिलीगरण जैसे भावुक कवि के काव्य में प्रतिबिम्बित हुए बिना कैसे रहता? उनकी 'भारत भारती' समस्त हिन्दी प्रेमियों के कठकी भारती बन गयी थी। दण्डावस्था समाप्त कर यौवन की देहली पर आने वाली खड़ी बाग की अपनी विविध शालिया में निमित्त विस्तृत काव्य राशि से जातिमान बनाया। उनका काव्य की विचार धारा न ही उन्हें 'राष्ट्र कवि' को उपाधि से विभूषित किया।

गुप्त जी की समस्त रचना देखकर लगता है कि उन्हें भारतीय जनमानस का अच्छी पहचान थी। युगों से आए हुए धार्मिक संसारों में गीघ्रता से परिवर्तन होना उतना सरल एवं सहज न था। अतः अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पौराणिक काव्य क्षेत्र को चुना। उनके अधिकांश काव्य पौराणिक कथावस्तु पर आधारित हैं। यद्यपि उनकी शरीर पौराणिक दिखाई देता है फिर भी उनकी आत्मा आधुनिक ही है। उपेक्षितों का अंतरण अभिव्यक्त करने में गुप्त जी को आशातीत सफलता मिली है। इस दृष्टि से 'साकेत तथा 'यशोधरा' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त जयद्रथ वध, पंचवटी, नहूष, सिद्धराज शकुंतला, भ्रूकर द्वार आदि साधारणतः चात्सीस ब्यालीस काव्य ग्रंथों का प्रणयन उन्होंने किया। इनमें से कई ग्रंथों में पौराणिक पृष्ठभूमि पर समकालीन सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है।

'द्वार' की रचना जिम परिस्थिति में हुई वह लेखक के जीवन में बहुत ही सकल्प विकल्प पूर्ण रही। कभी कभी ऐसी विपत्तियों की सर्वांगीण काव्य को जन्म देती हैं। ठीक यही बात गुप्त जी के सम्बंध में साधक हुई। साकेत और यशोधरा का छोड़ शेष सभी ग्रंथों से 'द्वार' कई दृष्टियों से उत्तम रचना मानी जा सकती है। 'सकी गली भी अर्थ रचनाओं से सबका भिन्न है। विविधता में एकता के दर्शन इस काव्य में किए जा सकते हैं। इस काव्य की विशेषता यह है कि प्रत्येक शब्द

अपनी अलग सत्ता रखते हुए भी ‘द्वापर’ का एक अंग भी रह चुका है। इसकी जाम-निवेदनपरक शैली में मुक्तक के गुण भी दृष्टिगोचर होने हैं और प्रबोधात्मक ध्वनि भी। एक माला में अनुस्यूत मणिधा की सत्ता कुछ सीमा में स्वतंत्र होने हुए भी माला के सूत्र के साथ उनका सन्ध अटूट रहता है। प्रायः वही स्थिति ‘द्वापर’ की शैली की है। कृष्ण प्रेम के सूत्र में राधा यगोदा, नद, वनराम, नारद, विधना कस, कुन्ता, उदब, गोपी, सुदामा आदि सभी पात्र बंधे हुए दिखायी देते हैं।

अप्य काव्यो की भांति ‘द्वापर’ का पृष्ठाधार भी पौराणिक कथा ही है। अप्य पौराणिक काव्यकी कथावस्तु की सीमा में मयिलीशरण गुप्त जी को अपन उमुक्त एव सुधारवादी विचारा को विस्तार से व्यक्त करने की उतनी गुआइश न मिली जितनी ‘द्वापर’ में। सम्भवतः अपनी इस श्रुति की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही उन्होंने द्विपर के अतगत आत्म निवेदनात्मक शैली की योजना की होगी। यद्यपि ‘द्वापर’ के सभी पात्र आत्म निवेदन के प्रवाह में प्रसंगानुकूल सामाजिक सुधार के सक्त देते हैं फिर भी उसका वास्तविक उत्कल्प बलराम नारद तथा विधता खड में ही दिखायी देता है। विशेषतः बलराम खड को पढ़कर लगता है कि बलराम के माध्यम से स्वयं सामाजिक प्रबोधन देनेवाला साहित्यकार ही भाँक रहा है। भारत के पुरुषप्रधान समाज में युवा से प्रताडित तथा अपमानित नारी खरनाणी विधता’ के रूप में साकार हुई है। प्राचीन सम्भारा से नारद विषयक बनी हुई पूर्वग्रह दूषित कल्पना का एक धक्का सा दकर नय रूप में नारद की ओर दबा गया और शांति प्रस्थापित करने के लिए शांति की योजना की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। परिस्थिति के अनुकूल पात्रजय के स्थान पर मधुर रसनायिनी विष्णु की स्वीकार करने वाले कृष्ण मानो ‘परिवर्तन में यदि उन्नति है तो हम भी बढ़ते जाते हैं’ का सदेश ही देते हैं।

विनिमय में कुछ न चाहने वाली राधा के आत्मसम्पन्न में भाग्यीय नारी के निमोम प्रेम तथा औत्साह्य का शिन्दान कराया है। पूण काम यगोदा के सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण कर मात सुख के आनन्द को व्यक्त किया है। यदि यगोदा के समान नारियो में औदाय हा तो समाज के प्रत्येक परिवार में नन्दन बन सा निर्माण हो सकता है। ग्वान बाल के द्वारा बानका की मिननसार निष्पट, सम भाव की खिलाडी प्रवृत्ति का आदग सामन रखा। देवकी तथा उग्रमेन के माध्यम में माना पिता की अधिकार ज्ञानसा तथा उमक दुष्परिणामा की चर्चा कर मनुष्य का मनुष्य बनकर रहने का सदेश दिया है। कस के चित्रण में शक्ति का दुर्लभयोग करने बान व्यक्ति का दुराचार किस भीमा पर पहुँच जाता है और अहंकार तथा त्रिविक्रूपता के कारण अंत में वह अपन ही परा पर किस प्रकार कुन्हाडी मारता है आदि बानो के दिग्दर्शन से समाज-वटका का एक द्वाारा दे दिया है। कुब्जा का स्वभाव पूर्ववर्ती काव्यो के अनुसार न रखकर उममें मानवता के अनुकूल भाव व्यक्त किया है। परराग

परपरा के बल अकम्प्य बने रहेंगे तो क्या ठीक होगा ? जिस तरह पूव परपरागत भूमि को केवल पाने मात्र ही से काम नहीं चलता बल्कि उसमें कत्तव्य करने, नाड भगाट को उखाड देने तथा बीज बाने का काय भी हमें बरना पडता है। अपनी भूमि को पुत्रों द्वारा पल्लवित, पुष्पित तथा फलित देखकर पूवजो को दुःख न हाकर प्रसन्नता ही होगी। ठीक यही बात उज्ज्वल परपरा के सबध में हो सकती है। अनावश्यक बाता को निकालकर तथा आवश्यकतानुसार नयी नयी प्रथाएँ तथा बात जोडकर उसे उज्ज्वलतर बनाने से वे प्रसन्न ही हागे—

होगे वे कृतकृत्य तभी तो, तुम सपूत जब होगे,
नित्य नये फल फूलों वाली [हरियाली भर दोगे।
मिला हमें उपवन पुरखों का, यह तोभाग्य हमारा,
फल ही लेंगे या देंगे भी हम भ्रम जल की धारा ?^१

पुरानी वस्तुएँ यदि जीण शीण हो जाती हैं तो उनके प्रति ममत्व शिथिल हो उहे घर में ही रख देने में फायदा तो कुछ भी नहीं है। आज का कुसुम हार भी बल कूडा बन जाता है। अतः पुरानी परपरा की कुछ बातें कितनी भी सुन्दर हान पर यदि आज जीण एवं निरुपयोगी हुई है तो उनका तुरत त्याग ही श्रेयस्कर है। दुनिया का यह नियम है कि एक समय जो प्राण्य होना है वह दूसरे समय त्याग्य भी हो जाता है। सर्दी में परम प्रिय कबल गरमी के दिना में भार सा लग जाता है। होना के दिन रग के छोटे सुन्दर लगते हैं व ही शिवाली के समय घबरा लगते हैं। अर्थात् प्राचीन काल की सभी बातें यद्यपि उस समय अत्युत्तम था फिर भी यह आजकल नहीं है कि व इस युग में भी वैसे ही है। समयानुकूल मन्मन्दिन युद्ध से काम करने में दुर्भाग्य है। केवल हमारी परपरा उज्ज्वल थी हमारे यहाँ ऋषि मुनि वीर सात महात्मा थे। गय आदि बातें बहकर काम न चलगा। भूतकाल हम यहाँ प्ररणा देता है ना अतः उन प्ररणाओं का हम ग्रहण करेंगे परन्तु भूतकाल ही पर अवलम्बित कल्पि न रहे। वतमान तथा मन्विक की ओर दलकर काय करने से ही हम लाभ हागे—

पीछ पितर पृष्ठ पीषक हैं पर मविद्यता भाग,
यदि अपना परिणाम न देखें, तो हम अद्य अभाग।
वतमान वह आयोजन है निज भावी जीवन का,
बुद्ध अतीत-सकल मिले तो अधिक लाभ घट जनका।^२

वतमानकालीन समाज में एक युवता की भावना पाई जाती है। युवता का उज्ज्वल एवं बभ्रवगाना परपरा का गुणगान गाव व अपन युग का हान समझ पाता है। वास्तव में अपन युग का हान मानना अस्मत्प्रतिना हागी। इस युवत तथा युवत विचारधारा में हम निरन्माहित बन जाएँगे। वास्तव में त्रिम युग में हम युग युग का

हमार त्रिए सबसे बडा युग होना है। प्राचीन युग मे और आज के युग मे कौन-सा बग अंतर हो गया है ? वही प्रात काल है वही साया है, वही सूर्य है, वही चंद्र है वही रात है, वही दिन है—अथात् पूव युग मे जो प्रकृति थी वही इस युग मे भी है। इस युग मे हम रहना है पूवजो के युग मे नही। अत अपने युग के प्रति पूव ग्रहणित जो दृष्टिकोण बन गया है उसे बदलना चाहिए। यदि सूदमता मे एव विचारपूवक देखा जाए ता पात होगा कि विगत युग से भी यह युग अधिक श्रेष्ठ है—

विगत हुआ तो विगतो का युग, अपना तो प्रस्तुत है,
कितना नव्य नय तुम देखो, यह अपूव अदभुत है।
नये नये अध्याय खुले हैं, नये पाठ हैं कितने,
कसे काट छाट के कौशल और ठाठ हैं कितने ।^१

इतना उपदेश देने पर भी बलराम जैसे नेता की विनम्रता द्रष्टव्य है। बलराम कृत है— हे गोपो, तुम मेरे अनुगामी बने हो जिससे तुम्हारा मेरे प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। केवल इसी प्रेम के कारण तुमने मेरा नतत्व स्वीकार किया है। परन्तु ध्यान म रखो कि जहाँ वही तुम्हें विरोध करना है तुम प्रथम अधिकारी हो। मेरी वही हुई गंगा को ठीक तरह साव नो और यदि वे उचिन लग जाएँ तो उसे मान लो।' जन तन का कितना सुंदर आदश प्रस्तुत किया गया है। उनके पश्चात् व फिर अपने विचारा का निबदन प्रारंभ करते हैं। मनुष्य जसा कम करता है उसी के अनुसार उसे फल मिलना है। देवताओ का भी अपने कम फल को भुगतना पडता है तो हम मानवो का क्या कहना ? हम देवताओ की पूजा अर्चा करते हैं फिर भी दैवी बाधाएँ आती ही रहती हैं। उनसे मुक्ति कहा ? इन मुमीवतो के कारण ही हम सघ सपना' की प्राप्ति हुई है—

फिर भी दैवी बाधाएँ तो आती ही रहती हैं,
मिल जुलकर सम्पूर्ण प्रजाएँ जिहें यहाँ सहती हैं।
सह सकता ही तो सर्वोपरि, द्रष्ट और क्या माई?
ध्यापक विपदा से ही हमने सघ-सम्पदा पायी ।^२

इसके अनंतर जीवन मरण का नियति-दृष्टि से देखकर उह प्राकृतिक परिवलन क रूप मे समझने का सदेग दिया जाता है। अपनी भूमि मे ही सारी विभूतियाँ पायी जाती हैं। आज के मन यात्रो तथा कमवाडों का आडम्बर, देवा देवताओ के नाम पर अपनी प्रवृत्तियो का पोषण करने की ब्रति आदि सामाजिक कुप्रथाओ पर करारे व्यग बिय गए हैं। अत मे न्याय, धर्म, सत्य आदि के लिए अयाय अधम एव असत्य का सामना करना भी श्रयस्कर तथा योग्य माना है—

१ द्वार—मधिलीशरणगुप्त, पृ० ५३

२ वही पृ० ५७

‘माय घम के लिए लड़ो तुम, श्रुत हित समझो-बूझो,
अनय राज, निदय समाज से निभय होकर जूझो।

× × ×

रही चुनौती आज हमारी, अधिक क्या कहूँ यम को,
नयी सृष्टि के लिए प्रलय भी प्रक्षणीय हो हमको।^३

बलराम के विचारों में श्रांति का स्वर गूँज उठता है। समस्त गुप्तजी अपने समाज की रुढ़िगत परंपरा के प्रति प्रेम, नवीन प्रथाओं के प्रति क्रिष्क भूतकाल के बभ्रव का वथा अभिमान, वर्तमान युग के प्रति औत्साहिक, धार्मिक आडंबर, यत्न याग की श्रुतता एवं पाशवी वृत्ति अधविश्वास, अधिवार-लालसा, शक्तिया का दुरुपयोग, स्वाथ परायणता आदि समाज-जीवन की उनति म बाधक प्रवृत्तियाँ को नष्ट कर उनके स्थान पर रुढ़िगत परंपरा का आवश्यकतानुसार त्याग, समयानुसार नवीन प्रथाओं का निर्माण, भूतकाल की अपक्षा वर्तमान एवं भविष्यत की ओर देखने की दृष्टि, मानवता, शक्ति का सदुपयोग सत्कर्म की प्रवृत्ति, सतकता देशप्रेम, कर्तव्य परायणता आदि समाज जीवन को उच्चतर तथा आदर्श बनाने में उपयुक्त बातों की स्थापना करना चाहते हैं।

इस प्रकार द्वापर के लगभग सभी पात्रों के माध्यम से कही मृदुता से ता कथा कठोरता से, कही सकेतात्मक तो कही अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कही यजनात्मक अथवा लक्षणात्मक प्रणाली से तो कही अभिधात्मक सरल रीति से जहाँ जसे उचित लग, मधिलीशरण गुप्त जी ने सामाजिक प्रबोधन देकर भारतीय जन जीवन को समुन्नत बनाने का सफल प्रयत्न किया है।

२० | हिन्दी नाट्य-साहित्य और उमका भविष्य

स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा बनने का महान सौभाग्य हिन्दी को प्राप्त हुआ। जब तक हिन्दी अथवा भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के समान मानी जाती थी तब तक उसके साहित्य के भविष्य का विचार सीमित क्षेत्र में ही किया जाता था, लेकिन अब हिन्दी संपूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा का गौरवपद पा चुकी है इसीलिए उसके साहित्य की ओर भारत के सभी प्रांतों के लोग बड़ा सतकता से देख रहे हैं। हमारे देश की राष्ट्रभाषा का साहित्य अथवा देश की राष्ट्रभाषा की तुलना में समृद्ध, विनाल एवं उच्च स्तर का होना चाहिए इस प्रकार की यदि कोई अपेक्षा करे तो इसमें आश्चर्य नहीं है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंग—काव्य नाटक, कहानी, निबंध, पत्र-पत्रिकाएँ तथा आलाचना—आदि को समृद्ध करने का उत्तरदायित्व अब केवल हिन्दी भाषियों पर ही नहीं रहा बरन अहिन्दी भाषियों का भी हिन्दी साहित्य की समृद्धि तथा उन्नति के लिए सक्रिय योगदान देना चाहिए। मातृभाषा के प्रति पूरा आदर तथा प्रेम रखने हुए भी वह काव्य सहज रूप में किया जा सकता है।

अनेक बार देखा जाता है कि मातृभाषा की भोज में कई लोग हिन्दी साहित्य के उपेक्षित अंग पर व्यंग्य करते हैं। वास्तव में यह दृष्टि बदलना अत्यावश्यक है। कुछ प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य हिन्दी साहित्य से अधिक समृद्ध दिखाई देता है तो यह हिन्दी के लिए बड़ा गौरव की वस्तु नहीं है। भाषा भगिनियों का आग्रह प्रदान यदि होना रहे तो हिन्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति होने देर न लगेगी। हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों की तुलना में विशेषतः नाट्य-साहित्य बहुत काल तक उपेक्षित रहा है। इस लेख में हिन्दी नाटकों के विकास का संक्षेप में परिचय देने हुए उनके भविष्य का संकेत मात्र करने का प्रयास कर रहा हूँ।

अथ आधुनिक भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी भी संस्कृत के गम से उत्पन्न हो चुकी है। अतः संस्कृत की विस्तृत, समृद्ध तथा सक्तिशाली नाटक-परम्परा उत्तराधिकार में पाने का सौभाग्य स्वभावतः उम भी प्राप्त हुआ है। ऐसा होना ही ही १९वीं सताब्दी के पूर्व हिन्दी का नाट्य-साहित्य समुन्नत रूप में दिखाई नहीं देना।

बहुत प्रयास करने पर इस काल में विविध एकाध दृजन ही नाटक मिल सकेंगे और इनमें भी नाटक के प्रधान तत्वा का संवया अभाव ही पाया जाता है। फिर भी वास्तविक रूप में हिंदी नाटकों की अविच्छिन्न धारा भारत में दुःखकर से ही प्रवाहित हुई।

संस्कृत जैसी समृद्ध विशाल तथा प्रगल्भ भाषा की परंपरा, हिंदी भाषियों की संख्या विस्तृत प्रदेश आदि के होत हुए भी बंगला तथा मराठी भाषाओं की तुलना में हिंदी नाट्य साहित्य कुछ हद तक पिछड़ा हुआ क्यों दिखाई देता है? इस समस्या का समाधान करने के लिए हिंदी नाटकों के अभावों के कारणों की संक्षेप में विवेचन करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है।

उत्तर भारत की राजनतिक एकता का भंग होने से केन्द्रीय शासन सखित होकर संवय अशांति फल गयी थी। नाटक का यथोचित विनाम क लिए देस में चिर शांति का होना अत्यंत आवश्यक माना जाता है। इंग्लंड में एलिजाबेथ के शासन काल में शकसपियर तथा अन्य नाटककारों द्वारा अग्रजी साहित्य को जो समृद्धि प्राप्त हुई उसका प्रधान कारण तत्कालीन दंड केन्द्रीय शासन तथा देस की चिरशांति ही माना जाता है। दुर्भाग्य से आरभ की कुछ शताब्दियों में हिंदी प्रदेश में शांत बातावरण का अभाव ही रहा। फलतः हिंदी नाट्य साहित्य को विकसित होने के लिए योग्य भूमि न मिली।

नाटक जैसी सलित कला का वास्तविक रूप में विकास तभी हो सकता है जब उस राजाश्रय (शासनाश्रय) तथा लोकशास्रय प्राप्त होता है। दोनों में से किसी एक का सहयोग भी विकास के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। यह दिखाई देता है कि संस्कृत तथा अंग्रेजी नाट्य-साहित्य के विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजकीय प्रोत्साहन प्राप्त हो चुका है। दुर्भाग्य से मध्यकाल का अंत तक हिंदी नाटकों को राजाश्रय तथा लोकशास्रय दोनों से वंचित रहना पना क्योंकि गृह कलह चिरशांति का अभाव, परचक्र का भय आदि कारणों से शासक तथा जनता अन्त थी। परिणाम स्वरूप नाटक-जस मनोरंजन के साधन की उपना रही।

नाटक का नाटकोचित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए शक्तिशाली तथा प्रौढ़ गद्य की भी बड़ी आवश्यकता है। केवल कविता उसने लिए पर्याप्त नहीं है। हिंदी साहित्य में १९वीं शताब्दी तक गद्य का अभाव-सा दिखाई देता है। अतः कुछ अगतक गद्य का अभाव यह भी एक कारण नाट्य साहित्य के विकास में बाधा रूप माना जाना है। डा० श्रीहृण्णलाल तथा डा० सोमनाथ गुप्त जैसे कुछ विद्वान इस कारण को गौण मानते हैं। संस्कृत का गानुतल उत्तरगामचरित आदि नाटकों में यद्यपि गद्य की मात्रा अधिक है फिर भी जो गद्य का अभाव है वह कम शक्तिशाली तथा कम महत्वपूर्ण नहीं है। शकसपियर का नाटक मुक्त छंद (Blank Verse) में लिखे गये हैं जिनमें गद्य की विषयज्ञाएँ विद्यमान हैं। आज का गीति रूपक में भी मुक्त छंद का प्रयोग होता है।

कायतत्व के समावेग से नाटका में सौम्य वृद्धि अवश्य होगी परन्तु गद्यांश का सबथा बहिष्कार करने से नाट्य-सौंदर्य नष्ट हो जायगा। गद्यांश का अभाव और पद्य की प्रचुरता के कारण कीच जसे कई विद्वान भवभूति के 'उत्तररामचरित' को नाटक की अपेक्षा काव्यात्मक रचना अधिक उपयुक्त मानते हैं।

नाटक श्रेष्ठ काव्य के साथ साथ दृश्य काव्य भी है। यद्यपि केवल अध्ययन मात्र में भी नाटक का रसास्वादन लिया जा सकता है फिर भी सबसाधारण जनता के लिए अभिनय के बिना नाटक निष्प्राण सा लगता है। अभिनय तो नाटक का प्राण माना जाता है। बंगला तथा मराठी का नाट्य साहित्य जो अधिक समृद्ध है उसका प्रमुख कारण रंगमंच का सहयोग ही दिखाई देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ० लक्ष्मीसागर चण्णय्य ग्रन्थ अखण्डनाम आदि विद्वान हिंदी नाटक के बिना का यही कारण मानते हैं। हिंदी में भारत दु के पूर्व काल में उन्नत रंगमंच का पूर्ण अभाव था। मध्यकाल में मराठी के प्रति अनादर, अपेक्षा निंदा की भावना परदा पड़ति प्रौढ परिष्कृत जनरुचि का अभाव आदि कई कारणों से हिंदी रंगमंच का निर्माण न हो पाया।

मुसलमानों का शासन भी हिंदी नाटकों के विकास में बाधक हुआ। इस काल में संगीत चित्रकला आदि कलाओं की खूब उन्नति हुई परन्तु नाट्य कला की नहीं। इस्लाम में नाटक जैसी सभी अनुकरणप्रधान कलाएँ तथा मनोरंजन के साधन वर्जित हैं इसलिए अजगर नशागिर रसिक होने पर भी नाटकों के प्रति उदासीन ही दिखाई देने हैं। औरंगजेब की असहिष्णुता, मध्ययुगीन नाट्य-कला के मुख्य केंद्र मदिना तथा राजमन्नामा का विनाश आदि कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से हिंदी नाटकों की प्रगति में बाधक सिद्ध हुए।

उपयुक्त कारणों के अतिरिक्त हिंदी नाटकों का अभाव का और एक प्रबल कारण माना जाता है और वह है भक्तिमाल की बराबर भावना। ईसा की १५वीं और १६वीं शताब्दियों में उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का बड़ा जोर रहा। विदेशी गणुओं के द्वारा पराजित होने से उत्तर भारत की जनता अस्तु हुई थी। एहिक सुख का अभाव तथा जत्याचारा से पीड़ित जनता को भक्ति मार्ग का आश्रय लेना उचित जान पड़ा। इस काल के सतों ने भी दुख से युद्ध कर विजय पाने की गिना न दी। भाग्यवाद अथवा नियतिवाद की दुहाई देकर उन्होंने निराग जनता को अधिक निरागा-बानी और आत्मनिष्ठा बना दिया। ऐसी निष्क्रिय निष्प्राण वातावरण में नाटकों की आशा की ही नहीं जा सकती। डॉ० सान के शब्दों में— नाटक प्रगतिशील जीवन का चित्र है अजगर की भांति जीवन व्यतीत करने वाला के जीवन का चित्र नहीं है।'

इस प्रकार हिंदी नाटकों के अभाव के कारण बताये जा सकते हैं। इसमें से कोई एक कारण स्वतंत्र रूप से हिंदी नाटकों के अभाव का एकमात्र कारण नहीं बन सकता। इन कारणों के सामूहिक प्रभाव के कारण हिंदी नाट्य-साहित्य का उन्मत्त कई शताब्दियों तक न हो सका।

हिन्दी नाटक का पून स्वरूप

१९वीं शताब्दी के पून पार्श्व उदयवा तथा पर्वों व अवसर पर मनी जाने वाली लीलाआ म हिन्दी के अद्विगिन नाटकों के दर्शन मिल सकते हैं। इन लीलाआ म रामलीला रामलीला तथा नौटकी विंगय लोकप्रिय रहीं। हिन्दी भाषी प्रेक्षकों के निम्न भिन्न भागों म लोगो की रचि तथा धार्मिक प्रवृत्तिया की विभिन्नता के विविष्ट प्रकार की लीलाएँ मेली जानी थी।

रामलीला—उत्तर भारत म रामलीला की प्राय वहाँ मट्टव प्राप्त है तो दुर्गा पूजा की बगल म। रामलीला का विंगेय प्रकार प्रथमत अवध, मिथिला तथा बांगी म हुआ। बाद म उका प्रकार अयम भी काफी हुआ। इममे श्रीराम क जीवन की घटनाआ की अभिनीत किया जाता था। इनम रगमच तथा नाटकीय उपकरण का अभाव है। कथानक सम्प चौड होने हैं। सामान्य ग्रामीण जनता की रचि व अनुकूल होने व कारण इनम काव्यत्व तथा चरित्रचित्रण की गहराई न के बराबर होती है। इसके वार्तालाप बड प्रभावी हान हैं। इसके अनवरण पर रमाशुनसवाद जिह्वादन नाटक जस छटोवद्ध वार्तालाप लिखे गये।

रामलीला—मथुरा, वृगवन तथा निवटवर्ती प्रत्या म रामलीला अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। आज भी उस प्रेक्षकों म इसका प्रकार दिलायी दता है। इसम राधा वृष्ण की प्रेम-लीलाआ का प्रधान होता है। य आकार म छोट होने के कारण नाटकों व सीमित समय स्थान और काय व यथन म बाध जा सकत हैं। इनम वामचलाऊ ढग का रगमच भी होता है। परंतु इनक वार्तालाप अमगत और काय अस्वाभाविक होते हैं। इनम केवल संगीत का सौम्य और रस का आनंद पूण रूप म रहता है। भारते दु जी की विख्यात नाटिका चंद्रावली रामलीला के प्रभाव स प्रभावित है।

नौटकी—उत्तरीयसमुत्त प्रांत दिल्ली और विंगयत पजाब के दक्षिणी भागों मे नौटकियों का प्रचलन अधिक मात्रा म दिवाई दता है। इन संगीत भी कहा जाता है। शायद संगीत की प्रधानता होने के कारण यह नाम रखा गया हो। नौटकियों म विख्यात पुराणों और लौकिक वीरों की कथाएँ भी नाटक रूप म मिलती हैं। रामायण, महाभारत तथा पुराणों के महापुरुषों की कथाओं का प्रचलन भी पर्याप्त मात्रा म पाया जाता है। रामलीला की भांति नौटकी मडलियाँ धूम धूम कर दूर तक के प्रदेशों मे नाटक दिवानी थी। इसम भी घरेलू तथा वामचलाऊ ढग का दूर तक के प्रदेशों मे नाटक दिवानी थी। इसम भी घरेलू तथा वामचलाऊ ढग का दूर तक के प्रदेशों मे नाटक दिवानी थी। इसम भी घरेलू तथा वामचलाऊ ढग का अवसर पर सूत्रधार स्वयं बतलाता था कि अमुक दृश्य कहां है। दृश्यांतर क कौन-कौन हैं।

रामलीला रामलीला तथा नौटकी म नाटय कला व अदु रथ फिर भी नाटय कला क विकास मे इनका विंगेय स्थान न रहा। एक ओर रामलीला म संगीत का

सौंदर्य और रस का प्रवाह विशेष रूप से रहता था और दूसरी ओर रामलीला में चरित्र-गाभीर्य और प्रभावशाली वार्तालाप की विशेषता थी। रामलीला और रासलीला के प्रधान-तत्वों का यदि सतुलित एव सुचारु समन्वय किसी प्रकार हो जाता तो इसके फलस्वरूप उच्च कोटि के बड़े सुन्दर नाटकों की सृष्टि होती। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा भाग्य हिन्दी साहित्य को प्राप्त नहीं हुआ। क्योंकि १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पारसी थियेट्रिकल नाटकों का जनता में इतना प्रचार हुआ कि ये लीलाएँ जनता को आकर्षित बनाये रखने में असमर्थ-सी रही। अपने सुन्दर दृश्य, वैज्ञानिक रंगमंच, आकर्षक वेशभूषा मनोहर दृश्यांतर आदि के कारण पारसी कपनियों के नाटक लोक-प्रियता प्राप्त कर चुके थे। करीब करीब तीस वर्षों के लिए नाटक का भाग्यचक्र इन कपनियों के कुक्कुचिपूण नाटकों से ग्रस्त था। थ्रेण्ड-थ्रेण्ड नाटकों का कुक्कुचिपूण प्रदर्शन होता था। लाकरुचि भ्रष्ट हो गई थी। फलस्वरूप कोई सुन्दर नाटक या नाटककार भी पदा नहीं हा पाया। हिन्दी नाटकों के विकास में पारसी कपनियों का विशेष हाथ भले ही न रहा हो पर अत्यन्त उपयुक्त वस्तु—रंगमंच—उन्हीं के द्वारा प्राप्त हुई।

नव जागरण काल

विदेशी शासन के साथ अँग्रेजी भाषा और साहित्य का भारतीय जीवन पर काफी प्रभाव रहा। नवजीवन की गतिशा जागरित हुई। अँग्रेजी के समृद्ध साहित्य का प्रभाव भारत की सभी भाषाओं पर पड़ा। बँगला तथा मराठी भाषाएँ इन सबमें अधिक प्रभावित हैं।

ब्रिटिश शासनकाल में जीवन की वास्तविकता की तरफ जनता का ध्यान अधिक आकर्षित होने लगा। नाटक के अनुकूल वातावरण की सृष्टि होने लगी और नाटकों की रचना बड़े उत्साह से होने लगी। अँग्रेजी का शासन स्थिर हो चुका था। फलस्वरूप शान्ति का वायुमंडल प्रस्थापित हो पाया था। भावाभिव्यक्ति के लिए गद्य की अत्यावश्यकता नाश हुई। अतः गद्य का विकास द्रुत गति से होने लगा। पारसी कपनियों द्वारा रंगमंच प्राप्त हुआ ही था। परिष्कृत जनरुचि पदा हो रही थी इसलिए लोकाध्यय प्राप्त होने लगा। ऐम अनुकूल वातावरण में सीमागम्य से भारत-दु हृदिचक्र जैसे महान् द्रष्टा का आविर्भाव हुआ। समय की गति को भारत-दु ने अच्छी तरह परख लिया है। हिन्दी के लिए रंगमंच निम्न अत्यन्त आवश्यक है इस रहस्य को उन्हीं जाना। वे स्वयं नाटक लिखते थे, दिग्दर्शन करते थे और प्रत्यक्ष नाटकों में काम करते थे। बागी के जिन महाराष्ट्रीय लोगों ने रंगमंच पर नाटक अभिनीत करने में सहायता दी उनमें श्री० सप्रे नाम के एक मज्जिन थे। हिन्दी नाट्य साहित्य का वास्तविक आरम्भ इसी युग में हुआ।

विशुद्ध नाटक का रूप में त्रिला हुआ गोपालचंद्रजी का 'नट्य नाटक शिरो' का प्रथम नाटक माना जाता है। इसी के आसपास कालिदास के मरुत नाटक शाकुन्तल का अनुवाद राजा नरमणिह ने 'शकुन्तला का रूप में प्रस्तुत किया। रोवां नरेण विश्वनाथमिह के आनंद 'रघुनादन में सवाण, अत्रिपान और

भी पाया जाता है। ब्रजवासीदास का 'प्रबोध चंद्रोदय' अनूदित नाटक भी इसी समय लिखा गया। इस प्रकार हिंदी नाट्य साहित्य प्रगति की दिशा की ओर शीघ्रता से बढ़ने लगा।

भारतेंदु युग (सन् १८६७ से १८८५)

हिंदी नाट्य-साहित्य के सच्चे अर्थों में जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र ही माने जाते हैं। वे संस्कृत, बंगला, अँग्रेजी साहित्य के ज्ञाता थे। असाधारण प्रतिभा के कारण निरन्तर लेखनकाय करत रहते। हिन्दी साहित्य भारतेंदु की साहित्य सेवा का सदैव श्रेणी रहगा। जब तक के नाटक पौराणिक और धार्मिक ही थे। परन्तु भारतेंदु की लेखनी ने पौराणिक ही नहीं सामाजिक और राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण कई कल्पना प्रधान नाटकों को जन्म दिया। अधेरनगरी प्रेमभोगिनी, विपत्ति विपत्तौपधम वृत्तिकी हिंसा हिंसा न भवति, भारतेंदुदशा, नीलदेशी भारतजननी, सत्य हरिश्चंद्र, सत्यप्रताप, चद्रावली आदि उनके प्रसिद्ध मौलिक नाटक हैं। अनूदादित नाटकों में से मुद्राराक्षस कपूरमजिरी, रत्नावली दुर्लभबंधु विद्यासुन्दर आदि नाटक प्रसिद्ध हैं।

भारतेंदुजी ने प्राचीन का आदर करते हुए युग की सामाजिक स्थितियों के अनुरूप नाट्य कला को नवीन रूप दिया। नाटक प्रहसन नाटिका जैसे रूपक उपरूपका के भेदा का ध्यान रखकर अपने नाटक लिखे। साथ साथ अन्तर्जातीय याजना जावन की घटनाओं से सम्बन्धित कथानक, सजीव एवं यथार्थ चरित्र चित्रण बहिर्दृष्ट के साथ साथ अंतर्दृष्ट का प्रदर्शन आदि नाटकीय तत्त्वों का पुरस्कार किया। पात्रों के अनुकूल भाषा भावपूर्ण रसानुभूति में सहायक गीत, उद्देश्य प्रधान कथानक आदि अपनी मौलिक कला से उन्होंने नाटक कला के सामने एक जादू रच लिया। हिन्दी नाट्य परम्परा का इतने बड़े से चतान वाले प्रतिभासंपन्न नाटककार का लाभ हिन्दी साहित्य को अधिक काल तक न मिल सका। अतः उनके अस्त होते ही हिन्दी नाट्य साहित्य में पुनः अधकार छा गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेंदु के परचात प्रमुख नाटककारों में सब प्रथम हैं साला श्रीनिवासदासजी। 'रणधीर और प्रेममोहिनी' 'तपना सवरण' 'सयोगिता स्वयंवर' उनके मौलिक नाटक हैं। इनके अतिरिक्त राधाकृष्णदास का 'महाराणा प्रताप' एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक है। इनके दूसरे नाटक हैं दुर्गिनीबाला 'महाराणी पद्मावती'। अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रद्युम्न विजय', 'व्यायाग' 'हृत्विणो परिणय' तथा किशोरीनाथ गास्वामी का 'मयक मजिरी विपत्ति उल्लसनीय' हैं। प्रताप नारायण मिश्र के 'भारतेंदु' नामक और कलिकौतुक रूपक तथा अविद्यान्त व्यास का 'नो संकट नाटक अपने युग की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को लक्ष्य लिए गए। बालकृष्ण भट्ट ने बालविवाह' रत्न का विकट रत्न कलिका की सभा तथा राधाचरण स्वामी ने 'सती चद्रावली, अमरसिंह राठाड, श्री रामा' आदि नाटक लिखे। इनके अतिरिक्त अनेक नाटककारों की रचनाएँ इस युग में प्रकाश में आई हैं परन्तु उन सब का उल्लेख मात्र करना भी यहाँ समभव नहीं है।

इस काल में उत्कृष्ट नाटकों की निर्मिति अपेक्षा के अनुसार न हो सकी। मौलिक नाटकों की रचना कम हुई। क्योंकि रंगमंच पारसी कंपनी के हाथ में था। कला की अपेक्षा पसा की ओर ही उनका ध्यान अधिक था। उन्होंने लोगो की रुचि को बिल्कुल हीन बना दिया। प्राचीन संस्कृत साहित्य की अमर निधियां हिंदी में खान की ओर उस समय के नाटककारों का अधिक ध्यान रहा। संस्कृत के कालिदास भवभूति, शूद्रक के नाटकों के अनुवाद लाला सीताराम भूप ने किये। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों के भी मफ्स अनुवाद किये गये। बंगला के नाटकों के अनुवाद भी किये गए।

संक्रांति काल (सन १८८५ से १९१०)

इस काल में नाट्य साहित्य की दृष्टि से कोई विशेषता दिखाई नहीं देता। इस काल में राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद बंताब, श्रीकृष्ण जोहर विश्वभर सहाय व्याकुल, तुलसीदास शर्मा के नाटकों की जनसाधारण में बड़ी धूम रही। ये सभी मौलिक नाटककार हैं। इनके नाटक अधिकतर पौराणिक हैं। इनमें रंगमंच का खयाल रखा गया है। फिर भी सभापण में पद्या की भरमार और गद्य में तुक का जमघट आदि दोष हैं। ये नाटककार सबदा रोमांचकारी और आकषक दृश्य दृश्यांतरों की खोज में रहा करते थे। अति प्राकृत प्रसंग इन दृश्यों के रूप में प्रदर्शित किये गये। कभी कभी पौराणिक नाटकों का यथायवाद भद्दा एवं कुदृष्टिपूर्ण होता था। चरित्र चित्रण भी अत्यंत साधारण ही रहा।

मानखलाल चतुर्वेदी के कृष्णाजुन युद्ध नाटक, माधव शुक्ल के 'महाभारत' और जगन्नाथ प्रसादजी के तुलसीदास आदि नाटकों में वास्तविक वातावरण की सृष्टि हुई। फिर भी उनमें कहीं कहीं कालदाय पाए जाते हैं।

भट्ट घारा के नाटककारों ने पौराणिक नाटकों में वास्तविक वातावरण की सृष्टि का जो पौराणिक की अपेक्षा यथायची। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी ये नाटक कुछ कदम जागे बढ़े हैं। फिर भी चरित्र की महत्ता समझकर भी कथावस्तु के सौंदर्य और नमविकास की ओर अधिक ध्यान देने के कारण उच्च चरित्रों का निर्माण नहीं कर सके।

सभापण कला का भी विकास इस काल में हुआ। बदरीनाथ भट्ट रचिन तुलसीदास नाटक में सभापण सरल छोटे और रंगमंच के उपयुक्त बने हैं। फिर भी इनमें छंदों का प्रयोग अधिक था। इन नाटकों में घटनाओं की क्रिया प्रतिक्रिया तो अवश्य किसी न किसी रूप में मिलती है पर मनाव्यक्त चित्रण की ओर ध्यान को का ध्यान भी नहीं रह पाया। इस समय बंगला नाटकों के अनुवाद भी अधिक लोकप्रिय थे।

प्रसाद युग (सन १९१० से १९३४)

जयगंजर प्रसाद के आगमन से हिंदी नाट्य-साहित्य का कायाकल्प हुआ। उन्होंने गभीर ऐतिहासिक अध्ययन पर प्राचीन भारतीय गौरव, सम्यता, संस्कृति और परंपरा

भी पाया जाता है। ब्रजवासीदास का 'प्रबोध चन्द्रोदय' अनुदित नाटक भी इसी समय लिखा गया। इस प्रकार हिन्दी नाट्य-साहित्य प्रगति की दिशा की ओर शीघ्रता से बढ़ने लगा।

भारतेन्दु युग (सन् १८६७ से १८८५)

हिन्दी नाट्य साहित्य के सच्चे अर्थों में जन्मदाता भारत-दु हरिचन्द्र ही माने जाते हैं। वे संस्कृत बगला अंग्रेजी साहित्य के नाता थे। जसाधारण प्रतिभा के कारण निरन्तर लेखनकाय करते रहें। हिन्दी साहित्य भारत-दु को साहित्य सेवा का सदैव ऋणी रहगा। जब तक वे नाटक पौराणिक और धार्मिक ही थे। परन्तु भारतेन्दु की लेखनी ने पौराणिक ही नहीं सामाजिक और राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण कई कल्पना प्रधान नाटकों को जन्म दिया। अधेरनगरी, प्रेमजोगिनी, विषस्य विषमोपधम, बधिकी हिंसा हिंसा न भवति भारतदुदशा, नीलदेवी, भारतजननी सत्य हरिचन्द्र सत्यपनाप, चद्रावली आदि उनके प्रसिद्ध मौलिक नाटक हैं। अनुवादित नाटकों में से मुद्रागन्धस कपुर्मजिरी रत्नावलि दुलभबधु विद्याभुन्दर आदि नाटक प्रसिद्ध हैं।

भारतेन्दुजी ने प्राचीन का आदर करते हुए युग की सामान्य स्थितियों के अनुरूप नाट्य कला को नवीन रूप दिया। नाटक प्रथम नाटिका जस रूपक उपरूपका के भेदा का ध्यान में रखकर अपने नाटक लिखे। माय माय अंका की योजना जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित कथानक सजीव एवं यथाथ चरित्र चित्रण बहुदृष्टिक से साथ साथ अतद्बद्ध का प्रश्न आदि नाटकीय तत्त्वों का पुरस्कार किया। पात्रों के अनुकूल भाषा, भावपूर्ण रसाभूति में सहायक गीत, उद्देश्य प्रधान कथानक आदि अपनी मौलिक कला से उन्होंने नाटक कला के सामने एक आत्मा रच दिया। हिन्दी नाट्य परम्परा का इतने वेग से चलाने वाले प्रतिभासंपन्न नाटककार का लाभ हिन्दी साहित्य को अधिक काल तक न मिल सका। अतः उनके अस्त होने का हिन्दी नाट्य साहित्य में पुनः अधकार छा गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत-दु के पश्चात् प्रमुख नाटककारों में सब प्रथम हैं साला श्रीनिवासरायसजी। 'रणधीर और प्रेममोहिनी' 'सप्त सवरण' सयोगिता स्वयंवर उनके मौलिक नाटक हैं। इनके अतिरिक्त राधाकृष्णदास का 'महाराणा प्रताप' एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक है। इनके दूसरे नाटक हैं दुर्गिनीबासा, 'महाराणी पद्मावती'। अद्याध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रद्युम्न विजय' 'अध्याय रक्षिणी परिणय' तथा किंगोरीनाल गास्वामी का 'मयक मजिरी विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रनाथ नारायण मिश्र के 'भारत दुर्गास्यक' और बधिकीनुक रूपक तथा अंबिकास्य व्यास का 'गो सक्ठ' नाटक अपने युग की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को लेकर लिखे गए। बालकृष्ण भट्ट ने 'बालविवाह' 'रेल का विफट खेन', 'कतिराज का मना तथा राधाचरण स्वामी न सनी चद्रावली, अमरसिंह राठाड 'श्री दामा' आदि नाटक लिखे। इनके अतिरिक्त अनेक नाटककारों की रचनाएँ इस युग में प्रकाश में आई हैं परन्तु उन सब का उल्लेख मात्र करना भी यहाँ समभव नहीं है।

इस काल में उद्भूट नाटकों की निर्मिति अपेक्षा में अनुसार हो गयी। मौलिक नाटकों की रचना कम हुई। क्योंकि रंगमंच पारंगी अपनी के हाथ में था। कला की अपेक्षा पसा की ओर ही उनका ध्यान अधिक था। उन्होंने लोगो की रचि को शिक्कुल हीन बना दिया। प्राचीन ससृष्ट साहित्य की अमर निधियाँ हिन्दी में गान की धार उस समय के नाटककारों का अधिक ध्यान रहा। ससृष्ट के कानिदाग भद्रभूति, गूढक के नाटकों के अनुवाद साता सीताराम भूप ने किये। अंग्रेजी के चक्रवर्ति के नाटकों के भा मफल अनुवाद किये गये। बंगला के नाटकों के अनुवाद भी किये गए।

संक्रांति-काल (सन १८८५ से १९१०)

इस काल में नाट्य साहित्य की दृष्टि से कोई विशेषता दिखाई नहीं देती। इस काल में राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद चेताय, श्रीकृष्ण जोहर, विश्वभर सहज व्याकुल तुलसीदास दादा के नाटकों की जनसाधारण में बड़ी धूम रही। ये सभी मौलिक नाटककार हैं। इनके नाटक अधिकतर पौराणिक हैं। इनमें रंगमंच का ख्याल रखा गया है। फिर भी सभापण में पसा की भरमार और गद्य में तुक का जमपट आदि दावे हैं। ये नाटककार सबदा रामाचकारी और आकषक दूय दूयानरों का खोज में रहे करते थे। अति प्राकृत प्रसंग इन दूरिया के रूप में प्रदर्शित किये गये। कला सभी पौराणिक नाटकों का यथायवाद भद्दा एक कुरचिपूर्ण हाता था। चरित्र चित्रण भी अत्यन्त साधारण ही रहा।

मालनानन कतुर्वी के 'कृष्णाञ्जुन मुद्र' नाटक, माधव गुप्त के 'महाभारत' और जगन्नाथ प्रसादजी के 'तुलसीदास' आदि नाटकों में वास्तविक कालावर्णन का सृष्टि हुई। फिर भी उसमें बड़ी बड़ा कान्शेय पाए जाते हैं।

नट्ट धारा के नाटककारों ने पौराणिक नाटकों में वास्तविक कालावर्णन का सृष्टि की जो पौराणिक की अपेक्षा यथाय थी। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी ये नाटक कुछ काम आगे बढ़े हैं। फिर भी चरित्र की महता समभार भी कथावस्तु के सौन्दर्य और प्रभावकास की आगे अधिक ध्यान देने के कारण उच्च चरित्रों का निर्माण नहीं कर सके।

सभापण कला का भी विकास इस काल में हुआ। बदरीनाथ नट्ट रचिन तुलसीदास नाटक में सभापण सरन, छात्र और रंगमंच के उपयुक्त बने हैं। फिर भी इनमें छाने का प्रयोग अधिक था। इन नाटकों में घटनाओं की त्रिया प्रतित्रिया ता अवश्य किमी-१ किमी रूप में मिलती है पर मनोवनातिक चित्रण की धार लयका का ध्यान भी नहीं रहे पाया। इस समय बंगला नाटकों के अनुवाद भी अधिक लोकप्रिय थे। प्रसाद युग (सन १९१० से १९३०)

जगन्नाथ प्रसाद के आगमन से हिन्दी नाट्य-साहित्य का वायावर्णन हुआ। ए होने गभीर ऐतिहासिक अध्ययन पर प्राचीन भारतीय गौरव, सम्यता सस्कृति और

हिंदी नाटक का भविष्य

उपयुक्त विवेचन से हिंदी नाट्यसाहित्य का सामान्य परिचय हो सकता है। उनीसवीं शताब्दी के अंत से प्रारंभ होकर आज तक उत्तर अस्सी वर्षों में हिंदी के नाट्य साहित्य का जो विकास हुआ वह अत्यन्त प्रगतिशील है। निम्नलिखित आज का हिन्दी का नाट्य साहित्य बहुमुखी समृद्ध और सुगम है। एक राष्ट्रभाषा के नाम उसका साहित्य और भी समृद्ध बनना चाहिए। उसका भविष्य को निश्चयपूर्वक कहना कठिन है पर अनुमान मात्र किया जा सकता है।

शिल्पविधान की दृष्टि से आज के कई हिन्दी नाटक निश्चित ही उच्च कान्ति में रसे जाने योग्य हैं। नवीन विचारधारा तथा वातावरण के प्रभाव से नाट्य के विभिन्न रूपों का भी द्रुतगति से विकास हो रहा है। १९वीं शताब्दी के पूर्व हिन्दी नाटकों को विकसित होने की अनुकूल भूमि नहीं थी। आज की स्थिति पूर्ण रूपसे अनुकूल है। एक प्रादेशिक भाषा के नाते हिन्दी का हिन्दी भाषी प्रदेशों में ही क्षेत्र था अब राष्ट्रभाषा के नाते संपूर्ण भारत का क्षेत्र उस प्राप्ति हो चुका है। भारत सरकार ने हिन्दी को राजभाषा बनाने की घोषणा कर दी है। परन्तु व्यावहारिक कठिनाइयों का ध्यान में रखकर राजभाषा के इस परिवर्तन के लिए पाँच वर्षों की अवधि सीमा जो संविधान द्वारा पहले निश्चित की गई थी वह नया भाषा बिल द्वारा हटा दी गई है। यह व्यवस्था की गई है कि जब तक सभी प्रांतों के लोग हिन्दी भाषा को राजभाषा और समकक्ष भाषा के रूप में मान्य नहीं कर लें तब तक हिन्दी को जबरन लागू नहीं किया जाय। पर सरकार की इस ढल मिल नीति के विरोध में हिन्दी जगत अधिक सक्रिय हो उठा है और शीघ्र ही उसे राजभाषा के गौरव पर पराजित करना चाहता है अतः यह अत्यंत स्वाभाविक है कि भविष्य में हिन्दी पढ़ने तथा समझने वालों का संख्या ज्या-ज्या बढ़ेगी त्या-यो साहित्य में अवश्य ही वृद्धि हो सकेगी।

हिन्दी नाटक पाश्चात्य साहित्य से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। पाश्चात्य नाटककारों से प्रभावित होनेपर भी हिन्दी नाटककारों को अपनी रचनाओं में मौलिकता का परिचय देने की बड़ी आवश्यकता है।

अवतक हिन्दी भाषा में अंग्रेजी, संस्कृत तथा बंगला नाटकों के ही अनुवाद हुए हैं। स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के साहित्य का समृद्ध कराने में भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को हिन्दी में अनूदित करना भी आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है कि इस दिशा में आजकल बड़े उत्साह से प्रयत्न हो रहा है। इस योजना में सरकार तथा जनता का पूर्ण सहयोग अपेक्षित है। प्रांतीय भाषाओं की उत्कृष्ट कृति के अनुवाद प्रकाशित करने में लेखकों को सरकार के द्वारा आर्थिक साहायता मिलनी चाहिए और जनता को भी प्रांतीयता के संकुचित दायरे का छाड़ कर अन्य भाषाओं का उत्तम साहित्य पढ़ने की रुचि पैदा करनी चाहिए। हिन्दी नाटक की मौलिक रचना हिन्दी भाषियों से होती ही रहेगी पर अहिन्दी प्रदेशों के लेखकों को

भी मौनिक रचना द्वारा हिन्दी नाट्य-साहित्य की श्रीवद्धि में सहयोग देने की घड़ी आवश्यकता है। केवल अनुवाद मात्र ठीक नहीं। साथ-साथ मौलिक रचनाओं का भी योगदान अपेक्षित है।

भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों के लोगों द्वारा अपने विचारों के आदान प्रदान के लिए हिन्दी भाषा ही जब माध्यम के रूप में रहगी, तब व एक दूसरे के संपर्क में अधिक आएंगे। और स्वभावतः हिन्दी साहित्य में अत्यंत प्रादेशिक भाषाओं की अच्छा-ख़ा का महत्त्व समावेग भी हो सकेगा। और यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि हिन्दी-नाट्य साहित्य भविष्य में अत्यंत समृद्ध, संपन्न एवं बहुमुखी बनगा। आज का हिन्दी नाट्य-साहित्य भी कम समृद्ध नहीं है फिर भी भारत जिस देश का राष्ट्रभाषा का साहित्य को जय देना की राष्ट्रभाषा के साहित्य की टक्कर का बनने को देर नहीं लगगी। इस कार्य की सफलता सहयोग की भावना पर अवलंबित है। नाटक श्राव्य काव्य के साथ ही लक्ष्य काव्य भी है इस बात को भूलना नहीं चाहिए। अभिनेयना नाटक का प्रधान गुण है। नाट्य-साहित्य को सामान्य जनता तक पहुंचाने का एतन्मेव माधन है समृद्ध तथा प्रगत रगमच। नाटक की सफलता तभी मानी जायगा जब वह साहित्यिक दृष्टि से परिपूर्ण होन हुए भी रगमच पर अभिनय करे योग्य हो। हिन्दी साहित्य में साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत उच्च श्रेणी का नाटक हान हुए भी जनता में उनका प्रचार कम इसलिए हुआ कि हिन्दी में रगमच विकसित रूप में पाया नहीं जाता। हाँ, पञ्चीराज कपूर ने 'पछा 'दीवार, आहुति' पसा आदि नाटकों का रगमच पर अभिनीत किया है। पञ्चीराज ने हिन्दी रगमच को अद्यावत तथा प्रगत रूप देने का जो प्रयास किया वह प्रशंसनीय है। यह भी देना गया कि जहिंदी प्रदेशों में भी उनका नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। उसका प्रधान कारण आधुनिक रगमच रहा। लेकिन एक पञ्चीराज हिन्दी के विनाल प्रदेश के लिए पर्याप्त नहीं है उसी की तरह अनेक लोगों को हिन्दी रगमच की उत्तमता का प्रयत्न करना चाहिए। जहिंदी प्रदेशों के लोग भी नितनका रगमच विकसित रूप में है इस दिशा में सहयोग दे सकने हैं। उच्च श्रेणी के अभिनय द्वारा जनरचि में भी परिवर्तन सहज सम्भव है। उत्तरी भारत में रगमूमि के अनुकूल वातावरण का निमाण होने में देर न लगगी यदि उस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न किये जाएं।

आज के विज्ञान युग में मनोरंजन के नवीन नवीन साधन निर्माण हो रहे हैं। उनमें चित्रपट तथा रेडियो नाटक अत्यंत लोकप्रिय बन चुके हैं। उसका नाटक का विकास पर कुछ हद तक प्रभाव अवश्य पड़ चुका है। मिनमा की वस्तु लोकप्रियता का देखकर पाश्चात्य देशों में भी नाटक प्रेमियों को आगवा हूँ कि कहीं चित्रपट रगमच का अन्त न कर दे। परंतु अनुभव में यह आगवा निमूल सिद्ध हुई। इंग्लैंड, अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में आज भी अमर्य ताँ मिनमा की अपेक्षा

रामच के जीवित अभिनेता व वास्तविक अभिनय को देखता अधिद पसद करते हैं । भारत म भी रामच पुन फिर उठान लगा है । जिन प्रकार कैमर के प्रचार से चित्र कारा का नाम च नहीं हुआ, रेडिया के प्रचार म मयाचारपत्रो की लाजप्रियता कम नहीं हुई । ग्रामोफोन के प्रचार से वाद्य संगीत व प्रत्यक्ष प्रयोग पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ । उसी प्रकार सिनेमा या, रेडिया नाटक के प्रचार से हिन्दी नाटक का आगन्त होने की वाइ आवश्यकता नहीं । मुग्नित, मुससृजत जनता मदव उत्तरा जादर ही करेगी ।

आधुनिक हिंदी साहित्य में 'छायावाद' का अपना विशेष स्थान है। बीस-पचास वर्ष की जन्म अवधि में छायावादी कवियों ने खड़ी बोली हिंदी की शान्-मयति अथ गौरव, भाव गरिमा, शान्णिकता और व्यक्तता की अतुल शक्ति का बोध अपने काव्य द्वारा सफ़लता से कराया। प्रारंभ में छायावादी कवियों को प्रखर विरोध भी भड़का पड़ा, परंतु विरोध की यह मात्रा भी मद होती गयी। आधुनिक हिंदी कविता की समीक्षा छायावाद के विवेचन के बिना अपूर्ण मानी जान लगी। फलस्वरूप उसके स्वरूप को स्पष्ट करने की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से समीक्षात्मक लेखन की पर्याप्त मात्रा में किया। छायावाद को परिभाषा के नये तुल्य शब्दों में समीक्षित करने के प्रयत्न भी कम नहीं हुए परंतु उमम एक सूत्रता के स्थान पर विचार बहिष्कार ही अधिकांश मात्रा में प्राप्त होता है।

किसी ने छायावाद को 'कायावर्तिता प्रकृत पापण' कहा, तो किसी ने उसे 'नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उत्पन्न तथा एक स्वतंत्र दर्शन की आयाजना' माना। कुछ विद्वानों का मतानुसार छायावाद रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है तो कुछ उसे रोमांटिसिज्म अर्थात् 'स्वच्छदतावाद का वाचक' मानते हैं। इस प्रकार परस्पर विरोधी कथना के कारण छायावाद के समर्थ में अनेक नान धारणाएँ बनी हैं। छायावाद में रोमांटिसिज्म अर्थात् स्वच्छदतावाद की कुछ विशेषताएँ दखकर उसे स्वच्छदतावाद का पर्यायवाची भी माना जाने लगा है जो समोचीन प्रतीत नहीं होता।

हिंदी में छायावादी कविताओं की जो समीक्षाएँ की गयीं उनमें अंग्रेज़ा के रोमांटिक कवि बट्सवय, शेली कीटम आदि के प्रभाव की चर्चा भी होने लगी थी। इसी सिनमिले में छायावाद के साथ रोमांटिसिज्म का नाम भी महजता से जुड़ गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रोमांटिसिज्म के लिए 'स्वच्छदतावाद' शब्द का प्रयोग किया जिसे परवर्ती विद्वानों ने स्वीकृति भी दे दी। स्वच्छदतावाद अथवा रोमांटिसिज्म शब्द सामान्यतः एक प्रवृत्ति विशेष मात्र का चोतन करता है। यह प्रवृत्ति प्रायः सभी साहित्यों के अतगत सूत्राधिक मात्रा में पायी जाती है। परंपरागत

मान्य परिभाषा व अनुसार साहित्यिक उपागवायों को ही स्वच्छताया कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में प्राचीन साहित्य परम्परा का ही अर्थ अनुसृत व अतः उक्त विरोध में व्यक्त हो पाती विषाधारा का स्वच्छताया के नाम में अभिव्यक्ति किया जाता है। एम्बरक्रोमी व मानुगार रामांशिमम का ही उक्त प्रवृत्ति का नाम है जिसे द्वारा यह कार्य संसार से संबंध विच्छेद कर अगो अन्तर्गत के तत्त्व का अर्थ उक्त होता है।^१

उपागवायों और स्वच्छताया का पापक स्वच्छता के लिए उक्त दोनों का पापकभूमि तथा विच्छताया पर संसार में विचार करना साधनाय प्रतीय होता है। एक साधनाय प्रवृत्ति का नाम ही पर भी रोमांटिसिज्म का साहित्यिक प्रयोग साधन में उपागवायों साधना के अर्थ का अर्थ व लिए किया जाता है जिसे अन्तर्गत स्वच्छता, धर्म, शोचन, साधना आदि अर्थों का अर्थ का अर्थ होता है। धर्म अन्तर्गत साधना व अर्थ और उपागवायों साधना व पूर्वार्ध में रोमांटिसिज्म का अर्थ तथा विचार योरप में हुआ। उसमें मूल में योरप की साधनाय साधनाय, आदि, राजनीति और धार्मिक परिस्थिति की प्रवृत्तियाय का ही प्रयोग साधन रहा। इस दृष्टि में १७८६ ई० में अर्थ में जो साधनाय हर्द यह अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ। अर्थ रोमांटिक साधना का अर्थ प्रथम प्रवृत्ति माना जाता है। स्वातन्त्र्य साधना एव प्राचीन धर्म, परंपराय साधनाय साधनाय आदि व अर्थ व अर्थ पर उक्त विचार साधना। साहित्य को परंपराय नियम सीमा, अर्थ, उक्त आदि व अर्थ से निकालकर मुक्त एव साधना बनाया गया। साहित्य का जीवन का प्रवृत्ति माना जाता है अर्थ वह भी जीवन की अर्थ गतिशील एव युग तथा परिवर्तन व अनुसृत परिवर्तनीय होता है। इस अर्थ को अर्थ ही साहित्यकारों ने परंपरा व प्रति विरोध कर अनुसृत व अर्थ पर आर्थिक प्रवृत्ति की महत्त्व दिया। क्लिप सिद्धनी की एव एपॉलोजी फार पोएट्री, गली की 'डिपेंस आफ पाएट्री' तथा बालरिज की 'साधनाय साधनाय लिटरेरिआ' आदि पुस्तकों का अर्थ इस अर्थ में किया जाता है।^२

रोमांटिसिज्म में आध्यात्मिक स्तर का प्रवृत्ति प्रेम, साधना तथा उदार मानवतावाद के प्रति विश्वास, साधना की अभिव्यक्ति प्रवृत्ति में अर्थ एव स्वच्छता अर्थ अर्थ विचार महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। हिंदी के अर्थ समालोचक आचार्य रामचंद्र गुप्त जी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में साधनाय और स्वच्छतावाद

१ Romanticism is that attitude of mind in which it withdraws itself from commerce with other world and turns is upon things which it finds within itself

Romanticism by Ambercrombie page 22

२ हिंदी साहित्य कोश पृ० ६७६

के पावन की ओर स्पष्टन सकेन किया है परंतु उसकी ओर परवर्ती समीक्षकों में से अधिकांश लोग ने गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया। आचार्य शुक्ल जी ने प्रकृति प्राणण क चर अचर प्राणिया का रागपूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यक्त दृष्टिपात, सुख दुःख में उनके साहचर्य की भावना आदि को स्वच्छदतावाद के पदबिह्व माना है। इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने रोमांटिसिज्म के वास्तविक अर्थ को ग्रहण किया है, जिसमें छायावाद की रहस्य भावना को स्थान नहीं है। उनके अनुसार छायावाद का प्रारंभ के पूर्व मधिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय आदि कई कवि खड़ी बोली काव्य को अधिक कल्पामय, चित्रमय और अतर्भाव्यजंरूप रूप देने में प्रवृत्त हुए थे और वही स्वाभाविक स्वच्छदतावादी काव्य धारा थी।^१ नामवर सिंह जी ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस परिभाषा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'शुक्ल जी के 'स्वच्छदतावाद' की परिभाषा इतनी सीमित थी कि वह संपूर्ण छायावादी कविताओं को घेर न सकी, उसकी सीमा में केवल श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्तसिंह, सियारामशरण गुप्त, सुमद्राकुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट और संभवतः नवीन तथा मास्तरलाल चतुर्वेदी ही आ सकते।^२ जो लोग स्वच्छदतावाद को ही छायावाद समझते हैं उनके लिए आचार्य शुक्लजी की स्वच्छदतावाद की परिभाषा अवश्य अपूर्ण है, परन्तु रोमांटिसिज्म के वास्तविक अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होगा कि आचार्य शुक्ल जी की परिभाषा अधिक प्रामाणिक है। यह सत्य है हिंदी के छायावादी कवि अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से प्रभावित हुए थे। अतः अनेक काव्य में रोमांटिसिज्म अर्थात् स्वच्छदतावाद की विशेषता मिलना सहज स्वाभाविक बात है। परंतु छायावाद का स्वच्छदतावाद मानकर उसमें केवल स्वच्छदतावाद की ही विशेषता देखना उचित न होगा क्योंकि छायावादी कवि केवल अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से ही प्रभावित नहीं हुए अपितु समकालीन अन्य प्रवृत्तियों में भी वे प्रभावित रहे। अतः छायावाद को स्वच्छदतावाद का वाचक मानना छायावाद की 'यापकता' को संकुचित करना है।

प्रायः किसी भी साहित्यिक धारा का सूत्रपात किसी निश्चित योजना को सम्मुख रखकर नहीं होता। विविष्ट परिस्थितियों में अथवा व्यक्तियों में प्रतिफलित कोई प्रवृत्ति विशेष साहित्य में जब सशक्त हो जाती है तब वह किसी धारा के रूप में प्रचलित होती है। उस धारा को किसी विशिष्ट सत्ता से अभिहित किया जाता है, उसने लक्षण निर्धारित क्रिय पाते हैं और फिर उन लक्षणों का आधार पर उसकी समीक्षा भी आरम्भ होने लगती है। छायावाद के स्वध में भी ठीक यही बात हुई। बीमवी शताब्दी के पूर्वार्ध में हिंदी कविता अपने स्वाभाविक विकास की अवस्थाओं में आती हुई भाव और कला की जिम अवस्था विशेष को पहुँची, उसी को

१ हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल (जाठया संस्करण), पृष्ठ ६६९

२ आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ—नामवरसिंह (प्रथम संस्करण), पृष्ठ २३

डॉ० बलवीरसिंह 'रत्न' जी ने छायावाद कहा है। इनका यह कथन विशेष विचारणीय प्रतीत होता है।

हिंदी साहित्य की इस छायावादी धारा के प्रस्पृष्टन में युगीन प्रवृत्तियाँ का हाथ रहना एक स्वाभाविक बात थी। पूँजीवाद का विकास और व्यक्तिवाद का उदय स्वच्छदतावादी प्रवृत्तियाँ का आकर्षण, प्रथम महायुद्ध की विभीषिका, राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधीजी का आंदोलन, समाज में स्वातंत्र्य प्रेम की उत्कठा, नयी पीढ़ी का पश्चिमी सम्प्रदाय के संपर्क में आना तथा रामाटिक कवियों से प्रभावित होना कबींद्र खत्री की गीताजली की नोबल पुरस्कार मिलना, ब्रह्म समाज का आंदोलन तथा राजाराममोहन राय के क्रांतिकारी विचार, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा कर्मकांडी, वर्णव्यवस्था के विरोध में आंदोलन आदि विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के सामूहिक प्रभाव से छायावाद का उदय हुआ जिसे मध्यवर्गीय जनता के विद्रोह का प्रतिरूप कहा जा सकता है। साहित्यिक क्षेत्र में रीतिकालीन प्रवृत्ति तथा द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में छायावादी काव्यधारा का जन्म हुआ। छायावाद की पृष्ठ भूमि का विवेचन करते हुए सुश्री महादेवी वर्मा ने लिखा है कि उस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतना स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कामल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं। स्थूल सौंदर्य की निर्जीव आवृत्तियों में धकेले हुए व्यक्तियों को फिर उही रेखाओं में बंधे स्थूल का न तो यथाथ चित्रण रुचिकर हुआ न उसका रुचिगत आदश भाया। उह नवीन रूपरेखाओं में सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति की आवश्यकता था, जो छायावाद में पूर्ण हुई।^२ इससे साहित्यिक क्षेत्र की वह स्थिति स्पष्ट होती है जो छायावाद के उदय होने में उत्तरदायी रही। संक्षेप में छायावाद बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में जो नव जागरण (रिनसाँ) हुआ उसी का काव्यात्मक रूपांतर है।

अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म और हिंदी के छायावाद दो विभिन्न देगों और संस्कृतियों के आन्दोलन थे। उनका प्रादुर्भाव जिन परिस्थितियों में हुआ वह भी एक-दूसरे से भिन्न थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी रोमांटिक आंदोलन की भूमिका में फ्रांस की सफल क्रांति थी, किंतु छायावाद का भूमिका में १९२१ और १९२० के असफल राष्ट्रीय आंदोलनों की तिकन समितियाँ थी। यद्यपि स्वच्छदतावाद और छायावाद दोनों में भी व्यक्ति स्वातंत्र्य, स्थूलबन्धना तथा रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह, सौंदर्य प्रेम आत्मा भिव्यजना आदि प्रवृत्तियाँ समान रूप से उपलब्ध होती हैं, फिर भी उन दोनों के बीच देश और काल की जो दूरी है उससे दोनों के स्वरूप में भी बर्षाभिन्न अंतर आ चुका है। अतः छायावाद शब्द न तो रोमांटिसिज्म का केवल अनुवाद मात्र है और

१ हिंदी की छायावादी कविता का कला विधान—डॉ० बलवीरसिंह 'रत्न' (प्रथम संस्करण) पृष्ठ २५

२ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ६४ ६५

न अंग्रेजी रोमांटिक कविता का अनुकरण ही वह तो भारतीय सस्कृति से अनुप्राणित, भारतीय सस्कृति में अनुप्रेरित, प्रथम महायुद्ध के बाद नवीन मानवतावादी आदर्श पर आधारित हिन्दी की मौलिक काव्य धारा है। यूरोपीय रोमांटिक कविता का विद्रोह केवल सामंतवाद और उसका समर्थन करने वाली प्रवृत्तियाँ और रूढ़ियाँ के विरुद्ध था परन्तु छायावाद का विद्रोह सामंतवाद के साथ विद्वान्तांत्रिकवाद के विरुद्ध भी था। यूरोप में रोमांटिक कविता के साथ पूँजीवाद का जितना विकास हुआ था उतना भारतीय पूँजीवाद का द्वितीय महायुद्ध के बाद तब भी नहीं हुआ था।^१ यूरोप में पूँजीवाद उपनिवेशों पर आधारित था और भारतीय पूँजीवाद स्वयं साम्राज्यवाद में रूपांतरित था। इसी कारण से भारतीय व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना में यूरोपीय कविता के समान जैसी शक्ति वगैरह नहीं थी। इसलिए छायावादी कविता उस अर्थ में शक्तिकारी कविता नहीं थी जितना अर्थ में यूरोपीय रोमांटिक कविता थी। दोनों के विद्रोह के स्वरूप में अंतर होने से उनके काव्य के स्वरूप में भी पर्याप्त अंतर है।

हिन्दी के गणमात्र छायावादी कविता के आत्मनिवर्तन तथा आदर्शवादी कविता का प्राप्त रोमांटिसिज्म की विशेषताओं में यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के छायावादी कवि उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय रोमांटिसिज्म अर्थात् स्वच्छन्दतावाद से प्रेरित कुछ प्रभावित रहे। यह प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप में रहा। कुछ छायावादी कवि अंग्रेजी रोमांटिक कविता की रचनाओं से प्रत्यक्ष प्रभावित हुए^२ तथा कुछ कवि वगैरह साहित्य का 'गंगा कायधारा' के माध्यम से।^३ छायावादी कविता में तथा स्वच्छन्दतावादी कविता में कुछ बातों में जो समानता दृष्टिगोचर होती है उसका एकमात्र कारण हिन्दी कविता द्वारा अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का अनुकरण मात्र नहीं है। दोनों आंदोलनों में उच्चवर्गीय समाज के सकीर्ण वातावरण से काव्य की रूढ़ आत्मा को मुक्त करने का प्रयत्न हुआ है और फलस्वरूप उसके लिए कल्पना और अनुभूति के भाग खोल दिये। ये दोनों आन्दोलन व्यक्तित्वप्रधान साहित्य के रूप में।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'रोमांटिक साहित्य शास्त्र' की भूमिका में जो

१ छायावाद-युग—गणुनाथ सिंह (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ४८

२ सुमित्रानंदन पंत जी ने 'पर्यालोचन' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लिखा है—पत्सव काल में मैं उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः गेली घडस्वथ कीटस और टर्निशम से विभाव रूप में प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्य बोध और मध्यवर्गीय सस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है।' आधुनिक कवि, भा० २ (चतुर्थ संस्करण), पृष्ठ १३

३ हिन्दी काव्य पर आग्ल प्रभाव—डॉ० रवींद्रसहाय वर्मा, (प्रथम संस्करण), पृष्ठ ४७

विचार व्यक्त किये हैं वे इस दृष्टि में विचारणीय प्रतीत होने हैं। वे लिखत हैं—
 कविचित्त जब बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता तब छत्र की
 भाषा अत्यंत प्रभावशाली हारर प्रकट होती है। आंतरिक सीन्याभूति और बाह्य
 अमु इर-सी लगने वाली परिस्थिति की टक्काहट में जो विनाश पदा हाता है वह सब
 दशा में काव्य की भाषा का मुखर बना नेता है। उसमें सम्भूतन का रूप और आवग
 का पक्ष लगा देता है—रोमांटिक साहित्य इसी प्रकार के कविचित्त के आंतरिक
 सौंदर्य के जादू और बाहरी जगत के एतदम भिन्न परिस्थिति के सघष का परिणाम
 है।—वडस्वय, शेली, कीटम आदि कवियों में जिस मोहक सौंदर्य जगत का
 निर्माण किया है वह अपूर्व है। उसने हमारे देश के साहित्य को भी प्रभावित
 किया है।^१

हिंदी के छायावादी कवि अंग्रेजी की स्वच्छतावादी कविता से प्रभावित रहे
 केवल इसी के आधार पर समस्त छायावाद को रोमांटिसिज्म का अधानुकरण मात्र
 मानना युक्तिसंगत न होगा। अंग्रेजी रोमांटिसिज्म से सबसे अधिक प्रभावित छायावादी
 कवि सुमित्रानन्दन पंत का अद्यतन वक्तव्य इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। वे कहते
 हैं—छायावाद को रोमांटिक काव्य तक सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति
 आंख मूंद लेना है। वह इस अर्थ में रोमांटिक कहा जा सकता है कि उसमें विचार
 विस्मय की भावना या स्वप्न है उसमें रागात्मक संवेदन, प्रणय तत्त्व तथा कल्पना
 का बाहुल्य और प्रवेग है या वह कला बोध की दृष्टि से परंपरागत नियमों के कूलों
 को डूबोकर स्वच्छंद सौंदर्य अभिव्यक्ति भूमि की ओर अग्रसर होता है अथवा
 अभिव्यक्ति की प्रखरता के कारण उमम कहीं-कहीं विषय वस्तु से अधिक संगत तथा
 प्रमुख शैली अथवा रूप विधान हो गया है। किंतु छायावाद की कविता में इनसे कहीं
 अधिक गभीर निगूढ तथा जापक तत्त्वों की प्रधानता है।^२ वस्तुतः छायावाद नवीन
 और पुरातन पूर्व और पश्चिम यथाथ और तादृश का समन्वित एवं युग के अनुरूप
 भारतीय काव्य प्रणाली का विकसित निमाणकारी रूप है। वह तो सहज, निमल और
 स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने वाली घनता की प्रतिकृति है। हम इस बात को
 भूलना नहीं चाहिए कि छायावाद जिस रीतिकाल की प्रतिक्रिया मानी जाती है
 उस युग में भी घनानंद जैसे समय कवि हुए जिन्होंने अपने मन के दाम्त्विक उदगार
 प्रकट किये। घनानंद की काव्य कला में छायावादी काव्य की आभा एवं सौंदर्य भंगिमा
 विद्यमान है।^३

१ रोमांटिक साहित्य शास्त्र—डा० देवराज उपाध्याय

(प्रथम संस्करण) भूमिका पृष्ठ २५६

२ छायावाद पुनर्मूल्यांकन—श्री सुमित्रानन्दन पंत (सन १९६५ ई०) पृष्ठ ३४

३ कला साहित्य और समीक्षा—डा० भगवत मिश्र (सं १९६३ ई०) पृष्ठ २२२

स्वच्छन्दतावादी कवि वनमाग परिस्थितियों के वैपम्य से असंतुष्ट होकर प्रकृति ही में नहीं, अतीत, भविष्य कल्पना तथा अलौकिकता या अध्यात्मिकता के स्वप्नलोक में रमने के लिए अपनी मनोभूमि तैयार कर सकते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य के विद्रोह में यथायवाद का केवल निषेधात्मक पक्ष ही दृष्टिगोचर होता है। विषेयात्मक अथवा रचनात्मक पक्ष नहीं। यदि छायावाद में भी केवल प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह की ही अभिव्यक्ति होती तो निश्चय ही उसे स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न माना जा सकता था, परन्तु छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रतिनियतात्मक आकांक्षा और नवीन मानवतावादी आदर्शों की प्रेरणा से अनुप्राणित है। इससे स्वच्छन्दतावाद और छायावाद का अंतर अधिक स्पष्ट हो सकता है।

स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव एवं उमकी कुछ विशेषताएँ देवकर जिम प्रकार छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का वाचक माना जाता है उसी प्रकार छायावाद में रहस्यात्मक भावना को देखकर उसे रहस्यवाद से अभिन्न अथवा 'रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास' भी माना जाता है। छायावाद के स्वरूप का मुस्पष्ट एवं सुबोध विवेचन करने वाले समीक्षकों में आचार्य नददुलारे वाजपेयी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने छायावाद के विद्रोह की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए लिखा है—नयी छायावादी काव्य धारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, किंतु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक नहीं होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की मानवीय प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।—आधुनिक परिवर्तनशील समाज-व्यवस्था और विचार-जगत् में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है।—छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामायिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है।^१

विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद न तो रहस्यवाद का वाचक है न स्वच्छन्दतावाद का। वह तो विभिन्न प्रवृत्तियों का एक ऐसा समन्वित रूप है जिसमें स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद या आत्मवाद, मानवतावाद, राष्ट्रीयता और सूक्ष्म सौन्दर्य-प्रेम आदि नवजागरण युग की चेतना की का समय अभि व्यक्ति हुई है। अतः छायावादी कविता का समग्र स्वरूप देखने पर स्पष्ट होता है कि रोमांटिसिज्म के अतिरिक्त छायावाद पर वर्णन गीत परंपरा बगला का नयी काव्यधारा, उदकी प्रेमपरक कविता युग की स्वान प्रवृत्ति, विकसित एवं परिमार्जित खड़ी बोली के भाषा-संस्कार आदि अनेक तत्वों का प्रभाव रहा है। अतः छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न समझकर उसे छायावाद वाचक कहना समीचीन नहीं है।

विचार व्यक्त किये है वे इस दृष्टि से विचारणीय प्रतीत होते हैं। व लिखते हैं—
 कविचित्त जब बाह्य परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता तब छत्र की
 भाषा अत्यंत प्रभावशाली होकर प्रकट होता है। आंतरिक सौंदर्याभूति और बाह्य
 अनुसर से लगने वाली परिस्थिति की टकरावट में जो विगोम पदा हाता है वह सब
 देश में काव्य की भाषा को मुखर बना जाता है। उसमें सम्मूतन का रूप और जावेग
 का पक्ष लगा देता है—रोमांटिक साहित्य इसी प्रकार के कविचित्त के आंतरिक
 सौंदर्य के जादू और बाहरी जगत के एरुदम गिन परिस्थिति के सघष का परिणाम
 है।—बड्कव्य, शेरी कीटस आदि कवियाँ हैं जिस मोहक सौंदर्य जगत का
 निर्माण किया है वह अपूर्व है। उसने हमारे देश के साहित्य को भी प्रभावित
 किया है।^१

हिंदी के छायावादी कवि अंग्रेजी की स्वच्छदतावादी कविता से प्रभावित रहे
 केवल इसी के आधार पर समस्त छायावाद को रोमांटिसिज्म का अधानुकरण मात्र
 मानना युक्तिसंगत न होगा। अंग्रेजी रोमांटिसिज्म से सबसे अधिक प्रभावित छायावादी
 कवि सुमित्रानन्दन पंत का अद्यतन कवयं इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। वे कहते
 हैं—छायावाद को रोमांटिक काव्य तक सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति
 आँख मूढ़ लेना है। वह इस अर्थ में रोमांटिक कहा जा सकता है कि उसमें किंगोर
 विस्मय की भावना या स्वप्न है उसमें रागात्मक संवेदन, प्रणय तत्त्व तथा कल्पना
 का बाहुल्य और प्रवंग है या वह कला बोध की दृष्टि से परंपरागत नियमों के कूलों
 को डूबोकर स्वच्छद सौंदर्य अभिव्यक्ति भूमि की ओर अग्रसर होता है अथवा
 अभिव्यक्ति की प्रखरता के कारण उसमें कहीं-कहीं विषय वस्तु से अधिक सजात तथा
 प्रमुख शली अथवा रूप विधान हो गया है। किंतु छायावाद की कविता में इनसे कहीं
 अधिक गभीर निगूढ तथा व्यापक तत्त्वा की प्रधानता है।^२ वस्तुतः छायावाद नवान
 और पुगतन पूर्व और पश्चिम, यथाथ और तादग का समविन एव युग के अनुरूप
 भारतीय काव्य प्रणाली का विकसित निर्माणकारी रूप है। वह तो सहज निमल और
 स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने वाली चेतना की प्रतिवृत्ति है। हमें इस बात को
 भूलना नहीं चाहिए कि छायावाद जिस रीतिकाल की प्रतिनिधिका मानी जाती है
 उस युग में भी घनानंद जैसे समय कवि हुए जिन्होंने अपने मन के वास्तविक उद्गार
 प्रकट किये। घनानंद की कविता में छायावादी साहित्य की आभा एवं सौंदर्य भंगिमा
 विद्यमान है।^३

१ रोमांटिक साहित्य शास्त्र—डा० देवराज उपाध्याय

(प्रथम संस्करण) भूमिका पृष्ठ २५६

२ छायावाद पुनर्मूल्यांकन—श्री सुमित्रानन्दन पंत (सन् १९६५ ई०), पृष्ठ ३४

३ कला साहित्य और समीक्षा—डा० नगारय मिश्र (सन् १९६३ ई०) पृष्ठ २२२

स्वच्छन्दतावादी कवि वनमान परिस्थितियों के प्रपञ्च से असन्तुष्ट होकर प्रकृति ही में नहीं, अतीत, भविष्य कल्पना तथा अलौकिकता या अध्यात्मिकता के स्वप्नलोक में रमन के लिए अपनी मनोभूमि तैयार कर सकते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य के विद्रोह में यथायथा का केवल निषेधात्मक पक्ष ही दृष्टिगोचर होता है। विधेयात्मक अथवा रचनात्मक पक्ष नहीं। यदि छायावाद में भी केवल प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह की ही अभिव्यक्ति होती तो निश्चय ही उसे स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न माना जा सकता था, परन्तु छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक आवाग्मिका और नवीन मानवतावादी आन्दोलनों का प्रेरणा से अनुप्राणित है। इसमें स्वच्छन्दतावाद और छायावाद का अंतर अधिक स्पष्ट हो सकता है।

स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव एवं उसकी कुछ विशेषताएँ देखकर जिस प्रकार छायावाद का स्वच्छन्दतावाद का वाचक माना जाता है उसी प्रकार छायावाद में रहस्यवादी भावना को देखकर उसे रहस्यवाद से अभिन्न अथवा 'रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास' भी माना जाता है। छायावाद के स्वरूप का सुस्पष्ट एवं सुबोध विवेचन करने वाले समीक्षकों में आचार्य नन्दुनारे वाजपेयी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने छायावाद के विद्रोह की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए लिखा है—'नयी छायावादी काव्य धारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है किन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक नहीं होकर मानवीय और सामूहिक है। उसमें हम बीसवीं शताब्दी की मानवीय प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।—आधुनिक परिवर्तनशील समाज-यवस्था और विचार-जगत में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है।—छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है।'

विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद न तो रहस्यवाद का वाचक है न स्वच्छन्दतावाद का। वह तो विविध प्रवृत्तियों का एक ऐसा समन्वित रूप है जिसमें स्वच्छन्दतावादी रहस्यवाद, आध्यात्मवाद, मानवतावाद, राष्ट्रीयता और सूक्ष्म सौन्दर्य बोध आदि नवजागरण युग की चेतना की का समय अभिव्यक्ति हुई है। अतः छायावादी कविता का समय स्वयं देपने पर स्पष्ट होता है कि रोमांटिज्म के प्रतिरिक्त छायावाद पर वाग्मवी गीत परम्परा बगला की नयी काव्यधारा, उद्गम की प्रथमक कविता, युग की स्वातंत्र्य प्रवृत्ति, विद्वानों एवं परिमार्जित खेती बोली के भाषा-मस्कार आदि अनेक बातों का प्रभाव रहा है। अतः छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न समझकर उसे छायावाद वाचक कहना समीचीन नहीं है।

२२ | ठेले पर हिमालय और धर्मवीर 'भारती'

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग में भारती का अपना विंग स्थान है। साहित्य की विविध विधाओं की विधायिनी शक्ति उनमें विद्यमान है। परंपरागत पिटी पिटा लकीर के फकीर बनना संभवतः 'भारती' का धर्म नहीं है। बल्कि तो युगानुसार साहित्य क्षेत्र में सदब 'प्रगति' तथा 'प्रयोग' कर उनमें नवीनता तथा नवतय निर्माण करना चाहते हैं। जिस तरह मंजा हुआ संगीतकार प्रचलित तरंगों के साथ स्वरों पर ही युगानुसार असंख्य गीतों की रचना करता है अथवा कोई सिद्ध कलाकार गणरंगों के विविध मिश्रणों से अनंत रंगों की भलकियाँ दिखा सकता है, उसी तरह भारती की विधायिनी प्रतिभा उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, समीक्षा तथा वाग्य इन परंपरागत सात विधाओं के समुचित मिश्रण के प्रयोग से 'सूरज का सातवां घोड़ा' तथा 'अधायुग' जैसी अनोखी कृतियाँ का प्रणयन कर चुकी है।

धर्मवीर 'भारती' हिंदी की उन उठती हुई प्रतिभाओं में से हैं जिन पर हिंदी का भविष्य निर्भर करता है और जिन्हें देखकर हम कह सकते हैं कि हिंदी उस अधिभार अंतराल को पार कर चुकी है जो इतने दिनों से मानो अतहीन दोख पड़ता था। प्रतिभाएं और भी हैं कृतिरत्न औरों का भी उल्लेख है पर उनमें धर्मवीर जी में एक विशेषता है। वे केवल अच्छे परिश्रमी, रोचक लेखक ही नहीं हैं, वे नयी पीढ़ी के सबसे मौलिक लेखक हैं। अथक श्रम-सामर्थ्य और अत्यवसाय, बहुमुखी श्रियांगीतता, प्राच्य चिरजाग्रत चिर निमाणगील कल्पना, सतत जिनामा और पयवेषण देशकास या युग-सत्य के प्रति सनकता, परंपरा जान मौलिकता, आत्मविश्वास और गहरी विनयालता आदि गुणों का एक अपूर्व मम-वप भारती के व्यक्तित्व में सतिहित है। यदि इनमें हास्य भी मित जाता तो कान्ना ही क्या? एम प्रतिभावान व्यक्तियों का दिसम्बर उनीस से छठीस में पुनीत प्रयाग क्षेत्र में जन्म श्रिया, जहाँ श्रिवणी साम हो चुका है। श्रि सा दीक्षा भा वही के पीठ में हूँ। सन १९५५ में इनाहायान विन्व विद्यालय ने इन्हें डी० एन० की उपाधि द्दर सम्मानित श्रिया।

स्वर्ण अग्नि म ही अधिक कातिमाँ दिवायी देता है, लगभग वही स्थिति साहित्यकार की भी होती है। अत यदि यह कहा जाए तो असंगत होगा कि नव-नवोदय-गान्धिनी प्रतिभा का जन्म प्रायः सषष म हुआ करता है। पिता की मृत्यु के उपरान्त माता के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के मिलने पर भी भारती को तीसरे जीवन-सषष का सामना करना पडा ही था। सम्भवत उसी जीवन सषष म भारती की प्रतिभा जाग उठी होगी। सन १९४० के आन्दोलन की असफलताएँ और बंगाल के अकाल की भीषणता से 'भारती' के कोमल हृदय को अत्यधिक पाडा हुई और यही पीडा एकस्मान् गब्दो का आन्तर घाग्ण करने लगी जिसे मात्राया ने अधिक प्राणवान बना दिया।

उनके जीवन की प्रथम-वृत्ति 'तारा और किरण' है। गरमियों की एक रात म भारती की नीद उचट गयी और उस गहरी नीली रात म गुन के तारे को देख कर अचानक उसके मन पर कुछ ऐसा प्रभाव हुआ जिममे भारती की उद्वेलित भावना न प्रथम वृत्ति को जन्म दिया। सनोचा स्वभाव के कारण तथा कथावृत्ति भी पहली हान से उँहोने उसे किसी को न दिखाने दूए छुपा ही रखा। उनके एकमात्र साहित्यिक सलाहकार गोपेन अज ने तत्कालीन प्रसिद्ध 'तरण' पत्रिका मे उमे प्रकाशित करने की सलाह दी। सौभाग्य से उनकी दो गहानियाँ उक्त पत्रिका म प्रकाशित भी हुई परन्तु काफी काट छाट के बाद। 'कलाकार घरती का नियामक होना है आदि विचारा के जनक शैले जस कवि से प्रभावित भारती का भावुक मन इस ज्ञान का बरदाश्त न कर सका। भारती के प्रिय लेखक थे— शैले आस्कर वाइल्ड, थामस हार्डी, प्रसाद और शरत—इनका प्रभाव भारती के साहित्य म परिलक्षित होता है।

साधारणत साहित्यकार अपनी रचि व अनुरूप काय क्षेत्र का चयन करना है और उसी क्षेत्र के जतगत वह अपनी रचनाओं का सजन करना रहता है इसलिए कोई उपन्यासकार के रूप मे प्रसिद्धि पाना है तो कोई नाटककार के रूप म। प्रसाद जैसे अपवादोत्तरन बहुत कम स्थिति होत हैं जो साहित्य के सभी क्षेत्रो म आशातान सफलता पात हैं। धमवीर भारती की लगभग यही स्थिति है। उनकी प्रथम-सषष मे विषया तथा शलिया का वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। जहा एक ओर चाँद और टूट लोग तथा 'सूरज का सातवाँ घोडा जैसे कथासग्रह हैं वहाँ प्रगतिवाद तथा मानव-मूल्य साहित्य', ठेले पर हिमालय' जैसु निवध तथा आलाचनात्मक लेखा के सग्रह भी हैं। एक ओर 'नली प्यासी की जसा एकाकी नाटक सग्रह है तो दूसरी ओर 'गुनाही का देवता' जसा अत्यन्त लोकप्रिय तथा आकषक उपन्यास भी है। सिद्ध साहित्य जैसे सद्धान्तिक विषयो पर अनुसंधान भी मिलता है तो कही आस्कर वाइल्ड की कहानिया तथा दशांतर में भारती की अनुवाद-क्षमता के लक्षण होने हैं। 'देशानर वह प्रथम बीसवी मण के इक्कीस पाश्चात्य देशा के एक सौ स्रसठ कविया का आधुनिक

कविताओं का जो हिन्दी रूपांतर भारती ने किया है वह धमवीर 'भारती' की पान पिपासा का द्योतक है। श्री लक्ष्मीकांत वर्मा के साथ 'निष्कप' जैसी नव-लेखन का पुरस्कार करने वाली पत्रिका में उप संपादक तथा प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'धमयुग' के प्रधान संपादक के रूप में आपकी यह पान जिजासा उभूत हुई है। इन सभी विधाओं के साथ ठंडा लोहा, वनू प्रिया, सातगीत बंध, अथा युग जैसे काव्य ग्रंथों में भारती का कवि हृदय गिल उठा है।

अथा युग' में भारती की उबरा शक्ति चरम सीमा तक पहुँची हुई सी दिखायी देनी है। यह नये ढंग का दृश्य काव्य है जो २० अक्टूबर, १९६१ को प्रयाग में रण-मंच पर प्रथम बार सफलतापूर्वक खेला गया^१। इसका कथानक महाभारत के उत्तराध की घटनाओं पर आधारित है। कुछ घटनाएँ और पात्र स्वल्पित हैं तथा प्रारम्भ और अंत की प्राचीन पद्धति को नये परिवेश में उपस्थित किया है। लोक-नाट्य की परंपरा के अनुसार दृश्य परिवर्तन और अंक परिवर्तन में कथा गायन की योजना की पद्धति का प्रयोग इसमें किया गया है। मुक्तछंदों में सवाद वक्तव्यो गद्य प्रयोग, परिवर्तित छंद योजना, अभिनेता को मांग दशन आदि बातों ने कृति का सौंदर्य बढ़ाया है। महाभारत के अठारहवें दिन स कृष्ण की मृत्यु तक के घटनाकाल की पार्श्व भूमि पर आधुनिक समस्याओं की झलक दिखाते हुए युद्धांपरात जजर, कुठित, अथ हीन मानवता के कारण करुण रूप की सजीव व्याख्या इसमें की गयी है। इस तरह साहित्य के सभी क्षेत्रों में भारती द्वारा नूतनता निमाण करने का प्रयत्न किया गया है।

ठल पर हिमालय' भी धमवीर भारती की एक ऐसी रचना है जिसमें गद्य की विविध शक्तियों का दशन हो जात हैं। जत भारती की गद्य शली के लिए इसी पुष्पक से उदाहरण देना अनुचित न होगा। याना विवरण, डायरी संस्मरण, करीब-कर ब्यंग श्रद्धांजलि आत्मयग इन शीषका में समस्त लेखा का वितरण हो चुका है। प्रत्येक लख में कुछ न कुछ विरोधता स्पष्ट रूप से दिखायी देनी है। वसे तो प्रत्येक लेख विचारणीय एवं मननीय है जिसपर विस्तार में विवेचन किया जा सकता है। इस लेख में ठेले पर हिमालय को 'शलीगत सौंदर्य' दष्टि से ही मुख्यत देखा जाएगा। ममस्त लखा की शक्तियों में बबिध्य होने हुए भा विचारों का सूत्र अविकारण रूप से अन तक एक ही दिखायी देता है। 'Style is the man वाली प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार ठेले पर हिमालय' की विभिन्न शैलियों में लेखक का सम-व-यात्मक "शक्ति" का अनेक पहल न्दश्यमान हो जाते है।

प्रत्येक लेख का प्रारंभ वैशिष्ट्यपूर्ण रीति से किया गया है। साधारणत अपने गत जीवन की किसी घटना या जय प्रसंग तथा उदाहरण का उल्लेख कर प्रथमत सामान्य वाता की हल्की सी चचा छेड़ दा जाती है। और उनी चचा का प्रवाह में लगन पाठक को अपने मुख्य विवच्य विषय की ओर ले जाता है। लेखन की यह

कलात्मकता तथा व्यवहार-कुशलता लगभग सभी लेखा में पायी जाती है जिसमें नव लेखन से लेकर नूतन काव्यशास्त्र जैसे विषयों का आकषण बढ गया है। साहित्यिक 'डापरी' के पृष्ठों में कंकटस राज्य और रमच, होना और करना पुरानी प्रतिभाओं नये प्रतिमान तथा अनास्था जैसे विचार प्रधान लेखा में सामयिक तथा तत्कालीन विभिन्न सदमों तथा उदाहरणों का समुचित 'प्रयोग कर प्रगतिवादी या नवलेखन की भूमिका भिन्न भिन्न रूपा में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। विवच्य विषयों में उत्भूत अनेक समस्याओं का तकपूण विवेचन करत हुए लेखक की रचि अत में साहित्यिक चचा में ही अधिक रमती हुई दिखायी देती है।

सामती मनोवृत्ति में पले हुए कवियों की परंपरागत सौंदर्य-दृष्टि और नए साहित्यिक की सौंदर्य-दृष्टि में अंतर राजचक्रों में साहित्यकारों के प्रवेश से उनकी कल्पनाओं का होनेवाला विनाश, बुद्धि जीवा साहित्यिकों को प्रथम देकर उनकी बुद्धि का प्रचारपरक उपयोग करने की शासका की प्रवृत्ति, मशीन की सम्यता में विवेकपूर्ण आत्मवल युक्त मनुष्य की स्थिति, साम्यवादी तथा गांधीवादी सांचे में ढले हुए साहित्य का स्वरूप नये लेखकों का उत्तरदायित्व आदि सैकड़ों महत्त्वपूर्ण समस्याओं की सोलाहरण चर्चा लेखक ने ऐसी शैली में की है जिससे गभीर विषयों की ओर भी पाठक का चित्त सहज जाकपित होता है।

लेखक स्वयं एक कवि है अतः जहां कहीं उसके अनुकूल भूमि मिलती है वहां भारती का कवि रूप भाक उठता है। विशेषतः वणनात्मक लेखों में उनकी 'खनी गद्य लिखत हुए भी काव्य की रमणीयता निर्माण कर चुकी है। प्रकृति के प्रागण में, हिमराज की गाद में निसर्ग के अलौकिक सौंदर्य की आभा से भारती की गद्य वाणी कविता भी बनी हुई दिखायी देती है। कौमानी की पवतमालाओं को देखकर भारती की भावना शब्द रूप में उमुक्त हुई जो कवि हृदय का परिचय करा देने में पर्याप्त है— पचासो मील चौड़ी यह घाटी हरे मलमली कालीनों जैसे खेत सुंदर गरु की 'गिनाण' काटकर बने हुए लाल लाल रास्ते, जिनके सफेद सफेद पत्थरों की कतार और इधर उधर से आकर आपस में उलझ जात वाली बेंबे की लडिया सी नदियाँ। मनम वेसाहना यही आया कि इन बेलों की लडिया को उठाकर कलाई में लपेट लू, आखा स लगा लू। जकस्मात् हम एक दूसरे लाक में चले आय थे। इतना मुकुमार, इतना सुंदर इतना मजा हुआ और इतना निष्कलक कि लगा इस धरती पर ता जूते उतारकर पाँव पाछकर आग बढना चाहिए।'

इसी प्रकार कूर्मवलके वणन प्रसंग में भी भारती के 'गद्य' ने कविता का वस्त्र धारण किया है—'हिमालय की मुख्य हिमवली चाटिया बादल और धुधलके में छिपी हुई हैं जो सिर्फ एक गाम का अकस्मात् चमक उठी थी। बादलों का अकगु ठव

हटाकर रामगड के ऊपर म बरक के फूला के घनुष्य की तरह अढ़ बत्ताकर फन गयी थी।^१ इसी तरह समस्त लला म वणनारमक प्रमगा पर सगज का बविरूप प्रगट हुए पिता न रह गया। 'नूतन वाव्यगाम्त्र' जसा लेख भी मित्रता है विमन नितरभी की 'उबली गग के गज खड की शली म अपनापन भन्त हुए नय ढग स उपस्थित करने का विनयपूर्ण प्रयत्न किया है रामजी की चींटा गमजा का गर तो एक अजीब ढग का विनोदपूर्ण करीबचर है। व्यंगपूर्ण लेखा म भारती की तपनी बड़ी तेज जाती हुए दिवायी देती है। जात्म यग व अतगत पिपा दुआ 'अपनी ही मौन पर लग ता भारती की कल्पना शक्ति का अच्छा परिचय करा देता है।

लत्रक का निरी रण शक्ति भा बड़ी सूभ नियायी देती है। विनकार मेनका सीरा हूआ शब्द चित्र द्रष्ट्य है— नया दुनता गरीर पतला सावला चेहरा, एमिन जोरा सी दाडी, ढीरा-ढाला पतलून अटपटी चान थी बाबू माहज की। यह दुबला-पनगा मुकी गसा मिथिया गरीर और उम पर आपका झूमत हुए आना आदि।^२ लेखक के अज्ञान गान तथा सदमों से अपनी सूक्ष्मता परिलक्षित होती है। भारतीय साहित्य क साथ साथ लत्रक की विशेषी साहित्य की अव्ययनशासना समय समय पर प्रयुक्त उदाहरणा मे पायी जाती है। जमे बडस्वय की लूसी की तरह चिटिया का भरता क संगीत म पनगा एमिन जोरा सी दाढा जमन नाटककार वेनना 'अनास्था की चचा मे दिया गया उदाहरण, आदि।

भारता स्पष्ट बत्ता होने से उनके द्वारा निय गए विधान अधिक समय बलवान एव पुष्ट हा चुके हैं। म अपना विचार समझान के लिए अनेक शक्तियो तथा पद्धतिया का प्रयोग करते हैं। कभी एन सफा अध्यापक की भाति विभिन्न पापक उदाहरणो का प्रयोग करते हैं तो कभी विरोधक की भूमिका लेकर स्वय ही अपन सिद्धांत एव विचार प्रणाली के आपत्तित विरोधी प्रश्नो को उठात हुए उनक उत्तर भा विस्तार स देत हैं जिससे समस्या क दोना पक्षो का विवचन जनन आप हो जाता है। नयी साहित्य दृष्टि की विवचना करते करते लेखक बीच ही म पूछ बठन है 'हा मकना है बाबू मही मुक राकवर पूछना चाह—'क्या भाई, जो कुछ विरोध के बाबजूद बढता चला जाए वह सही ही जाना है यह कोई तर्क नहीं है। गृह्य राक्याम फरन के बाबजूद महामारी फननी चना जानी ह। तो यह नया साहित्य दृष्टि भी सवाल आपका तो बट्टन उचित है और आपन ता बड़ी सज्जनतापूर्वक पूछा ० मैं जानता हूँ कि आप सचमुच समझना चाहत हैं वि आतिर नया लेखक क्या उा चीजा को नहीं उठाना जिस आप अभी तक सुंदर कहते आए हैं।^३ इस उदाहरण स लेखक की शली की नूतनता स्पष्ट होती है।

१ ठेले पर हिमातय, पृष्ठ ११

२ वही, पृ० ४

३ वही, पृ० ८३

पुरा ती जजरिन और मनुष्य क विनास के लिए विधातक दृष्टिया तथा परम्पराओं के प्रति भारता के उन नस म विद्रोह का उद्बलन दिग्गयी देता है। परन्तु यहाँ एक बाग विरोध उन्नेयनीय है कि भारती उन सागा म स नहीं दीस पटत जा तावना क आवाग म दुद्धि का सतुलन ताव दन ह। अपनी प्रात को ममभाने हुए विराधा विचारक के प्रति सहानुभूति का भाव प्रकट करत हुए नदीव अनना 'विनम्र मत' कहत हत हैं। भारती की लेखन गती पर भारतीय एव पाश्चात्य दोनों साहित्यकारा का प्रभाव समझिन रूप म दिग्गयी देना है और ये साहित्यकार भी बहुम्वय गन आम्बक वाक्य, धौमम हाडों तथा प्रगाव और गगन अस।

धमधीर भारता को तापा पर किनी साप्रदायिकता की मुहर लगी हुई नहीं शिवावा दती। हिंदा भाषा म अपन विचार अभिव्यक्त करत समय प्रमगानुकूल अनेक दनी विद्रोगी गता की योजना की गयी है। उनकी धनी न केवत ससृजननिष्ठ है न केवत उन्न निष्ठ। उसमे मनुचिन्ता नाम मात्र को भी नहा है। भाषा क प्रति अत्यत उचार नभा समवयगीत दलितोण रखने हुए आवश्यकतानुसार ससृजन, अरवी फारसी, अग्रश तथा देशज शब्दा का प्रयोग भारता म अपना समस्त रचनाओं म किया है। कहा कना निरावन उदगीय आवाग, अवगुटा, अधैय आदि ससृजन के तन्म गतो क वाक्य म गती म कुछ गम्भीरता जा गया है तो कही कही धम्तूर, शिवावन सहा, धूमगीन, दहाम वादि जग्वा फारसी शब्दा के प्रयोग से भाषा म कटपटाटा भी गया है। अपन लेखन म कइ स्थला पर गगन न ठेठ अंग्रेजी शब्दा का उपयोग आवश्यकता से अधिक किया है, जम पसपेकिटप, फेय, कस्टम, करिकचर, पेंटर पतिवसिटी, ग्रेजुग फोफायन आदि। धमधीर 'भारती उन नसको मस है जो नयनगी तथा उदारतावादी विचारधारा क पुरस्तरा हैं। अत उद्दान जय भाषा क शक्ति का भी नि सवाच भाव म ग्रहण किया है।

भारती की समस्त गद्य रचनाओं म उनका व्यक्तित्व क सभी पहनुआ के दगन हा जात हैं। उनकी वक्तिया म कविता का माधुय कहानी का चातुय, गटक की अभिनेयता, निवध की नेयता सभी एक का गुणवत्ता तथा सपादन की कल्पनता आदि का सुंदर समवय हा चुका है।

२३ | मोठी लिपि और उसकी व्युत्पत्ति

भारतीय गीघ्रलिपियां म 'मोठी लिपि' का भी एक विविष्ट स्थान है। कहा जाता है कि इस लिपि का जन्मगतता देवगिरि का यादव राजाओं का दरबार का प्रसिद्ध पंडित हेमाद्रि उर्फ हमाडपत था। सन १२६० ई० में हेमाद्रि यादव राजा का दरबार में रहे थे^१। इसका सम्बन्ध में एक विवेचना प्रचलित है कि हेमाद्रि मोठी लिपि लखा से महागण्डू ले आये। इसका दूसरा नाम पिणाच लिपि भी बताया जाता है^२। इतिहासाचार्य स्व० राजवाडे ने इस बात का खण्डन करते हुए लिखा है—देवगिरि के यादव राजा का साम्राज्य दक्षिण में कल्याणुमारी तक फैला हुआ था। सम्भवतः कल्याणुमारी बंधवा रामेश्वर में शासकीय काम से हेमाद्रि गये हैं और वही से लखा की यात्रा भी कर आये हैं। लखा से लौटने पर गीघ्र ही उन्होंने समस्त दफ्तर की कारवाहियाँ मोठी में करने की आज्ञा दी थी और इसीलिए जान पड़ता है कि लखा ने समझ लिया हो कि हेमाद्रि लखा से मोठी लिपि को ले आये हैं। वस्तुतः तत्कालीन लिपि की भाषा का और मोठी का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। इन बातों का कोई प्रमाण तक उपलब्ध नहीं होता। सिंहली में न मोठी का प्रचार कभी था न अब है। इससे अनिश्चित मोठी लिपि देवतागरी से भिन्न द्रविड भाषाओं के अक्षरों से भी तो नहीं बनायी गयी। अतः हेमाद्रि द्वारा लखा से मोठी का लाया जाना यह दलकथा मात्र है। इसमें कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं है। उनका कथन है कि फारसी में 'नस्ख और 'शिकस्ता' नामक दो लिपियाँ का प्रचलन है। नस्ख लिपि में लिखित अक्षर स्पष्ट तथा सुपाठ्य होता है। 'शिकस्ता' यह फारसी की गीघ्रलिपि है। इसमें अक्षरों का विशिष्ट ढंग से मोड़कर लिखा जाता है। 'मोठी' नाम शिकस्ता शब्द का अनुवाद है। हेमाद्रि ने शिकस्ता लिपि की पद्धति पर मोठी लिपि का निर्माण तथा प्रचलन किया^३।

१ ऐतिहासिक प्रस्तावना (खंड ८, सन १९२८ ई०), पृ० ३७६

२ महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश, विभाग १ (१९२६ ई०), पृ० २१८

३ ऐतिहासिक प्रस्तावना (वही), पृ० ३७७

इसके अनिश्चित कुछ विद्वान हेमाद्रि को मोडी' वा जनक मानने के पक्ष में नहीं हैं। श्रीमान गुप्त के मतानुसार मोडी लिपि का भवप्रथम प्रचलन बालाजी आदजी चिटणीस न छथपनि गिवाजी महाराज भागले के समय प्रारम्भ किया था।^१ स्वर्गीय चान्नेरकार मोडी की व्युत्पत्ति अशोक मौर्य की मौर्यी लिपि से मानते हैं।^२ अपने मत का समर्थन करने के लिए उन्होंने देवनागरी मौर्यी ओडी लिपिया की तुलना कर मोडी और मौर्यी में समानता दिखाने का प्रयत्न किया है। मौर्यी लिपि में ऋ, ॠ, ए स्वर नहीं हैं मोडी में भी इनको स्थान नहीं है। जिस प्रकार 'मौर्यी' में ह्रस्व, दीर्घ का कोई भेद नहीं माना जाता उसी प्रकार 'मोडी' में भी ह्रस्व दीर्घ का अंतर नहीं माना जाता। सस्कृत में सस्वर व्यंजन और अस्वर व्यंजन का एक महत्वपूर्ण भेद है। परन्तु मोडी और मौर्यी अथवा अशोक लिपि में वैसे भेद नहीं है। मोडी लिपि में अपूर्ण वर्णों की व्यवस्था नहीं है। इसलिए देवनागरी की भाँति सपुष्प वर्ण ठीक से लिखना संभव नहीं होता। अशोक लिपि अथवा मौर्यी लिपि में भी यह स्थिति है।^३ निष्कप रूप में उन्होंने लिखा है कि देवनागरी और मोडी दोनों भिन्न लिपियाँ हैं। देवनागरी सस्कृत भाषा की और मोडी प्राकृत भाषा की लिपि होगी।^४ श्रीमान पाण्डे ने मोडी की उत्पत्ति कथी अथवा कुटिल लिपि से मानी है। अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने कथी लिपि और मोडी लिपि में समानता दिखाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार कथी में सस्कृत की सपुष्प वर्णमाला का प्रयोग नहीं किया जा सकता, वैसे ही मोडी में भी नहीं किया जा सकता। कथी और मोडी लिपि के अ, ख, घ वर्ण नागरी से पूर्णतः भिन्न हैं।

विवेचन से स्पष्ट होता है कि मोडी लिपि के प्रवक्तक तथा उसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विवाद है। हम उस पर संक्षेप में विचार करेंगे। श्रीमान गुप्त का कथन व्यक्तिगत उपलब्ध सामग्री के आधार पर था। बहुत प्रयास करने पर भी उन्हें शिवकायक पूर्व मोडी लिपि में लिखित एक भी पत्र अथवा हस्तलेख प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने मोडी के प्रवक्तक बालाजी आदजी चिटणीस को मानकर मोडी का प्रचार वही से स्वीकार किया। इनका खतन करते हुए श्री राजवोड ने ज्ञानेश्वरी की कुछ पक्तियों का हवाला देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मोडी लिपि का प्रचार हेमाद्रि के समय से था। ज्ञानेश्वरी की ये पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

हे बहू असो पडितू धरनु बालकाचा हातू ।
बोला सेहू वेगवतू आपणचि ।

१ व मोडी कॉरेक्टर एण्ड इटस ओरिजन (सन १९०६ ई०)

श्री वा० आ० गुप्ते, पृ० १

२ आय लिपि—गो० का० चादोरकर, पृ० ७३

३ इ इयन एंटीक्वेरी प्रेस—३३ परिशिष्ट, पृ० ३७ ३८

४ आय लिपि—गो० का० चादोरकर पृ० ६३

५ ज्ञानेश्वरी, अध्याय १३

इन पत्रनियो म प्राप्त, 'वेगवतू' शब्द तो उहाने माडी वा वाचक माना और यह निद्र करने का प्रयत्न किया कि मोडी का प्रचलन पावेश्वर के समय म जो हेमाद्रि के समकालीन थे, होता रहा। श्रीमान राजवाडे का यह कथन प्रमाणों की अपेक्षा तक पर अधिक समाश्रित है। 'वेगवतू' शब्द को मोडी का वाचक मानना उही की कल्पना है। यत्र के समकालीन अथवा शिव काल पूर्व मोडी म लिखित कोई प्रमाण प्रस्तुत करते तो अधिग उचिन हाता। किसी अनुसंधान के मोडी लिपि म लिखित कुछ प्रामाणिक पत्र उपलब्ध हुए ह जो शिवाजी के लगभग १४० वर्ष पूर्व के हैं^१। इससे इतना तो निश्चित होता है कि मोडी लिपिका प्रचलन शिवाजी के पूर्व १४० वर्षों से यहाँ था। अत मोडी लिपि के प्रवक्तव यावाजी आप्पाजी चिटणीस बदापि नहीं हो सकते। अत्र प्रश्न रहा कि हेमाद्रि के पूर्व मोडी लिपि का प्रचलन था अथवा नहीं ?

कुछ पादचात्य विद्वाना ने^२ मोडी लिपिकी व्युत्पत्ति 'मूर' लोगो से मानी है। वस्तुतः यह व्युत्पत्ति भ्रममूलक तथा निराधार है। माडी शब्द अंग्रेज लोगो ने अपने उच्चारण के अनुसार लिखते समय ड के स्थान पर 'र' का प्रयोग किया जिससे यह शब्द 'मोडी' के स्थान पर, 'मोरी' हो गया और यह मोरी शब्द मूल मानकर भाषा विज्ञान की दृष्टि से उसकी व्युत्पत्ति 'मूर' से लगाने का प्रयत्न किया^३। अत इस पर विचार करने अथवा यह मत स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। श्रीमान चादोरकर जी ने मोडी की व्युत्पत्ति 'मौर्या' लिपि से बताते समय कुछ अज्ञा मे इसी प्रकार का तर्क दिया है। उ हाने लिखा है—ललित विस्तार म चौसठ लिपियो के जो नाम दिये हैं उसस नात हाता है कि जिस प्रकार खरोट्ट की खराप्ती मागधी की शौरसेन की शौरसेनी बनी उसी प्रकार मौर्य की मौर्या रही होगी। उहोने मोडी का व्युत्पत्तिक्रम इस प्रकार माना है—मौर्य मौर्या मोरी मोडी^४। श्रीमान चादोरकर ने अपने मत की पुष्टि म जो बातें लिखी उनम प्रमाणा की अपेक्षा कल्पना और तक ही अधिक है। मोडी शब्द की मौर्या से व्युत्पत्ति उसी प्रकार है जिस प्रकार मूरसे मोरीकी व्युत्पत्ति बताना है। दूसरी बात है मौर्या और मोडी लिपियो म कुछ बातो मे समानता प्राप्त होना। दोनो म जिस प्रकार कही-कही समानता है उसी प्रकार असमानता भी है, इस तथ्य का भी विचार होना आवश्यक है। वसे कुटिल अथवा कधी लिपि म और मोडी मे भी अनेक स्थला पर साम्य है। अत केवल कुछ बातो मे साम्य प्राप्त होने पर मोडी की व्युत्पत्ति मौर्या से मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता। उसके लिए और भी वैज्ञानिक तक एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों की आवश्यकता है।

अनुसंधान मे प्राप्त अद्यावधि प्रमाणों से मोडी लिपि की व्युत्पत्ति देवनागरी की

१ महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—श्री व्य० केतकर, पृ० २१८

२ सेन्सस रिपोर्ट १ (९)—श्री बेन।

३ द मोडी कॅरेक्टर एण्ड इटस ओरिजिन (सन् १९०६ ई०), पृष्ठ ३१

४ आय लिपि—श्री गो० का० चादोरकर, प० ७३

उपलिपि कुटिल अथवा कधी से मानी जाती है। परम्परा, ऐतिहासिक तथ्य, लिपियाँ की आवृत्ति प्रवृत्ति आदि अनेक बातों का आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'मोडी' का व्युत्पत्ति, 'कधी' से हुई है। शीघ्र लेखन की दृष्टि से मूल वर्णों में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन कर घटायी गयी घणमाला अथवा अक्षर-वाटिका को, 'कुटिल' कहा गया है। मराठी में प्रयुक्त 'मोडी' शब्द संस्कृत के 'कुटिल' का पर्यायवाची है। ११ वीं शताब्दी में ब्रिन्हण, कवि द्वारा लिखित विप्रमाक देवचरित नामक ग्रन्थ में कायस्थ की कुटिल लिपिका सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है।

तो कायस्थं कुटिल लिपिमि नोविटश्चाट्टुधै ।^१

इससे स्पष्ट होता है कि कुटिल लिपिका प्रचलन हेमाद्रि के लगभग १५० वर्ष पूर्व रहा था। इतिहास से ज्ञात होता है कि हिंसाव किताब लिखकर उपजीविका करने वाले कायस्थ लोग भारत के समस्त प्रान्तों में प्राचीन काल में फैले हुए थे। कायस्थों के अनिरीक्त इसी व्यवसाय पर उपजीविका करने वाली अथ भी जातियाँ थीं परन्तु इन सभी में कायस्था का प्रभाव अधिक रहा। कायस्था में करण नाम की एक उपजाति थी। कनोज के राजा का हिंसाव किताब करने वाले अधिकारी की कायस्थ अथवा 'करणिक' सत्ता रहती थी^२। इससे 'करण' अथवा 'करणिक' शब्द का रुढ़िगत अथ राज-यवहार का हिंसाव किताब दखने वाला अधिकारी हो जाता है। अतः यह शब्द जातिवाचक न रहकर व्यवसायवाचक बन गया। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा अमोघ वष के समय के एक लेख से पता होता है कि दक्षिण में कायस्थ लोग व्यवसाय के लिए आये थे और अमोघ वष ने अपने शासन काल में सामकीय पत्र-व्यवहार, हिंसाव किताब लिखने के लिए इनका उपयोग किया था। कायस्थों को इस प्रकार का आश्रय देने की परम्परा उत्तरकालीन राष्ट्रकूट राजाओं ने भी कायम रखी थी।

देवगिरि के यादव राजा के दरबार में हेमाद्रि 'करणधीप' के स्थान पर थे। उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि देवगिरि के यादव राजा के सारे सामकीय पत्र-व्यवहार, हिंसाव किताब का उत्तरदायित्व हेमाद्रि पर था। वे 'करण' के अधीप थे। हेमाद्रि के समय देवगिरि के यादव राजा का अधिकार क्षेत्र दक्षिण में कल्याकुमारी तक फैला हुआ था।^३ इससे हेमाद्रि के काय की व्यापकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः इस स्थिति में कम समय में अधिक काय करने के लिए किसी शीघ्र लिपि का प्रयोग करना उनके लिए परमावश्यक हो गया। अतः बहुत संभव है कि हेमाद्रि जैसे व्यूत्पन्नमति बुद्धिमान् तथा सधावी व्यक्ति ने देवगिरि की पूर्व प्रचलित कुटिल अथवा कधी उपलिपि में आवश्यकतानुसार हेर फेर कर मोडी लिपि का प्रचलन

१ हेमाद्रि उक्त हेमाद्रपत—केशव भाष्या पाण्ये, पृ० २६८

२ हेमाद्रि उक्त हेमाद्रपत, पृ० २६६

३ ऐतिहासिक प्रस्तावना—वि० का० राजवाडे, पृ० ३७७

द्वगिरि के राजाओं के अधिकार क्षेत्र में घुस चिया हो। महाराष्ट्र में हमारा ही पूरा मोड़ी लिपि लिखन की परम्परा नहीं मिलती। इसलिए अधिकांश लोग ने हमारा ही 'मोड़ी' लिपि का जग मान लिया। आज भी अनेक भाषणों के पास 'माड़ी' में हिंसाय किताब लिखा जाता है। उनके पास 'माड़ी' में लिखित अनेक प्राचीन कागज पत्र उपलब्ध हुए हैं। कागज की दृष्टि से उन हस्त लिपि की परीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'मोड़ी' लिपि 'कथी' का ही परिवर्तित स्वरूप है। अतः हमारा ही मोड़ी लिपि का वास्तविक प्रयोजन मले ही न कहा जाए परंतु इसमें मदद नहीं है कि महाराष्ट्र में 'मोड़ी' का प्रचार हमारा ही समय से ही प्रारम्भ हुआ। अतः महाराष्ट्र में मोड़ी लिपि के प्रथम प्रचारक के रूप में उन्हें गौरव देना अनुचित न होगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि फारसी की 'शिकस्ता' लेखन पद्धति का अनुगमन 'माड़ी' लिपि में नहीं है बल्कि नयी अथवा कुटिल लिपि का अनुगमन है।

मुन्करी साहित्य लोक प्रचलित पहेलिया का एक ऐसा रूप होता है जिसका लक्ष्य मनोरजन के साथ-साथ बुद्धिचातुर्य की परीक्षा लेना भी होता है। इसमें ऐसी ऐसी बातें कही जाती हैं जो द्वयअथक या दिलचस्प होती हैं, पर उन दोनों में से जो मुख्य अथ हागा उससे मुककर उस छंद में दूसरे अथ को स्वीकार किया जाता है परंतु यह स्वीकारोक्ति वास्तविक नहीं होती। इसमें प्रस्तुत अथ को अस्वीकार करके अप्रस्तुत अथ को स्थापना की जाने से इसे छेनाप-हुति भी कहा जाता है। इस पद्धति की काव्य रचना के लिए हिंदी में अमीर खुसरो और मराठी में राम जोशी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों कवियों की भाषा में तथा काल में भिन्नता होने से यद्यपि उनके इस प्रकार के काव्य के रूपरंग में पद्धति की शली में अंतर दृष्टिगोचर होता है, फिर भी दोनों के मूल की भावना एक ही है जिसका मुख्य उद्देश्य मनोरजन है। इस अवसर पर उनके काव्य की छान बीन करना हमारे लिए उतना उचित न होगा जितना कि रमास्वादन लेना। अत उदाहरण के रूप में कुछ छंद चुनकर प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनसे उन दोनों के मनोरजनात्मक काव्य की कल्पना की जाए।

अमीर खुसरो की मुकरियों में यह कल्पना की गयी है कि एक युवती अपनी अतरंग सखी से कुछ ऐसी बातें कह देती है जिसका लगभग मारा वणन उसके साजन से मिलता-जुलता हो। अत म उसकी अतरंग सखी वणन से अनुमान कर जब पूछ बैठती है कि क्या सखा वे तुम्हारे प्रियतम साजन तो नहीं है? तब नायिका तुरत कह दती है कि हे सखी! तुम्हारी कल्पना बिलकुल गलत है और कुछ ऐसी वस्तु का नाम बना देती है कि जो कथित वणन से बिलकुल मेल खाती है। नायिका का अपना के विरुद्ध उत्तर पाकर सखी को आश्चर्य होता है और विनाद निर्मित से हँसी भी आती है। इस प्रकार की हँसी तथा विनोद के फुहारे अमीर खुसरो की मुकरियों में सबत्र पाये जाते हैं।

विवाह के प्रसंग में बधू से छेड छाड करना उसकी सखियों को बहुत भाता,

है। छेड़ छाड़ के समय बधू का लज्जित होना, विरोध करना, उत्तर न देना, मोन रहना, कभी कभी अनुरागात्मक राग प्रकट करना आदि बातें तो सामान्यतः हाता रहती हैं। परंतु कभी कभी चतुर बधू भी अपनी नटपट सखियों को ऐसा मजा चखाती है कि बेचारी जीधे मुह खट जाती हैं। एक ऐसी ही बधू बार बार छेड़ी जान पर अपनी सखिया से कहती है —

वह आवे तब गादी होय ।
उस धौन डूजा और न कोय ।
मोठे लाग बाके बोल ।

इस वचन को सुनकर सखियों के मन में स्वभावतः विचार उठता है कि जिस के आने पर नायिका की क्षादी हान वाली है, जिसके बोल नायिका को मोठ लगत ह, तो भला इसके प्रियतम के अनिश्चित दूसरा होगा ही कौन ? अतः ये अतरंग सखिया पूछ देती हैं — 'ऐ सखी, साजन ? नायिका हंसकर उत्तर देती है— 'ना सखी, मोल !'

एक अभिसारिका अपनी अतरंग सखी से कहती है —

रन पड़े जब घर मे आवे ।
धाका आना मोको भाव ।
कर पर्दा घर में लिया ।

इस वचन को सुनकर सखी के मन में सहज भाव उठता है कि रात के होते ही इस नायिका के घर आने वाला, जिसका आगमन नायिका के लिए सुखदायक है ऐसा प्रियकर के अनिश्चित दूसरा कौन हो सकता है ? अतः वह अपनी अभिसारिका नायिका से समस्या करती है— 'ऐ सखी 'साजन ?' नायिका उत्तर देती है— 'ना सखी, दिया !' आपेक्षिक उत्तर से विपरीत उत्तर पाकर हंसी मजाक के फूहारे फूटते हैं।

फागुन के दिना में रसरंग की बहार लूटी जा रही थी। एक दूसरे पर रंग की पिचकारी छूटने से नायक नायिका दोनों रंग से भीग जाते हैं। इसी पसंग का उल्लेख कर नायिका अपनी सहेली से कहती है —

रंग रास का फाग मचाया ।
आप भिज औ मोहिं भिजाया ।
बाको कौन न चाह नेह ।

नायिका का संकेत संभवतः उसका प्रियकर की जीर ही होगा जो होली के अवसर पर फाग खेल रहा है और जिसका भीगना और भिगोना नायिका को भाता है, यह समझकर उनकी सखी पूछती है— 'ऐ सखी, साजन ? अपनी सखी का अपेक्षा भग करते हुए नायिका उत्तर देती है, 'ना सखी मह' ।

एक नायिका अपने दुःख का सगी के पास व्यक्त करने हुए कहती है

मुख मेरा घूमत दिनरात ।
हाठें लगत कहत नहीं बात ।
आसे मेरी जगत म पत ।

उसकी मखी सोचती है कि जिमसे नायिका की पत इस ससार म हे ऐसे दिन रात मुख घूमन वाले प्रियतम के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति हो ही कौन सकेंगे ? अत वह विवास के साथ अपनी सखी नायिका स पच्छा करती है — 'ऐ सखी, साजन ?' नायिका से उत्तर मित्रना है — 'ना सखी, नय ।' नायिका क द्वारा किया हुआ वणन सुनकर किसी क भी मन म यह सहज भाव उठ जाता है कि नायिका अपने पति की ही निशानत कर रही है परंतु बात दूसरी ही रही । प्राचीन काल म नय का कितना महत्व था यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है । इसी प्रकार शृंगार के मधुर आवरण मे छिपे हुए मनोविनोद के कई उदाहरण दिय जा सकते हैं । समस्त उदाहरणों को देना तो संभव नहीं है परंतु कुछ और भी मुकरिया नमूने के तौर पर देखी जा सकती हैं—

जब मोर मंदिर मे आवे ।
सोते मुभको आन जगावे ।
पढ़त किरत यह विरह के अब्दर ।
ऐ सखी साजन ? ना सखी मच्छर ।

× × ×

बेर बेर सोवताह जगाव ।
ना जायूँ तो काटे छावे ।
ध्याकुल हुई मैं हक्की बक्की ।
ऐ सखी साजन ? ना सखी भक्की ॥

× × ×

अगो मेरो लपटा आवे ।
वाका खेल मोरे मन भाये ।
कर गहि कुच गहि गहे मोरि माला ।
ऐ सखी साजन ? ना सखी बाला ।

× × ×

सोटी दक मोहि बुलाव ।
रुपया देहूँ तो पास बिठावे ।
ल मागे जीर खेल खेल ।
पट्ट सखी साजन ? ना सखी रेल ॥

जिम प्रकार हिंदा साहित्य म मुक्करी जग मनोरजनात्मक काव्य के लिए अमीर सुखरो की प्रसिद्धि है, उसी प्रकार मराठी साहित्य म राम जोगी नामक कवि की ,

विपरीत उत्तर पाने से सखी को और अपनी वणन शली के कारण सखी के मन में भानि निमाण करने की खुशी में राधिका को हँसी खा जाती है जो विनोद का विषय बनती है। इसी प्रकार और भी उदाहरण राम जोशी की 'छेकापहुति' के अतगत प्राप्त हो जाते हैं।

जिस प्रकार राधिका अपनी अतरंग सखी के प्रति कुछ ऐसे वचन बहती है कि जिनमें मनोविनोद निर्मित के मधुर भाव प्रस्फुटित हो सकें, उन्हीं प्रकार कृष्ण भी अपने निवृत्तम सखा के प्रति भी ऐसा ही वणन करता है जिसको सुनकर सखा के मन में प्रायः यही भाव उत्पन्न हो कि सबकुछ वह राधा ही हो परन्तु कृष्ण के उत्तर मिलने से उसके इन भ्रम का निवारण हो जाता है और हँसी मजाक हो जाता है। कृष्ण अपने सखा से अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहता है—

कंठ लपेटेनि सदा असावी सुभगा गुणशालिनी ।

बाटते पुष्पवती शोभिनी ।

सखा सोचने लगता है कि सुन्दर गुणवान पुष्पवती ऐसी राधा के अतिरिक्त दूसरी हो ही कौन सकती है जिसका सदैव लिपटे रहना कृष्ण को भाता है? अतः वह कृष्ण से पूछता है—'वपमानूची सुता काय ती राधा लिक्चस्तनी?' अर्थात् यह सुभगा गुणशालिनी वपमानु की पुत्री राधा तो नहीं है। तब सखा की बल्पना का अभाव ठहरा कर कृष्ण कहता है—'नहरे माल आठवली मनी' अर्थात् ह सखा, वह राधा नहीं मेरी पुष्पमाना का मुझे स्मरण हो गया।

इसी प्रकार दूसरी इच्छा प्रकट करते समय कृष्ण अपने सखा से कहते हैं—

अधर चुं बिनी वदसभवा लालस मधुर ध्वनी ।

असावी मुखासि मुख लायुनी ।

कृष्ण के द्वारा कथित वाक्यों की गद्द योजना से सखा के मन में प्रथम राधिका का ही विचार उठता है और उसी को कृष्ण के मुख से सुनने की इच्छा से वह कृष्ण से पच्छा करता है—'वपमानूची सुता काय ती राधा लिक्चस्तनी?' आपेक्षित उत्तर से भिन्न जवाब देते हुए कृष्ण कहता है—'नहरे भुरली जगमोहिनी' अर्थात् ह सखा, मैं जिसका चूमना चाहता हूँ वह उत्तम वगैरे उत्पन्न मधुर ध्वनि युक्त राधा नहीं है बल्कि वगैरे की बनी हुए मधुर ध्वनि देने वाली भुरली है।

सदैव साथ रहने वाला सरला मद्रंगा गौरवर्णिय यष्टिका का वणन इसी प्रकार मनोरञ्जक बना है। कृष्ण अपने सखा से कहता है—

सरला ती सद्दशा गौरा अतिगद्य सयोगिनी ।

येतसे करुण धरनि जे वनी ।

सखा पच्छा करता ह।

वपमानूची सुता काय ती राधा लिक्चस्तनी ।

और कृष्ण उत्तर देता है—

न हे रे यष्टि सहचारिणी ।

इस प्रकार और भी मनोत्रिनेत्रामत्र छत्र द्रष्टव्य है—

नयसताने मद्रुषयणती नयनचगुणरागिणी ।

धरायी घाटे क्वटालुनि ।

वधमानूचो मुता काय ती राधा लिबुचस्तनी ।

नरहे र यीणा मद्रुभापिणी ।

अमीर गुसरो की मुखरिया की तुलना में राम जानी की 'धकापट्टि' भाषा भाव की दृष्टि से अधिक मँजी हुई सिगाई देती है। दोनों में शृंगार की भावना एक सी है। यद्यपि मनोरजन पर लिखित साहित्य के अन्तर्गत और भी विधाया का समावेश हो सकता है फिर भी शृंगार रस के अवगुणन में स्थित मनोरजन की यह गली अपना विशेष महत्व रखती है। यह परंपरा भारत में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। युग के साथ आचार विचारों में, आकार प्रकारों में, रूप रंग में, व्यक्ति अभिव्यक्तियों में भल ही अंतर होता रहे परन्तु जब तक इस धरती पर युवक रहेंगे तब तक शृंगार-रस के ये छोट उछलते ही रहेंगे।

२५ | होनहार महाकवि का त्यागपत्र।

१२ बरस हुए उस घटना को जब हमारे हिंदी विद्यालय का विदाई समारोह मनाया गया था। उस समारोह के सभापति हिंदी के सभ्य प्रतिष्ठ साहित्यिक थे। उस समय मैंने टूटी फूटी हिंदी में एक कविता रच डाली और पढ़ी भा। कविता की पक्तियाँ थी—

विदा होते देख तुमको रज होता है मुझे।

रज में भी गद्य आती परम सुख की है मुझे।

हिंदी का जो प्रेम तुमने दे परीक्षा है दिखाया।

धय हो तुम राष्ट्रसेवक राष्ट्रभाषी बन दिखाया।

समारोह समाप्त होने ही सभापति ने मुझे पास बुलाया और मेरी कविता की मूरि मूरि प्रशंसा करते हुए कहा, 'तुम्हारी कविता बड़ी सुंदर थी। और थोड़ा प्रयास करोगे तो एक दिन हिंदी का य क्षेत्र में अवश्य चमकींग।' सभापति की तरह अन्य उपस्थित लोग ने भी मुझे हिंदी का होनहार श्रेष्ठ कवि माना। फिर क्या? इस प्रशंसा से तो मेरी छाती खुशी से फूल गयी और मैं कवि ही नहीं बरन महाकवि बनने के सपने देखने लगा। अब तब जा महाकवि मेरी दृष्टि में अत्यंत निरादरित लगते थे (उनका काव्य मेरी तुच्छ बुद्धि के परे होने के कारण) व महाकवि अब मेरी दृष्टि में ईश्वर से भी अधिक श्रेष्ठ आदरणीय लगने लगे। जहाँ कहीं किसी महाकवि की चर्चा छिन्ती, मेरा सिर थढ़ा में झुक जाता। मामूली फूटकल कविता लिखना मुझे बुरा लगने लगा और नित्य निरंतर मैं महाकाव्य के नये विषय को खोज में अपने को खोने लगा। ध्येय की तीव्र अभिलाषा और सदैव उसी का चिंतन भेगकर थढ़ानु, हिनैपों और दयालु लोगों ने मेरे दृढ विश्वास की प्रशंसा की तो कुछ मुख नासमझ लोगों ने मेरी खिल्ली भी उड़ान का प्रयास किया। मेरे कई मित्रों ने कहा कि भाई दिवाकर अब महाकाव्य का जमाना बीत गया है, यह तो कहानी-उपनयामा का युग है। यदि तुम कहानी उपन्यास लिखोगे तो अधिक अच्छा होगा। पर उनकी सदिच्छा मैं क्या मानने लगा? मेरे सिर पर तो महाकवि बनने का हा

पति की वपयिव दुबलना देपजर वह नारी लोर सज्जा तथा ग्लनि से कह उठी—

साज न आयत आपको दौरे आयेहू साथ ।

धिक धिय ऐसे प्रम को कहां कहीं में नाथ ॥

अस्थि घरममय देह तामें ऐसी प्रीत ।

तैंसी जो श्रीराममेंहू होती न तो नव भीत ॥

रत्नावली की इस अनपंगित भत्सना से तुलसी का भावुक हृदय अत्यंत विह्वल हुआ और उसी तीव्रार बेचना तथा ग्लानि के कारण ही तुलसी के सुप्त भाव-स्फुल्लिंग प्रस्फुटित हुए जो 'रामचरित मानस' जैसे सव्येष्ट महाकाव्य में परिणीत हो उठे ।

महाकवि बिहारी भी अपने प्रारम्भिक जीवन में साधारण रंगीले व्यक्ति का जीवन बिताते थे । जवानी के दिन पत्नी के सान्निध्य में समुराल में ही एगोआराम से बिनासी की जिदगी बसर करते थे । 'असारे खनु ससारे सार स्वगुर मदिरम' इस मिद्धा न के निष्ठावत पुजारी थे । बिना कुछ भी कमाय समुराल में रहने में उन्हें कुछ भी घुरा न लगता था । पर उनकी प्यारी पत्नी को अपने पति का निठलापन भूषण नहीं दूषण लगने लगा । एक दिन क्रोध में आकर वह कह ही बठी "इस तरह समुराल की वासी रोटी क्या तक खाइएगा ? कुछ अपनी ताजी रोटी भी कमाना जानते हो ?" यौवन की मधुरिमा में विहार करने वाले रसिक के सुकोमल हृदय पर पत्नी के इस वचन ने हथौड़े का काम किया । मोह विलास का स्वाभिमान जाग उठा । पत्नी की व्यग्योक्ति ने कोमल हृदय को घायल कर दिया । ऐसा लगता है कि उसी व्यग्योक्ति से विह्वल होकर वह जयपुर के नरेश के पास गये जा अपनी नवेली रानी के प्रेम में राजकाज को भूल बठा था । बिहारी के इस दोहे में—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल ।

अलि कली ही सो बिघ्यो रह्यो आगे कोन हवाल ॥

उसकी आंखें खोल दी । यह निटळला युवक वही महाकवि बिहारी है जिसने 'बिहारी सनसई' जैसा जद्वितीय काव्य ग्रंथ लिखा ।

इस तरह अथ कई कवियों तथा महाकवियों का का यपूव जीवन ज्यो-ज्या में देखने लगा तथा त्या त्या मेरा इस बात पर पूण विश्वास होता गया कि महाकवि होने के लिए किसी अलौकिक बुद्धिमत्ता का जन्म से ही होना बिल्कुल आवश्यक नहीं है । जब एक साधारण लुटेरा 'रामायण' जैसे महाकाव्य का निमाण कर आदि महाकवि बन सकता है, एक भूख, गवार चरवाहा भी जब कवि-कुलगुरु कालिदास बन सकता है, एक दरिद्र, दुबल लपट व्यक्ति भी रामचरित मानस जैसा महाकाव्य लिखकर महाकवि बन सकता तब मेरे लिए महाकवि बनना कुछ भी कठिन न होगा । इस विचार से मैं इतना भ्रम उठा कि वाल्मीकि, कालिदास तुलसीदास आदि महाकवियों की पंक्ति में भावविम में कब जा बँठा इसका पता तक न लगा ।

२५ | होनहार महाकवि का त्यागपत्र !

१२ बरस हुए उस घटना को, जब हमारे हिंदी विद्यालय का विदाई समारोह मनाया गया था। उस समारोह के सभापति हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यिक थे। उस समय मैंने टूटी फूटी हिंदी में एक कविता रच डाली और पढ़ी भी। कविता की पकितया थी—

विदा होते देख तुमको, रज होता है मुझे।
 रज में भी गध आती परम सुल की है मुझे।
 हिंदी का जो प्रेम तुमने दे परीक्षा है दिखाया।
 धय हो तुम राष्ट्रसेवक राष्ट्रभाषी बन दिखाया।

समारोह समाप्त होते ही सभापति ने मुझे पास बुलाया और मेरी कविता की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा, “तुम्हारी कविता बड़ी सुंदर थी। और थोड़ा प्रयास करोगे तो एक दिन हिंदी काव्य क्षेत्र में अवश्य चमकोगे।” सभापति की तरह अन्य उपस्थित लोगों ने भी मुझे हिंदी का होनहार श्रेष्ठ कवि माना। फिर क्या? इस प्रशंसा से तो मेरी छाती खुशी से फूल गयी और मैं कवि ही नहीं बरन् महाकवि बनने के सपने देखने लगा। अब तब जा महाकवि मेरी दृष्टि में अत्यंत निरादरित लगते थे (उनका काव्य मेरी तुच्छ बुद्धि के पर होने के कारण) वे महाकवि अब मेरा दृष्टि में ईश्वर से भी अधिक श्रेष्ठ आदरणीय लगने लगे। जहाँ कहीं किसी महाकवि की चर्चा छिड़ती, मेरा सिर थड़ा से झुक जाता। मामूली फुटकल कविता लिखना मुझे बुरा लगने लगा और नित्य नित्य मैं महाकाव्य के नये विषय की खोज में अपने को खो रहा। ध्येय की तीव्र अभिलाषा और सदैव उसी का चिंतन देखकर थड़ानु हितपी और ल्यालु लोग ने मेरे दृढ़ विश्वास की प्रशंसा की तो कुछ मूख, नाममभ लोग ने मेरी बिल्ली भी उड़ाने का प्रयास किया। मरे कई मित्रा ने कहा कि भाई दिवाकर, अब महाकाव्य का जमाना दौत गया है, यह तो कहानी-उपन्यासा का युग है। यदि तुम कहानी उपन्यास लिखोगे तो अधिक अच्छा होगा। पर उनकी सदिच्छा मैं क्या मानने लगा? मेरे सिर पर तो महाकवि बनने का हा

पति की वपयिक दुबलता देखकर वह नारी लज्जा तथा ग्लानि से कह उठी—

साज न आवत आपको दौरे आवेहु साथ ।
धिरु धिक ऐसे प्रेम को कहा कहीं मैं नाथ ॥
अस्थि घरमभय देह तामें ऐसी प्रीत ।
तसी जो श्रीराममेंह होती न तो मय भोत ॥

रत्नावली की इस अनपेक्षित भत्सना से तुलसी का भावुक हृदय अत्यंत विह्वल हुआ और उसी तीव्रतर वेदना तथा ग्लानि के कारण ही तुलसी के सुप्त भाव स्फूर्तिलग प्रस्फुटित हुए जो 'रामचरित मानस' जैसे सवश्रेष्ठ महाकाव्य में परिणीत हो उठे ।

महाकवि बिहारी भी अपने प्रारम्भिक जीवन में साधारण रगीले व्यक्ति का जीवन बिताते थे । जवानी के दिन पत्नी के सान्निध्य में समुराल में ही एगोआराम से विलासी की जिदगी बसर करते थे । 'अतारे खलु सतारे सार श्वमुर मदिरम' इस सिद्धांत के निष्ठावन पुजारी थे । बिना कुछ भी कमाये समुराल में रहने में उन्हें कुछ भी बुरा न लगता था । पर उनकी प्यारी पत्नी को अपने पति का निठलापन भ्रूषण नहीं दूषण लगने लगा । एक दिन क्रोध में आकर वह कह ही बठी 'इस तरह समुराल की बासी रोटी कब तक खाइएगा ? कुछ अपनी ताजी रोटी भी बमाना जानते हो ?' यौवन की मधुरिमा में विहार करने वाले रसिक के मुकामल हृदय पर पत्नी का इस वचन ने हथौड़े का काम किया । मोह विलास का स्वाभिमान जाग उठा । पत्नी की व्यग्योक्ति ने कामल हृदय को घायल कर दिया । ऐसा लगना है कि उसी व्यग्योक्ति से विह्वल होकर वे जयपुर के नरेश के पास गये जा अपनी नवेली रानी के प्रेम में राजकाज को भूल बठा था । बिहारी के इस दोहे में—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल ।
अलि कली ही सो विध्यो रह्यो आगे कौन हवाल ॥

उसकी आश्वं खोल दी । यह निठल्ला युवक वही महाकवि बिहारी है जिसने बिहारी सनसई' जैसा अद्वितीय काव्य ग्रंथ लिखा ।

इस तरह अच्य कई कवियों तथा महाकवियों का काव्यपूर्व जीवन ज्यो-ज्या में देखने लगा त्या त्या मेरा इस बात पर पूण विश्वास होता गया कि महाकवि होने के लिए किसी अलौकिक बुद्धिमत्ता का जन्म से ही होना बिल्कुल आवश्यक नहीं है । जब एक साधारण लुटेरा 'रामायण' जैसे महाकाव्य का निमाण कर आदि महाकवि बन सकता है, एक मूल, गवार चरवाहा भी जब कवि-कुनगुरु कालिदास बन सकता है एक दरिद्र, दुबल हापट व्यक्ति भी रामचरित मानस जसा महाकाव्य लिखकर महाकवि बन सकता तब मरे लिए महाकवि बनना कुछ भी कठिन न होगा । इस विचार से मैं इतना भ्रूम उठा कि बाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास आदि महाकवियों की पवित्र में भावावेग में कब जा बैठा इसका पता तक न लगा ।

लेकिन कल्पना जगत का महाकवि बनने का भाग्य भी अधिक देर तक न मिल सका क्योंकि दूसरे ही क्षण जब बुद्धि न कहा कि महाकवि के लिए प्रियतमा या पत्नी के द्वारा हृदय पर ऐसा आघात होने की आवश्यकता है, जिससे असह्य वेदना तथा दुःख के कारण हृदय के भावों में उथल-पुथल मच जाए और वे ही शब्द रूप भाव काव्य का जन्म दे सकते हैं तब सहसा इस कल्पना मात्र से ही मैं धरती उठा। मेरी प्रियतमा पत्नी से मेरा धिक्कार । मेरे स्वाभिमान पर कुठाराघात ।। कामल हृदय पर व्यग बाणावली ।।। — असभव ! असभव !। महाकवि बनने के लिए इतना भारी मूल्य ? और वह भी इस कलयुग में ? इससे महाकाव्य आलोचक बनना अधिक अच्छा जिसको महाकवि जसा दिखे तो नहीं करना पड़ता । मेरे हितैषी मित्रों में मेरे पूछते हैं कि आपका महाकाव्य कहाँ तक आया तो मैं प्रायः उत्तर देता हूँ कि महाकाव्य के अनुकूल यह युग ही नहीं । महाकाव्य यदि लिखा भी गया तो कितने लोग उसका मौनिक रसास्वादन कर सकेंगे ? यह युग वास्तविक अर्थ में आलोचना का है । इसीलिए मैं आलोचक बना हूँ । महाकविया से अब मैं दूर क्यों भागता हूँ इसका रहस्य मेरी प्राणप्रिय पत्नी तक न जान पायी तो औरों की बात ही क्या ?



रति की वैपयिक दुबलता देखव

साज न
धिक दि
अस्थि र
तसी जो

रत्नावली की इस वन
विह्वल हुआ और उसी तीव्रतर
भाव स्फुल्लिग प्रस्फुटित हुए ज।
णीत हो उठे ।

महाकवि बिहारी भी ५
जीवन बिताते थे । जवानी के र
बिलासी की जिदगी बसर करते
सिद्धा न के निष्ठावन पुजारी ५
कुछ भी घुरा न लगता था । प
भूषण नहीं दूषण लगन लगा । ५
सपुराल की वासी रोटी कब त
जानते हो ?" योवन की मधुरि
पत्नी के इस वचन न ह्योडे ना
उठा । पत्नी की "यग्योक्ति ने
उसी व्यग्योक्ति से विह्वल होक
रानी के प्रेम म राजकाज को ५

नहि पराग नहि
अति कली ही र

उसकी आँखें खोल दी ।

'बिहारी सनसई जसा अद्वितीय

इस तरह जय कई कवि
में देखने लगा त्या त्यो मेरा इस
के लिए किसी अलौकिक बुद्धिमान
जब एक साधारण लुटेरा रामाय
सकता है, एक मूख, गवार चरवा
दगिद, दुबल लपट व्यक्ति भी
बन सकता तब मेरे लिए महाकवि
इतना झूम उठा कि बाल्मीकि, व
म भावादेय में कब जा बठा इसका

लेकिन कल्पना जगत का महाकवि बनने का भाग्य भी अधिक देर तक न मिल सका क्योंकि दूसरे ही क्षण जब बुद्धि ने कहा कि महाकवि के लिए प्रियतमा या पत्नी के द्वारा हृदय पर ऐसा आघात हाने की आवश्यकता है, जिससे असह्य वेदना तथा दुःख के कारण हृदय के भावों में उथल पुथल मच जाए और वे ही शब्द रूप भाव काव्य को जन्म दे सकते हैं, तब सहसा इस कल्पना मात्र से ही मैं थर्रा उठा । मेरी प्रियतमा पत्नी से मेरा धिक्कार ! मेरा स्वाभिमान पर कुठाराघात ! ! कोमल हृदय पर अग वारणावली ! ! ! — असभव ! असभव ! ! महाकवि बनने के लिए इतना भारी मूल्य ? और वह भी इस कलयुग में ? इससे महाकाव्य आलोचक बनना अधिक अच्छा जिसको महाकवि जैसा दिव्य तो नहीं करना पड़ता । मेरे हितपी मित्र बीच में पूछते हैं कि आपका महाकाव्य कहां तक आया तो मैं प्राय उत्तर देता हूँ कि महाकाव्य के अनुकूल यह युग है ही नहीं । महाकाव्य यदि लिखा भी गया तो कितने लोग उसका मौलिक रसास्वादन कर सकेंगे ? यह युग वास्तविक अर्थ में आलोचना का है । इसीलिए मैं आलोचक बना हूँ । महाकविया से अब मैं दूर क्यों भागता हूँ इसका रहस्य मेरी प्राणप्रिय पत्नी तक न जान पायी तो औरों की बात ही क्या ?

